M. A. Political Science (Previous) (DDE)

Semester – I

Paper Code – 20POL21C5

RESEARCH METHODOLOGY - I

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

MAHARSHI DAYANAND UNIVERSITY, ROHTAK

(A State University established under Haryana Act No. XXV of 1975)
NAAC 'A+' Grade Accredited University

MASTER OF ARTS (Political Science)
First Semester
Paper Code : 16POL21C5
Paper-V Research Methodology-I

M. Marks = 100
Term End Examination = 80
Assignment = 20
Time = 3 hrs

Note : - The question paper will be divided into five Units carrying equal marks i.e. 16 marks. Students shall be asked to attempt one out of two questions from each unit. Unit five shall contain eight short answer type questions without any internal choice and it shall be covering the entire syllabus. As such , all questions in unit five shall be compulsory.

Unit-I

Scientific Study of Political Science : Scientific Method; Basic Assumptions, Characteristics, Steps and Stages, Limitations of Scientific Method in Political Science Research.

Unit-II

Social Science Research : Meaning, Nature, Objectives and Assumptions.

Problems and Limitations of Social Science Research.

Types of Social Science Research.

Unit-III

Hypothesis : Sources, Types and Nature of Hypothesis. Role of Hypothesis in Political Research, Nature of Role of Theory in Social Science.

Unit-IV

Selection and Formulation of Research Problem.

Research Design : Importance and Role; Types of Research Design :

Exploratory, Descriptive and Explanatory.

Case Study.

विषय–सूची

इकाई–1 विज्ञान और वैज्ञानिक पद्धति पृ. संख्या : 1–29

विज्ञान का अर्थ एवं परिभाषा, विज्ञान की विशेषताएँ, वैज्ञानिक पद्धति का अर्थ एवं परिभाषा, वैज्ञानिक पद्धति की मुख्य अवधारणाएँ, वैज्ञानिक पद्धति की विशेषताएँ, वैज्ञानिक पद्धति के चरण, वैज्ञानिक शोध पद्धति की प्रक्रिया के विभिन्न स्तर, राजनीति विज्ञान में वैज्ञानिक शोध पद्धति की सीमाएँ, सामाजिक अनुसंधान में वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग की समस्या।

इकाई–2 सामाजिक विज्ञान अनुसंधान पृ. संख्या : 30–56

अनुसंधान का अर्थ व परिभाषा, सामाजिक अनुसंधान का अर्थ एवं परिभाषा, सामाजिक अनुसंधान की प्रकृति, सामाजिक अनुसंधान के उद्देश्य, सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की आधारभूत मान्यताएँ, सामाजिक विज्ञान शोध की सीमाएँ, सामाजिक शोध के प्रकार।

इकाई–3 उपकल्पना अर्थात् परिकल्पना पृ. संख्या : 57–103

परिकल्पना की परिभाषा, परिकल्पना की विशेषताएँ, सामाजिक अनुसंधानों में उपकल्पनाओं का महत्त्व या उपयोगिता, उपकल्पना के स्रोत, उपकल्पनाओं के प्रकार, उपयोगी (श्रेष्ठ) उपकल्पना की विशेषताएँ, उपकल्पना के निर्माण में कठिनाइयाँ, राजनीति विज्ञान शोध में उपकल्पना की भूमिका, समाज विज्ञानों में सिद्धान्त निर्माण–राजनीति विज्ञान के विशेष संदर्भ में।

इकाई–4 शोध समस्या का चयन एवं निरूपण, शोध प्रारूप व वैयक्तिक अध्ययन पृ. संख्या : 104–173

शोध समस्या का चयन, शोध समस्या चयन के महत्त्वपूर्ण तत्त्व, शोध समस्या चयन के आधार, शोध समस्या के स्रोत; अनुसंधान अभिकल्प का अर्थ एवं परिभाषा, शोध अभिकल्प की विशेषताएँ, शोध–प्रारूप का महत्त्व या आवश्यकता, एक अच्छे अनुसंधान

अभिकल्प की विशेषताएँ, शोध प्ररचना के प्रकार–अन्वेषणात्मक, वर्णनात्मक, निदानात्मक व प्रयोगात्मक, शोध–अभिकल्प का निर्माण, शोध अभिकल्प की विषय–वस्तु; वैयक्तिक अध्ययन की विशेषताएँ और सिद्धान्त, वैयक्तिक अध्ययन के उद्देश्य, वैयक्तिक अध्ययनों के प्रकार वैयक्तिक अध्ययन के लिए आधार सामग्री संग्रह करने के स्रोत, वैयक्तिक अध्ययन का नियोजन, वैयक्तिक अध्ययन के लाभ, वैयक्तिक अध्ययनों की आलोचनाएँ

इकाई–1 विज्ञान और वैज्ञानिक पद्धति

इकाई की रूपरेखा :

1.0 परिचय

1.1 अधिगमन उद्देश्य

1.2 संरचना

1.3 विज्ञान का अर्थ एवं परिभाषा

1.4 विज्ञान की विशेषताएँ

1.5. वैज्ञानिक पद्धति का अर्थ एवं परिभाषा

1.6 वैज्ञानिक पद्धति की मुख्य अवधारणाएँ

1.7 वैज्ञानिक पद्धति की विशेषताएँ

1.8 वैज्ञानिक पद्धति के चरण

1.9 वैज्ञानिक शोध पद्धति की प्रक्रिया के विभिन्न स्तर

1.10 राजनीति विज्ञान में वैज्ञानिक शोध पद्धति की सीमाएँ

1.11 सामाजिक अनुसंधान में वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग की समस्याएँ

1.12 अपनी प्रगति जांचिए

1.13 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1.14 सारांश

1.15 मुख्य शब्दावली

1.16 अभ्यास हेतु प्रश्न

1.17 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1.0 परिचय :

मानव एक जिज्ञासु प्राणी है। वह अपने चारों तरफ दिन–प्रतिदिन घटने वाली घटनाओं के प्रति जागरूक रहता है, और इन घटनाओं में सत्य को खोजने का प्रयत्न करता है। उदाहरण के रूप में चाहे ये घटनाएँ चुनाव से संबंधित हो सरकार के काम–काज, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय विभिन्न पहलुओं पर आधारित हों या फिर उसके व्यक्तिगत जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति से सम्बन्धित हों, इन सभी को समझने तथा हल करने के लिए उसने समय–समय पर अनेक अविष्कार किए हैं। अध्ययन की अनेक विधियों का निर्माण करने के साथ–साथ मनुष्य इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि विज्ञान तथा वैज्ञानिक पद्धति के अतिरिक्त ज्ञान–प्राप्ति, समस्याओं को समझने व हल करने के लिए कोई सरल एवं छोटा रास्ता नहीं है। इसलिए अनुसंधान की प्रकृति का विश्लेषण करने के लिए विज्ञान की प्रकृति को समझना आवश्यक है।

वर्तमान युग विज्ञान का युग है, क्योंकि वर्तमान में यथार्थ में विभिन्न पक्षों को समझने एवं विश्लेषित करने के लिए विज्ञान का सहारा लिया है। ऑगस्ट कॉम्टे (Auguste Comte) ने ज्ञान के विकास की तीन अवस्थाओं का उल्लेख किया है, प्रथम धार्मिक, दूसरी तात्विक और तीसरी अवस्था प्रत्यक्षवादी है। ऑगस्ट कॉम्टे का कहना है कि इस प्रत्यक्षवादी अवस्था में मानव–मस्तिष्क, बुद्धि एवं प्रेषण के सुसंयोजित प्रयोग, उनके प्रभावकारी नियमों अर्थात् उनके उत्तराधिकार तथा समरूपता के अपरिवर्ती सम्बन्धों के द्वारा पूर्णतया स्वयं को अनुसंधान कार्य में लगाने हेतु प्रघटना के निकटतम की असम्भाव्यता को स्वीकार करता है।,

सामाजिक वैज्ञानिकों ने समाज से सम्बन्धित व्यवस्थित ज्ञान–प्राप्ति के लिए समय–समय पर विशिष्ट सामाजिक विज्ञानों एवं वैज्ञानिक पद्धतियों का निर्माण किया है। अतः समाज से सम्बन्धित ज्ञान, विज्ञान और अनुसंधान के क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए आवश्यक है कि हमें विज्ञान तथा वैज्ञानिक पद्धतियों का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए। इस सम्बन्ध में स्टुआर्ट चेज (Stuart Chase) ने अपने विचारों को व्यक्त करते हुए लिखा है कि ''विज्ञान का सम्बन्ध वैज्ञानिक पद्धति से है न कि अध्ययन विषय से''।

सामाजिक अनुसन्धान के अन्तर्गत अध्ययन विषय के बारे में अधिक ज्ञान प्राप्त कर नये तथ्यों की खोज अथवा सिद्धान्तों का निरूपण किया जाता है। सामाजिक विज्ञान व

प्राकृतिक विज्ञानों के विषय में हालांकि आधारभूत अन्तर विद्यमान है। सामाजिक विज्ञान के विषय प्राकृतिक विज्ञान की भांति अपरिवर्तनीय नहीं हैं। सामाजिक विज्ञान का विषय क्षेत्र सामाजिक घटनाओं व परिस्थितियों से बहुत प्रभावित होता है और उसके परिणाम व सिद्धान्त भी परिवर्तित होते हैं। अतः पूर्णतः वैज्ञानिक पद्धति के चरणों को निर्धारित क्रम में सामाजिक विज्ञान के विभिन्न विषयों में लागू नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत इकाई में वैज्ञानिक पद्धति के अध्ययन के साथ–साथ राजनीति विज्ञान अनुसन्धान में वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग में आने वाली समस्याओं पर भी विचार किया गया है।

1.1 अधिगमन उद्देश्य :

इस अध्याय के अध्ययन से आप निम्न उद्देश्यों को भली भांति समझ सकेंगे :

- विज्ञान का अर्थ व विशेषताएँ
- वैज्ञानिक पद्धति का अर्थ व विशेषताएँ
- वैज्ञानिक पद्धति की मूलभूत अवधारणाएँ
- वैज्ञानिक पद्धति के चरण एवं स्तर
- सामाजिक शोध में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग व आधार
- राजनीति विज्ञान अनुसंधान में वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग की सीमाएँ

1.2 संरचना :

संरचना किसी भी विषयवस्तु से संबंधित आँकड़ों को व्यवस्थित रूप से संगठित करने का तरीका है। इसके अंतर्गत अलग–अलग स्रोतों से संग्रहित आँकड़ों को क्रमबद्ध व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया जाता है। आमतौर पर किसी भी विषयवस्तु की संरचना के छह चरण होते हैं :

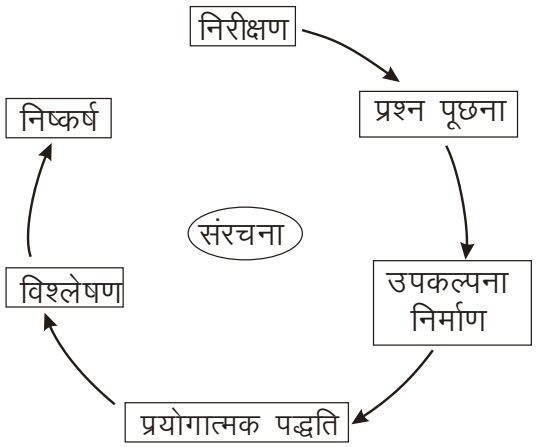

संरचना के निर्धारित चरणों का अनुसरण करते हुए प्रस्तुत इकाई की समस्त विषयवस्तु को भी एक संरचित व क्रमबद्ध तरीके से व्यवस्थित किया गया है। प्रस्तुत इकाई की संरचना :

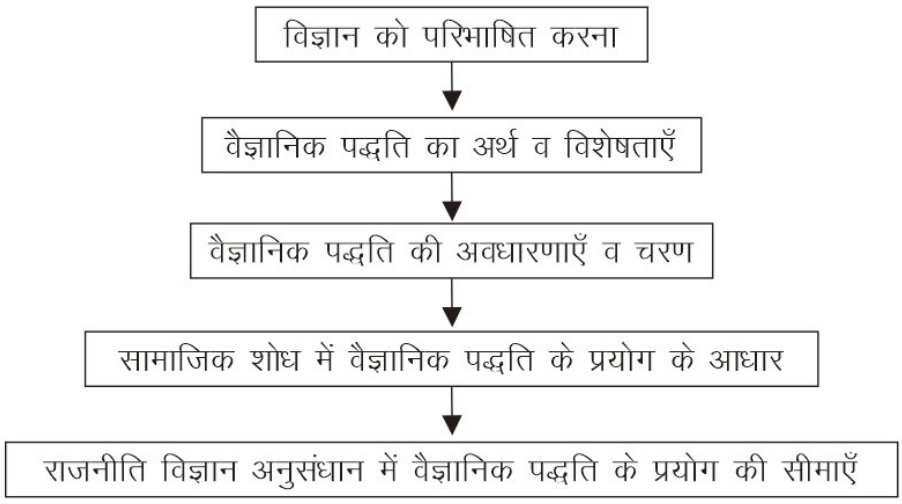

1.3 विज्ञान का अर्थ एवं परिभाषा

(Meaning and Definitions of Science)

विज्ञान शब्द के सम्बन्ध में सामान्यतः अनेक भ्रांतियाँ प्रचलित हैं। भिन्न–भिन्न अर्थों में विज्ञान शब्द का प्रयोग भिन्न–भिन्न रूपों में किया गया है। विज्ञान का प्रयोग प्राकृतिक विज्ञानों जैसे भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान आदि के एक सामूहिक नाम के रूप मे किया जाता है जबकि दूसरी ओर समाजशास्त्र, इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान तथा लोक प्रशासन आदि विज्ञानों को विज्ञान नहीं माना जाता। कभी–कभी विज्ञान को इंजीनियरिंग और तकनीकीशास्त्र का पर्यायवाची मान लिया जाता है। स्वचलित यन्त्रों का आविष्कार, यानों का निर्माण, पुलों का निर्माण व बाँधों की रचना आदि क्रियाओं को विज्ञान समझा जाता है। अन्ततः विभिन्न अर्थों के साथ–साथ विज्ञान का कार्य मनुष्य के जीवन को सुविधाजनक बनाने के लिए आविष्कार का अनुसंधान करना है।

विज्ञान शब्द अंग्रेजी भाषा के 'साइंस' (Science) शब्द का हिन्दी रूपान्तर है जो स्वयं लेटिन (Latin) भाषा के 'सीया' (Scia) शब्द से बना है जिसका आशय है 'जानना (to know)। वस्तुतः सत्य, प्रमाणित और विश्वसनीय ज्ञान के लिए क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित अध्ययन करने को ही विज्ञान कहते हैं। सुरेन्द्र सिंह के अनुसार, "विज्ञान यथार्थ का अध्ययन, अवलोकन एवं प्रयोग करते हुए प्राप्त तथ्यों से आगमन तथा निगमन द्वारा

सामान्यीकरण करते हुए ज्ञान की प्राप्ति का एक उपागम है। वैज्ञानिकों ने विज्ञान की परिभाषा अपने–अपने दृष्टिकोण से प्रस्तुत की हैं, जिसमें से कुछ प्रमुख परिभाषाएँ इस प्रकार हैं :

गुडे तथा हॉट (Goode & Hatt) "विज्ञान समस्त अनुभव सिद्ध संसार के प्रति दृष्टिकोण की एक पद्धति है।" उनका कहना है कि, "विज्ञान की लोकप्रिय परिभाषा व्यवस्थित ज्ञान का संचय है।"

चर्चमैन और एकॉफ (Churchman and Ackoft) के अनुसार, "विज्ञान एक कुशल अन्वेषण है।"

वेनबर्ग तथा शेबत (Weinberg and Shabat) के अुनसार, "विज्ञान संसार की ओर देखने की एक निश्चित पद्धति है।"

लेस्ट्रसी (Lastrueci) के अुनसार, "विज्ञान एक वस्तुनिष्ठ, तार्किक एवं व्यवस्थित अध्ययन पद्धति है जो किसी विश्वसनीय ज्ञान की प्रघटना के विश्लेषण में प्रयुक्त होती है। यह विश्लेषण का एक व्यवस्थित स्वरूप है एवं किसी विशिष्ट ज्ञान से सम्बन्धित नहीं है।"

आंइस्टीन तथा एनफील्ड (Einstein and Infield) के अुनसार, "विज्ञान सांसारिक विचारों तथा प्रघटनाओं के मध्य सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए मानवीय मस्तिष्क का एक प्रयास है। विज्ञान का समस्त महत्त्वपूर्ण विचार यथार्थ इसे समझने के हमारे प्रयास के नाटकीय संघर्षों के कारण उत्पन्न हुआ है।"

गिलिन व गिलिन (Gillin and Gillin) के अनुसार, "जिस क्षेत्र का हम अनुसंधान करना चाहते हैं उसकी ओर एक निश्चित प्रकार की पद्धति ही विज्ञान का वास्तविक चिन्ह है।"

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि विज्ञान किसी ज्ञान या जानकारी का एक व्यवस्थित स्वरूप है। यह एक दृष्टिकोण की प्रणाली है, कुशल अन्वेषण है। चर्चमैन तथा ऍकाफ के अनुसार, "विज्ञान ज्ञान का संग्रह नहीं है, यह एक विशिष्ट प्रकार की पूछताछ है।" इस सम्बन्ध में बनार्ड (Bernard) के अनुसार, "विज्ञान को इसमें निहित छह मुख्य प्रक्रियाओं के संदर्भ में ही परिभाषित किया जा सकता है। ये प्रक्रियायें हैं–परीक्षण, सत्यापन, पारिभाषिक विवेचना, वर्गीकरण, संगठन तथा परिस्थितिजन्यता, जिसमें पूर्वानुमान तथा व्यावहारिक उपयोग की विशेषताओं का भी समावेश है।"

1.4 विज्ञान की विशेषताएँ

(Characteristics of Science)

किसी भी अवधारणा के अर्थ एवं प्रकृति को समझने का सबसे सरल तरीका उसके लक्षणों का अध्ययन करना है। उपर्युक्त आधार पर विज्ञान की प्रकृति को उसकी निम्नलिखित विशेषताओं के द्वारा सरलतापूर्वक समझा जा सकता है:

1. संशयवाद (Scepticism) : विज्ञान की प्रथम विशेषता संशय (Doubt) या सन्देह उत्पन्न होना है। प्रकृति में तथ्य या घटनाएँ एक दूसरे से पृथक् घटित न होकर निश्चित व्यवस्था और क्रम के अनुसार घटित होती हैं अर्थात् वे कुछ नियमों द्वारा संचालित होती हैं। एक वैज्ञानिक इन्हीं नियमों का पता लगाने का प्रयास करता है। ये नियम, तथ्य अथवा प्रघटनाएँ आदि किस प्रकार परस्पर अन्तर्सम्बन्धित हैं एवं किस प्रकार और किन नियमों के तहत संचालित होते हैं। विभिन्न तथ्यों के सम्बन्ध में वैज्ञानिक के मन में एक अवबोध (Understanding) विकसित होता है जो नये संशय को जन्म देता है। यह नया संशय विज्ञान की मूल आधारशिला है एवं इसी से नया अनुसंधान जन्म लेता है।

2. प्रमाणिकता (Validity) : विज्ञान का एक अन्य प्रमुख लक्षण यह है कि विज्ञान को प्रमाणों की आवश्यकता पड़ती है और इन्हीं प्रमाणों के आधार पर विज्ञान निष्कर्ष निकालता है। यूरोप में लम्बे समय तक यह माना जाता रहा है कि सूर्य पृथ्वी के चारों ओर घूमता है जबकि 16वीं शताब्दी के बाद प्रसिद्ध ज्योतिषी कोपरनिकस ने इसमें सन्देह किया और उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर यह घोषित किया कि पृथ्वी सूर्य के चारों तरफ घूमती है। इस प्रकार विज्ञान प्रमाणों के आधार न केवल नवीन सिद्धान्तों की रचना करता है वरन् वह पुराने सिद्धान्तों को संशोधित भी करता है एवं कई बार उन्हें अस्वीकृत करता है।

3. परिशुद्धता (Accuracy) : विज्ञान की एक अन्य विशेषता परिशुद्धता है। विज्ञान में यह प्रयास किया जाता है कि जो जानकारी प्राप्त की जाये वह पूरी तरह परिशुद्ध हो। यह ज्ञान एक व्यक्ति को सत्य लगता है वहीं दूसरे के लिए असत्य हो सकता है। विभिन्न व्यक्तियों के सामान्य ज्ञान विभिन्न हो सकते हैं, परन्तु विज्ञान के लिए आवश्यक है कि जो कुछ वह एकत्रित करे वह पूरी तरह सत्य हो, परिशुद्ध हो, चाहे वह किसी के लिए सत्य हो

या किसी के लिए असत्य। इसलिए परिशुद्धता किसी भी विज्ञान के लिए अति महत्त्वपूर्ण है।

4. व्यवस्थितता (Systematization) : हमारा सामान्य ज्ञान अव्यवस्थित एवं तर्क विहिन होता है। इसके विपरीत विज्ञान में एक तन्त्र एवं व्यवस्था होती है। इस व्यवस्थितता के तीन प्रमुख गुण हैं–सम्बन्ध होना, पूर्ण होना एवं तर्क–संगत होना। वैज्ञानिक व्यवस्थितता में विभिन्न सिद्धान्त एक–दूसरे से सम्बन्धित होते हैं और मिलकर उस विज्ञान का कलेवर बनाते हैं। पूर्ण का अर्थ यह है कि इसमें वे सारे सिद्धान्त होते हैं जिनसे यह कलेवर बनता है। यदि कोई सिद्धान्त अज्ञात हो, उसके लिए बराबर खोज होती रहती है। तर्कसंगत होने का महत्त्व यह है कि विभिन्न सिद्धान्तों में कोई विरोध नहीं है। विज्ञान में इस व्यवस्थितता के कारण भविष्य की घटनाओं के विषय में ज्ञान संम्भव है।

5. भविष्यवाणी करने की क्षमता (Predictability) : विज्ञान मात्र व्याख्या करने, नियमों की रचना करने एवं उन्हें अमूर्तता के धरातल पर प्रस्तुत करने का कार्य ही नहीं करता अपितु वह अपनी खोज का आने वाले समय में उपयोग कर देखना चाहता है कि वह कहाँ तक सत्य है। विज्ञान भविष्यवाणी करता है कि नवीन स्थितियों में अमुक नियम अमुक प्रकार से लागू होगा। भविष्य में अपनी खोज के परिणाम और सत्यापन करने के लिए वह भविष्यवाणी करता है और देखना चाहता है कि जो नियन्त्रण तथ्यों के घटने पर उसे प्राप्त हुआ है वह नवीन स्थितियों मे उसे प्राप्त होगा या नहीं।

6. अवलोकन (Observation) : एनसाइक्लोपिडिया ब्रिटानिका में विज्ञान की विशेषता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि विज्ञान में व्यवस्थित और पक्षपातरहित अवलोकन किया जाता है। प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा अवलोकित सामग्री की जाँच की जाती है जो आगे चलकर वर्गीकरण का रूप गहण कर लेती है। वर्गीकरण की सहायता से सामान्यीकरण के नियम बनाये जाते हैं। इन नियमों को आगे अवलोकनों में लागू किया जाता है; नवीन अवलोकनों एवं मान्य नियमों में तालमेल नहीं होने पर नियमों में संशोधन किए जाते हैं और ये नवीन संशोधन आगे और अवलोकन करने की दिशा और प्रेरणा प्रदान करते हैं। इस प्रकार विज्ञान में यह प्रक्रिया अनवरत चलती रहती है। सामान्यतया यही विज्ञान की पद्धति का निर्माण करती है। विज्ञान की इसी विशेषता को गुडे एवं हॉट ने निम्नलिखित शब्दों में

व्यक्त किया है, "विज्ञान अवलोकन से प्रारम्भ होता है तथा उसे अन्तिम वैधता के लिए आवश्यक रूप से अवलोकन पर ही लौटकर आना पड़ता है।"

7. कारणता (Causality) : विज्ञान विभिन्न कारकों के परस्पर कारण–प्रभावों का अध्ययन करता है तथा परिणामों के कारणों की खोज करता है। विज्ञान घटना में विद्यमान कारकों तथा तथ्यों के परस्पर कार्य–कारण सम्बन्धों का अध्ययन, वर्णन और व्याख्या करता है। इस प्रकार से कारणता की खोज करना विज्ञान की एक प्रमुख विशेषता है।

8. आनुभाविकता (Empirical) : विज्ञान जो कुछ जानकारी, निष्कर्ष तथा ज्ञान प्रस्तुत करता है वह प्रत्यक्ष प्रमाणों और परीक्षणों पर आधारित होता है। विज्ञान भौतिक जगत का व्यवस्थित और आनुभविक ज्ञान है जिसे अवलोकन और परीक्षण के द्वारा प्राप्त किया जाता है। यह अनुमान, अटकल, कल्पना अथवा दर्शन पर आधारित नहीं होता। आनुभविकता विज्ञान की प्रमुख विशेषता है।

9. सार्वभौमिकता (Universality) : विभिन्न अनुसन्धानकर्त्ताओं का कहना है कि विज्ञान की उपर्युक्त विशेषताएँ–कार्य–कारण सम्बन्ध और आनुभविकता–सार्वभौमिक विशेषताएँ है। अर्थात् परीक्षण तथा अनुभव के द्वारा विज्ञान द्वारा प्रस्तुत घटना से सम्बन्धित कार्य–कारण सम्बन्ध की विश्व में कहीं पर भी जाँच करने पर परिणाम बदलते नहीं हैं।

10. तार्किकता (Logicality) : सभी अध्ययनों की तरह विज्ञान भी तार्किक होता है। विज्ञान घटना का तर्कपूर्ण प्रस्तुतीकरण होता है। विभिन्न तथ्यों के परस्पर सम्बन्ध को वह तार्किक रूप से सिद्ध करके वर्णन और व्याख्या करता है।

इसलिए विज्ञान का सम्बन्ध वैज्ञानिक पद्धति से है। यह घटना का वस्तुनिष्ठ अध्ययन करता है। विज्ञान और वैज्ञानिक पद्धति परस्पर एक–दूसरे से घनिष्ठतया सम्बन्धित हैं। विज्ञान को वैज्ञानिक पद्धति के बिना नहीं समझ करते। विज्ञान का अर्थ जानने के बाद अब वैज्ञानिक पद्धति का अध्ययन करेंगे।

1.5 वैज्ञानिक पद्धति का अर्थ एवं परिभाषा

(Meaning and Definitions of Scientific Method)

विज्ञान की अवधारणात्मक विवेचना तथा विशेषताओं की व्याख्या के उपरान्त अब हम यह समझ सकते हैं कि विज्ञान एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा अध्ययन किया जाता है। सामान्य व्यक्तियों द्वारा विज्ञान को प्राकृतिक विज्ञान के विषयों का पर्याय

मान लेने के कारण तथा प्राकृतिक विज्ञानों के क्षेत्र में अधिक प्रगति होने के कारण, यह भ्रांति उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि वैज्ञानिक पद्धति का आशय प्राकृतिक विज्ञानों की पद्धति से है। एक अन्य भ्रांति वैज्ञानिक पद्धति को लेकर यह है कि वैज्ञानिक पद्धति केवल एक ही है। इसका प्रमुख कारण वैज्ञानिक पद्धति का एक वचन में प्रयोग होना है। इस भ्रांति का प्रभाव वैज्ञानिकों पर पड़ा और उन्होंने आलोचना भी की है। वैज्ञानिक अनुसंधान की कोई एक निश्चित पद्धति नहीं है। साधारण शब्दों में कहा जा सकता है कि कोई भी वह अध्ययन–पद्धति वैज्ञानिक पद्धति है जिसे एक पक्षपात रहित अनुसंधानकर्त्ता किसी विषय के अध्ययन में प्रस्तुत करता है। यह एक ऐसी पद्धति है जो भावना, दर्शन अथवा तथ्य ज्ञान से सम्बन्धित न होकर वस्तुनिष्ठ अवलोकन, परीक्षण, प्रयोग और वर्गीकरण की एक व्यवस्थित कार्यप्रणाली पर आधारित होती है। इस प्रकार वैज्ञानिक पद्धति को भिन्न–भिन्न वैज्ञानिकों ने अलग–अलग रूप से परिभाषित किया है, जिनमें से कुछ प्रमुख निम्न हैं :

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका (Encyclopaedia of Britannica) के अनुसार, "वैज्ञानिक पद्धति एक सामूहिक शब्द है जो उन अनेक प्रक्रियाओं को स्पष्ट करता है जिनकी सहायता से विज्ञान का निर्माण होता है।" व्यापक अर्थों मे वैज्ञानिक पद्धति का तात्पर्य अनुसंधान की किसी ऐसी पद्धति से है जिसके द्वारा निष्पक्ष एवं व्यवस्थित ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

थाउलेस (Thouless) के अनुसार, "वैज्ञानिक पद्धति सामान्य नियमों की खोज के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु प्रविधियो की एक व्यवस्था है जो कि विभिन्न विज्ञानों में कई बातों में भिन्न–भिन्न होते हुए भी एक सामान्य प्रकृति को बनाए रखती है।"

स्प्रोट (Sprott) के अनुसार, "वैज्ञानिक पद्धति में प्रयोगीकरण, उपकल्पना और अध्ययन यन्त्रों में विश्वास करना आवश्यक होता है।"

ए. वुल्फ (A. Wolf) के अनुसार, "विस्तृत अर्थों में कोई अनुसंधान विधि जिसके द्वारा विज्ञान का निर्माण एवं विस्तार होता है, वैज्ञानिक पद्धति कहलाती है।"

कार्ल पियर्सन (Karl Pearson) के अनुसार, "जो व्यक्ति किसी भी प्रकार के तथ्यों का वर्गीकरण करता है, जो उनका परस्पर सम्बन्ध देखता है तथा उनके क्रमों का वर्णन करता है वैज्ञानिक विधि प्रयोग करता है।"

हेगडोर्न एवं लेबोबिज (Hagdorn and Labobitz) के अनुसार, "वैज्ञानिक पद्धति सोचने तथा समस्या के समाधान का एक तरीका है। यह आनुभविक संसार के प्रति अभिमुखन है तथा एक ऐसी प्रविधि है जिसका प्रयोग अधिकांशतः वैज्ञानिक सामाजिक घटनाओं के विज्ञान निर्माण के लिए करते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि वैज्ञानिक पद्धति अध्ययन की निष्पक्ष, वस्तुनिष्ठ, कार्य–कारण पर आधारित, व्यवस्थित, क्रमबद्ध, आनुभाविक तथा तार्किक प्रणाली है सामान्यीकरण, पूर्वानुमान और भविष्यवाणी करने में सक्षम है।

1.6 वैज्ञानिक पद्धति की मुख्य अवधारणाएँ :

वैज्ञानिक पद्धति की मुख्य अवधारणाएँ निम्नलिखित हैं :

1. क्रमबद्ध तथ्य अथवा सूचना प्रदान करना : वैज्ञानिक पद्धति क्रमबद्ध तथ्य अथवा सूचना प्रदान करती है। यह एक ऐसी क्रिया है जिससे संसार की सूचनाओं को क्रमबद्ध तरीके से प्राप्त किया जाता है। संसार का ज्ञान निरंतर वृद्धि करता जा रहा है। साथ ही इसे प्राप्त करने की प्रविधियाँ भी निरन्तर विकसित होती जा रही हैं। तात्पर्य यह है कि वैज्ञानिक पद्धति से ज्ञान निरन्तर तथा क्रमबद्ध रूप से प्राप्त किया जा सकता है।

2. समस्याओं के समाधान पर बल : वैज्ञानिक पद्धति में समस्याओं के समाधान पर बल दिया जाता है। वैज्ञानिक पद्धति की इस अवधारणा के अन्तर्गत सूचनाओं का संग्रह एवं तथ्यों का संग्रह करने से अधिक महत्वपूर्ण समस्या का समाधान ढूंढना है। केवल वही तथ्य अथवा सूचनाएँ संकलित की जाएं जो समस्या का स्थायी हल दे सकें अथवा समस्या के समाधान में सहायक हों। इसलिए वैज्ञानिक पद्धति की यह अवधारणा शोधकर्त्ताओं को समस्या से संबंधित तथ्य संकलन के लिए मार्गदर्शन का कार्य भी करती है और समस्या पर ध्यान केंद्रित करती है।

3. वैज्ञानिक पद्धति की प्रविधियाँ मानव विकास में सहायक : वैज्ञानिक पद्धति की प्रविधियां मानव विकास के लिए आवश्यक हैं। वैज्ञानिक पद्धति में अनेक प्रविधियां हैं, जिनका प्रयोग मानव अपने विकास के लिए कर सकता है। जैसे वैज्ञानिक उपकरणों के माध्यम से बड़े से बड़े कठिन कार्य आसानी से किए जा सकते हैं। उदाहरणस्वरूप शोधकर्त्ता अपने अध्ययन

क्षेत्र में सर्वेक्षण के लिए पैदल न जाकर बस या टैक्सी से जा सकता है इससे अधिक सुविधा होगी तथा सर्वेक्षण कार्य ज्यादा आसान हो जाएगा।

4. वैज्ञानिक पद्धति परीक्षण पर बल देती है : विज्ञान संशयात्मक है। वह प्रत्येक तथ्य का बारीकी से परीक्षण करता है। वह बिना परीक्षण किए कोई तथ्य स्वीकार नहीं करता। स्वीकार किए हुए तथ्यों का पुनर्परीक्षण कर यह निर्धारित करता है कि यह तथ्य किन–किन विशिष्ट दशाओं और परिस्थितियों में उपयोगी हो सकते हैं अथवा ये तथ्य किसी समस्या के हल को किस सीमा तक प्रभावित कर सकते हैं।

5. वैज्ञानिक पद्धति लचीली होती है : इसमें लचीलापन होने के कारण चिंतन आलोचनात्मक एवं परीक्षणात्मक होता है। इसलिए वैज्ञानिक पद्धति प्रगतिशील है। वैज्ञानिक पद्धति इन नवीन तथ्यों एवं विचारों को जो प्रमाणित है जल्दी स्वीकार कर लेती है।

6. वैज्ञानिक पद्धति परीक्षणीय तथ्यों तक सीमित : वैज्ञानिक पद्धति का क्षेत्र केवल परीक्षणीय तथ्यों तक सीमित है। वैज्ञानिक पद्धति का सीधा संबंध तथ्यों की व्याख्या से है। ऐसी व्याख्याएँ सामान्य व्यक्ति के चिंतन को प्रभावित करती हैं जो तथ्य अवैज्ञानिक और निरर्थक हैं वह इन्हें अप्रेक्षणीय और अपरीक्षणीय समझने के कारण इनसे तटस्थ रहता है। वह ऐसी व्याख्या को स्वीकार करता है जो क्रमबद्ध हो तथा जिसकी पुष्टि परीक्षित तथ्यों द्वारा की जा चुकी हो। वैज्ञानिक पद्धति में तथ्यों की सही एवं स्पष्ट व्याख्या होती है जबकि अन्य पद्धतियां केवल दार्शनिक व्याख्या करती हैं। इस कारण दार्शनिक पद्धति में लोगों को यह ज्ञात नहीं होता कि किन परिस्थितियों में और किस सीमा तक यह पद्धति लाभकारी होती है और कब नहीं। जबकि वैज्ञानिक पद्धति हमेशा कुछ न कुछ सीखने पर बल देती है। इसमें व्यावहारिक हल प्राप्त होते हैं। इसी व्यावहारिक बुद्धि के कारण ही वैज्ञानिक पद्धति को अपनाने वाले विद्वानों ने अनेक लाभकारी व मानव कल्याण के उपयोग हेतु अनेक यंत्र बनाए।

7. वैज्ञानिक पद्धति में शोध नियंत्रित होता है : वैज्ञानिक पद्धति किसी शोध को बहुत सीमा तक नियंत्रित कर देती है नियंत्रित करने का अर्थ है जिस तथ्य अथवा चर का किसी परिणाम के संभावित कारण की उपकल्पना का अध्ययन किया जा रहा है उसके अतिरिक्त अन्य सभी तथ्यों अथवा चरों को अलग कर देना ताकि यह पता लग सके कि उस

उपकल्पित तथ्य अथवा चर का कोई प्रभाव पड़ता है अथवा नहीं और यदि प्रभाव पड़ता है तो कितना? वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा नियंत्रण इसलिए किया जाता है ताकि अतार्किक और निरर्थक तथ्य अथवा चर के संकलन से बचा जा सके। वैज्ञानिक पद्धति में ऐसी प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है जिनसे अशुद्धियों का पता लगाकर उनका निवारण किया जा सके।

8. पद्धति कुछ विशिष्ट उपकरणों के उपयोग से संबंधित है : वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग सामान्यता प्राकृतिक विज्ञानों यथा भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान आदि में किया जाता है। इन विज्ञानों में उपकरणों और जटिल यंत्रों के माध्यम से वैज्ञानिक प्राकृतिक रहस्यों का उद्घाटन करता है। वैज्ञानिक पद्धति का उक्त अर्थ में प्रयोग केवल प्रकृति के जटिल रहस्यों, नियमों, सिद्धांतों का उपकरणों एवं यंत्रों आदि से पता लगाना होता है। वैज्ञानिक पद्धति की परिभाषा करते हुए गुडे एवं हॉट ने लिखा है, "वैज्ञानिक पद्धति का मूल स्वरूप उसके द्वारा आनुभाविक अध्ययनों में प्रयुक्त किए गए उपागम के स्वरूप में निहित होता है। सामाजिक ज्ञान के संबंध में वैज्ञानिक पद्धति विभिन्न पद्धतियों का प्रयोग जैसे प्रतिदर्शन, आँकड़ो का विश्लेषण, साक्षात्कार, अवलोकन, सर्वेक्षण, निरीक्षण, प्रश्नावली, अंतर्वस्तु विश्लेषण आदि अपने शोध कार्य को करने के लिए करती है।''

9. वैज्ञानिक पद्धति द्वारा केवल दृश्य जगत की ही व्याख्या हो सकती है : वैज्ञानिक पद्धति द्वारा दृश्य जगत को आसानी से समझा जा सकता है। यह दृश्य जगत हमारी एक अथवा अनेक इंद्रियों द्वारा गृहीत होता है। इन दृश्यों को समझने के लिए कुछ ऐसे तथ्यों अथवा चरों की आवश्यकता होती है जो सीधे–सीधे ऐसी वस्तुओं को निरूपित नहीं करते हैं जिन्हें कि इंद्रियों द्वारा ग्रहण किया जा सके। ऐसी वस्तुओं का अस्तित्व हम सैद्धांतिक व्याख्या के लिए मान लेते हैं। इन अस्तित्वहीन वस्तुओं के मध्य हमें आपसी संबंध मानने पड़ते हैं, जिससे दृश्य जगत को निगमित कर सकते हैं। निगमन में ज्ञात वस्तुओं एवं उनके ज्ञात संबंधों के आधार वाक्य के रूप में प्रयोग किया जाता है इन ज्ञात वस्तुओं एवं ज्ञात संबंधों के सापेक्ष दृश्यों से संबंध रखने वाले वर्णनात्मक कथनों अथवा तथ्यों की सत्यता अथवा असत्यता का निर्णय किया जा सकता है।

10. वैज्ञानिक पद्धति कार्य–कारण संबंधों पर आधारित है : वैज्ञानिक पद्धति समस्या अथवा अध्ययन विषय में कार्य–कारण सिद्धांतों के अध्ययन पर बल देती है। कार्य कारण का अर्थ है कि किसी घटना अथवा तथ्य के कारण अथवा परिणाम को ज्ञात करना एवं उसके पारस्परिक संबंधों की व्याख्या करना। वैज्ञानिक पद्धति किसी घटना अथवा तथ्य को केवल उसके वास्तवकि रूप में ही प्रस्तुत करने में रूचि नहीं लेती बल्कि उस घटना अथवा तथ्यों के कारणों की भी व्याख्या करती है। वैज्ञानिक पद्धति तथ्य अथवा घटनाओं का वर्णन क्या है? क्यों है? एवं क्या होगा को ध्यान में रखते हुए करती है। इसमें तथ्यों के हर पहलुओं का पूरी तरह विश्लेषण किया जाता है।

अतः स्पष्ट है कि वैज्ञानिक पद्धति ज्ञान को एक व्यवस्थित रूप में व्यक्त करती है। यह विषय वस्तु को सीमित कर देती है। यह एक प्रविधि है एवं क्रियाशीलता इसका स्वरूप है। यह ज्ञान का संग्रह नहीं वरन् एक प्रकार का अन्वेषण, विश्लेषण व व्याख्या है।

1.7 वैज्ञानिकता पद्धति की विशेषताएँ

(Characteristic of the Scientific Method)

उपरोक्त विवेचना के आधार पर वैज्ञानिक पद्धति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित है :

1. सत्यापनशीलता (Verifiability) : अध्ययन के अन्तर्गत प्राप्त हुये तथ्यों को परीक्षण तथा पुनः परीक्षण के योग्य होना चाहिये। वैज्ञानिक प्रविधि मे नियमों की बारम्बारता जाँच कर लेने पर ही उनके सही उतरने पर ही वे विश्वसनीय बन जाया करते हैं। इस तरह पुनः परीक्षण के द्वारा वैज्ञानिक पद्धति केवल तथ्यों का उद्घाटन ही नहीं करती बल्कि उनकी सार्वभौमिकता को भी प्रमाणित करती है। जेम्स लूथर ने लिखा है कि जिस पद्धति द्वारा पुनः परीक्षा सम्भव नहीं, वह वैज्ञानिक पद्धति नहीं हो सकती है, वह या तो दार्शनिक अथवा काल्पनिक पद्धति होती है।

2. निश्चितता (Definitness) : वैज्ञानिक पद्धति के अन्तर्गत अस्पृश्यता या अनिश्चितता का अभाव होता है। वैज्ञानिक पद्धति का कार्य सबके लिये समान होता है। ऐसा नहीं है कि एक वैज्ञानिक के लिये कुछ और दूसरे वैज्ञानिक के लिए कुछ हो। वैज्ञानिक किसी भी समय अपनी सुविधानुसार सत्य की खोज कर सकता है। वैज्ञानिक पद्धति अपने अन्तर्गत कभी भी अनिश्चितता को स्थान नहीं देती है। उदाहरण के लिये यदि हम यह कहें कि सभी गरीब लुटेरे हैं तो हमारा यह कथन वैज्ञानिक पद्धति के अनुकूल नहीं होगा क्योंकि

इस कथन में निश्चितता का अभाव है। इसी तरह यदि हम किसी व्यक्ति को देखकर यह कहें कि अमुक व्यक्ति काफी लम्बा था, तो भी हमारा यह कहना वैज्ञानिक पद्धति के अनुकूल नहीं होगा। इसके स्थान पर यदि हम यह कहें कि अमुक व्यक्ति की लम्बाई 6′ 6′′ है तो हमारे इस कथन से व्यक्ति की लम्बाई का एक निश्चित ज्ञान हमें होगा और इस तरह वह वैज्ञानिक पद्धति के अनुकूल कहा जा सकेगा।

3. तार्किकता (Rationality) : तार्किकता वैज्ञानिक पद्धति की एक अन्य विशेषता है इसके अन्तर्गत अनुसन्धानकर्त्ता न केवल तर्क के आधार पर अध्ययन के प्रयोग में लायी जाने वाली पद्धति के औचित्य को स्पष्ट करता है बल्कि अपने निष्कर्षों को भी तार्किक आधार पर प्रस्तुत करता है। वास्तव में अगर देखा जाए तो तर्क का सम्बन्ध तथ्य और विवेक से है वैज्ञानिक पद्धति आधारभूत रूप से अनुभवसिद्ध अध्ययन को महत्व देती है लेकिन यदि कोई तथ्य तार्किक आधार पर उचित मालूम होता है तो उन्हें भी ग्रहण करने में संकोच नहीं करती है। संक्षेप में, विज्ञान पृष्ट प्रमाणों पर खड़ा रहता है। तर्कशास्त्र वज्ञानिक पद्धति का अभिन्न अंग है। तर्क की प्रक्रिया के दो मुख्य भेद हैं–(क) निगमन और (ख) आगमन।

(क) निगमन (Deduction) : 'निगमन' उस तर्क को कहते हैं जिसमें आधार वाक्यों से आवश्यक निष्कर्ष निकाले जाते हैं। यदि आधार वाक्य सत्य हो तो निष्कर्ष भी अवश्य सत्य होगा। उदाहरण के लिए, दो आधार वाक्य लें– (1) क, ख से बड़ा है। (2) ख, ग से बड़ा हैं यदि ये दोनों वाक्य सत्य हों तो यह निष्कर्ष अवश्य सत्य होगा–क, ग से बड़ा है। निगमन का एक और उदाहरण है जिसे न्यायवाक्य (Syleogism) कहा जाता है। सारे मनुष्य मर्त्य हैं। शंकराचार्य एक मनुष्य है। इसलिए शंकराचार्य मर्त्य है।

(ख) आगमन (Induction) : 'आगमन' का अर्थ है दृष्टान्तों के आधार पर सामान्यीकरण (Generalization) अर्थात् कुछ दृष्टान्तों में पाई गई बात को सबके लिए सत्य मानना। जैसे यदि क्षय के किसी रोगी को एक दवा दी जाए और वह ठीक हो जाए और इसी प्रकार क्षय के बहुत से रोगी उस दवा से ठीक हो जाएँ तो यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि वह क्षय रोग की दवा है हमारा यह निष्कर्ष आगमन द्वारा निकाला हुआ कहा जाएगा।

4. वस्तुनिष्ठता (Objectivity) : वैज्ञानिक पद्धति की प्रथम शर्त उसका वस्तुनिष्ठ या वैषयिक होना है अर्थात् यह पद्धति व्यक्तिनिष्ठ न होकर वस्तुनिष्ठ होती है। ए. डब्ल्यू. ग्रीन

ने लिखा है कि वस्तुनिष्ठता का आशय किसी तथ्य अथवा प्रमाण की निष्पक्षतापूर्वक जाँच करने की इच्छा एवं योग्यता है। वैज्ञानिक पद्धति में अनुसन्धानकर्त्ता के स्वयं के विचारों, इच्छाओं, आदर्शों, मूल्यों, पूर्वधारणाओं, पूर्वाग्रहों आदि का कोई स्थान नहीं है। ए. वुल्फ ने लिखा है, "सही ज्ञान की प्रथम शर्त ऐसे तथ्यों को प्राप्त करने की दृढ़ इच्छा एवं योग्यता है जो बाह्य स्वरूप, प्रचलित विचारधारा एवं व्यक्तिगत विचारों से प्रभावित न हो। वस्तुनिष्ठता जितनी सरल दिखाई देती है वस्तुतः उतनी सरल नहीं है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने साथ कुछ मनोवृत्तियों, संस्कार, विचार एवं दृष्टिकोण अवश्य रखता है और ऐसी स्थिति में उसका पूर्णरूपेण वस्तुनिष्ठ होना बहुत कठिन होता है, किन्तु अनुसन्धान के दौरान यह माना जाता है कि किस सीमा तक वस्तुनिष्ठता का पालन करेगा।

5. सामान्यता (Generality) : वज्ञैानिक पद्धति अधिकतर समान्य घटनाओं के अध्ययन को अधिक महत्व देती है। किसी विशेष घटना को उतना महत्व नहीं दिया जाता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि वैज्ञानिक पद्धति के अन्तर्गत सामान्यता की विशेषता को दो अर्थों में देखा जा सकता है। प्रथम तो यह है कि वैज्ञानिक पद्धति विज्ञान की सभी शाखाओं में सामान्य होती है। किसी भी प्रकार का पक्षपात देखने को नहीं मिलता है कि एक शाखा के लिए वैज्ञानिक पद्धति एक तरह की हो और दूसरी शाखा के लिए दूसरी तरह की। इस सम्बन्ध में कार्ल पियर्सन ने भी अपने मत को व्यक्त करते हुए कहा है कि, "वैज्ञानिक पद्धति विज्ञान की सभी शाखाओं में एक जैसी होती है।" दूसरा अर्थ यह है कि वैज्ञानिक पद्धति विषय के सम्बन्ध में एक सामान्य सत्य को ढूंढ़ने की विधि है। इस तरह वैज्ञानिक पद्धति में सामान्यता को समानता के आधार पर महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है।

6. भविष्यवाणी (Prediction) : वैज्ञानिक पद्धति में भविष्यवाणी करने या पूर्वानुमेयता की क्षमता होती है। यह विशेषता वैज्ञानिक पद्धति की अन्य विशेषताओं से सम्बन्धित है। इस पद्धति के द्वारा घटना का जो अध्ययन किया जाता है उसमें कार्य–कारण सम्बन्धों की व्याख्या की जाती है। 'क्या है?', 'कैसे है?', के आधार पर 'क्या होगा?' का पूर्वानुमान या भविष्यवाणी करना सम्भव हो जाता है। उदाहरण के रूप में समाजशास्त्रीय अध्ययन द्वारा यह मालूम होता है कि महिला शिक्षा से महिलाओं में आर्थिक स्वावलम्बन आता है, वे अपने पैरों पर खड़ी हो जाती हैं। इसके आधार पर यह भविष्यवाणी की जा सकती है कि अगर महिलाओं की स्थिति सुधारनी है तो स्त्री–शिक्षा पर बल देना चाहिए; इससे उनकी आर्थिक

स्थिति सुधरेगी तथा स्त्री शिक्षा से उनका शोषण तथा उन पर अत्याचारों को रोका जा सकता है।

7. सैद्धान्तीकरण (Theorization) : वैज्ञानिक पद्धति की सबसे महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट विशेषता इसके द्वारा सिद्धान्तों का निर्माण करना है। वैज्ञानिक पद्धति की सिद्धान्तों के निर्माण करने की विशेषता इसके द्वारा किए गए अध्ययन के चरणों में अन्तिम चरण होता है। इस पद्धति के द्वारा प्राक्कल्पना का निर्माण किया जाता है। तथ्य एकत्र किए जाते हैं। उनमें परस्पर कार्य–कारण का अध्ययन करके सामान्यीकरण किया जाता है जो सिद्धान्त के रूप में अन्त मे प्रस्तुत किया जाता है। सिद्धान्त तथ्यों का परस्पर सम्बन्ध बताता है जो वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा किए गए अध्ययनों से ही सम्भव है। वैज्ञानिक पद्धति सिद्धान्तों का निर्माण करके विज्ञान में ज्ञान की वृद्धि करती है। वैज्ञानिक पद्धति के अध्ययन के अन्तिम चरण मे सैद्धान्तीकरण किया जाता है।

8. कार्यकारण सम्बन्ध पर आधारित (Cause and Effect Relationship) : कोई भी घटना पूर्णतया स्वतन्त्र नहीं होती है बल्कि उसके घटित होने का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। वैज्ञानिक पद्धति के अतर्गत घटनाओं की व्याख्या कार्य–कारण सम्बन्ध के आधार पर की जाती है।

1.8 वैज्ञानिक पद्धति के चरण

(Steps of Scientific Method)

वैज्ञानिक पद्धति में अध्ययन क्रमबद्ध, व्यवस्थित, तार्किक और निश्चित चरणों के अनुसार होता है। इसे अधिक–से–अधिक क्रमबद्ध और व्यवस्थित करने के लिए अनुसन्धानकर्त्ताओं ने समय–समय पर उसके चरणों को सुनिश्चित और स्पष्ट किया है। इनमें ऑगस्ट कॉम्टे, पी॰ वी॰ यंग, लुण्डबर्ग, गुडे एवं हॉट आदि हैं। जिन्होंने वैज्ञानिक पद्धति के चरणों पर प्रकाश डाला है। इनके विचार निम्नानुसार हैं :

1. ऑगस्ट कॉम्टे के अनुसार वैज्ञानिक पद्धति के निम्नलिखित पाँच प्रमुख चरण हैं– (1) विषय का चयन, (2) अवलोकन द्वारा तथ्यों का संकलन, (3) तथ्यों का वर्गीकरण, (4) तथ्यों की जाँच और (5) नियमों का प्रतिपादन।

लुण्डबर्ग का कथन है कि, "व्यापक अर्थों में वैज्ञानिक पद्धति का अर्थ तथ्यों का अवलोकन, वर्गीकरण और व्यवस्था करना है।" इस कथन के आधार पर लुण्डबर्ग ने वैज्ञानिक पद्धति के चार प्रमुख चरणों का उल्लेख किया है :

1. कार्यशील परिकल्पना का निर्माण।
2. तथ्यों का अवलोकन तथा लेखन।
3. संकलित तथ्यों का वर्गीकरण और संगठन।
4. सामान्यीकरण।

पी. वी. यंग के कथानुसार वैज्ञानिक पद्धति के छह चरण प्रमुख हैं :

1. अध्ययन से सम्बन्धित समस्याओं का निर्धारण।
2. एक कार्यशील परिकल्पना का निर्माण।
3. वैज्ञानिक प्रविधियों के द्वारा समस्या का अवलोकन तथा उसकी खोज।
4. प्राप्त तथ्यों का व्यवस्थित लेखन।
5. तथ्यों का विभिन्न क्रमों अथवा श्रेणियों में वर्गीकरण।
6. वैज्ञानिक सामान्यीकरण।

वैज्ञानिक पद्धति के उपरोक्त चरणों को और भी स्पष्ट रूप से समझने के लिए यह आवश्यक है कि उनके विषय मे कुछ विस्तारपूर्वक विवेचना की जाए जो कि निम्न प्रकार से है :

1. कठिनाई एवं समस्या की अनुभूति (Problem-Obstacle Idea) : पर्यावरण में प्रेक्षण करते समय किसी तथ्य को समझने की उत्सुकता होती है। तो मस्तिष्क चकराता है, वह समस्या की चेतना अवस्था है। डीवी ने कहा कि, "यदि समस्या की अनुभूति व परेशानी नहीं होती तो गम्भीर चिंतन प्रारम्भ नहीं होता। अच्छी समस्या की चेतना अनुभव पर तथा सत्यान्वेषण की उत्कृष्ट प्रेरणा और मनोवृत्ति पर निर्भर करती है।" समस्या की चेतना होने पर प्रारम्भ में समस्या अस्पष्ट रहती है।

2. समस्या का स्पष्ट वर्णन (Explanation of Problem) : समस्या के प्रत्येक पहलू पर गहन चिन्तन करने से समस्या स्पष्ट होने लगती है। अतः वैज्ञानिक अपने अनुभवों के आधार पर मनन कर समस्या से सम्बन्धित तथ्यों का प्रेक्षण करता है और समस्या को परिभाषित करता है। यह वैज्ञानिक पद्धति के अन्तर्गत दूसरी अवस्था है।

3. उपकल्पनाओं का विकास (Development of Hypothesis) : समस्या पर मनन करते हुए विज्ञानवेत्ता उपकल्पना का निर्माण कर सकता है। उपकल्पनाएँ समस्या के सम्भावित हल हैं अथवा परीक्षण हेतु प्रस्तावित तथ्य कथन हैं उपकल्पनाओं के द्वारा अप्रेक्षित दो या अधिक तथ्यों के सम्भावित सम्बन्धों का वर्णन किया जाता है। कतिपय अनुसन्धानों में उपकल्पनाओं का निर्माण अत्यावश्यक रहता है जबकि कुछ में आवश्यक नहीं रहता, जैसे सर्वेक्षण अुनसंधानों में, परन्तु वास्तव में यदि अनुसंधानकर्त्ता उपकल्पनाओं का निर्माण कर सर्वेक्षण आदि अनुसंधान करे तो अशुद्धि की सम्भावनाएँ कम हो जाती हैं। अच्छी उपकल्पनाओं का निर्माण अन्तर्दृष्टि और अनुभव पर निर्भर करता है। किसी अनुसंधान विशेष में अनेक उपकल्पनाएँ हो सकती हैं। सर्वेक्षण अनुसंधानों के लिए बनी हुई प्रश्नावलियों मे लगभग प्रत्येक प्रश्न वास्तव में एक उपकल्पना की परीक्षा के लिए होता है।

4. अवलोकन (Observation) : सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में अनुसंधानकर्त्ता द्वारा समस्या से सम्बन्धित इकाइयों का अवलोकन करना एक महत्वपूर्ण कार्य है। वैसे भी साधारणतया प्रत्येक व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में कुछ न कुछ अवलोकन करता ही रहता है, परन्तु उन्हें हम व्यवस्थित रूप में देख नहीं पाते हैं। सामाजिक अवलोकन में हमें विशेषकर उन व्यवहारों से सम्बन्धित होना पड़ता है जिन्हें हम देख या सुन सकते हैं। प्रत्येक वैज्ञानिक अध्ययन अवलोकन से प्रारम्भ होता है तथा प्राप्त निष्कर्षों की प्रमाणिकता भी एक बड़ी सीमा तक सूक्ष्म अवलोकन पर ही निर्भर होती है।

5. सामग्री का संकलन (Collection of Data) : सामग्री के संकलन में मुख्यतया दो प्रमुख स्रोतों का उल्लेख किया जा सकता है–प्रथम, ऐतिहासिक स्रोत हैं जिसके अन्तर्गत पुराने ग्रन्थ, शिलालेख, प्राचीन अवशेष, नर–कंकाल आदि आते हैं। द्वितीय स्रोत क्षेत्रीय स्रोत हैं जिसके अन्तर्गत प्रत्यक्ष निरीक्षण, साक्षात्कार, सनुसूची तथा प्रश्नावली, अन्य जीवित सूचनादाता आदि आते हैं। आवश्यकतानुसार इन स्रोतों से सूचनाएँ तथा तथ्य एकत्रित किये जाते हैं इसके लिये किन–किन स्रोतों का प्रयोग किया जायेगा यह अध्ययन–विषय की प्रकृति व क्षेत्र पर निर्भर करता है।

6. वर्गीकरण (Classification) : जब समस्त सामग्री को एकत्रित कर लिया जाता है उसके बाद ही उसमें से आवश्यकतानुसार उपर्युक्त तथ्यों को पृथक करना पड़ता है। वर्गीकरण वह आधार है जिसकी सहायता से विभिन्न घटनाओं अथवा दशाओं के बीच तुलना करना

और उसके सह–सम्बन्ध को ज्ञात करना सम्भव हो पाता है। अध्ययनकर्त्ता द्वारा किये जाने वाले वर्गीकरण की प्रगति उसकी अपनी अन्तर्दृष्टि, अनुभव, योग्यता, अध्ययन का उद्देश्य और तथ्यों की यथार्थता पर निर्भर करेगी। पर किसी भी अवस्था में वर्गीकरण का कार्य जितनी कुशलता व स्पष्ट रूप में किया जायेगा, वैज्ञानिक निष्कर्ष तक पहुँचना अनुसंधानकर्त्ता के लिये उतना ही सरल होगा।

7. समान्यीकरण (Generalization) : सामग्री को छाँट लेने तथा उसे क्रमबद्ध एवं वर्गीकृत कर लेने के पश्चात् वैज्ञानिक अनुसंधान का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान आता है अर्थात् सामान्यीकरण मालूम करना। यह निष्कर्ष या तो अतीत में दिये गये निष्कर्षों का समर्थन करते हैं अथवा उनका खण्डन करते हैं। ये सामान्य निष्कर्ष ही वह महत्त्वपूर्ण आधार हैं जिनकी सहायता से सिद्धान्तों का निर्माण होता है। यदि कोई अध्ययनकर्त्ता केवल सामग्री को वर्गीकृत करके दे तो सारा प्रयास बेकार ही माना जायेगा जब तक कि कोई अन्तिम परिणाम न पता चल सके। उसे यह भी देखना चाहिये कि जिस आरम्भिक कल्पना को लेकर उसे अपने अध्ययन को आगे बढ़ाया था वह अपने उस प्रारम्भिक विचार का अध्ययन के आधार पर किस सीमा तक प्रमाणित पा सका है, उसमें कितनी यथार्थता रही है।

1.9 वैज्ञानिक शोध पद्धति की प्रक्रिया के विभिन्न स्तर : वैज्ञानिक शोध पद्धति के निम्नलिखित स्तर हैं :

1. समस्या को परिभाषित करना और जानना : सामाजिक घटनाओं का अध्ययन कर जिस समस्या का शोध करना चाहते हैं उसका अध्ययन कर उसके बारे में स्पष्टता होना ही समस्या को परिभाषित करना और उसे जानना है।

2. समस्या की पृष्ठभूमि की खोज : इसके लिए शोधकर्त्ता को जितना संभव हो सके समस्या से संबंधित सभी साहित्य को पढ़ लेना चाहिए, जिससे इसके बारे में पूर्व अवलोकन व उपकल्पनाओं का विकास हो सके।

3. उपकल्पनाओं का विकास : समस्या से संबंधित जो ज्ञान आपको है उस आधार पर उनके हल के लिए उपकल्पनाओं का निर्माण करना, कार्यकारण, प्रभाव तथा दूसरी घटना के साथ सह संबंध ज्ञात करने की क्षमता का विकास करना, इस स्तर की मुख्य विशेषता है।

4. आँकड़ों का संकलन : इस स्तर पर शोधकर्त्ताओं को अपनी उपकल्पनाओं को सही सिद्ध करने के लिए स्पष्ट आँकड़े संकलित करने की आवश्यकता होती है। उचित प्रगतियों द्वारा आँकड़ों का संकलन करना वैज्ञानिक पद्धति का अगला चरण है।

5. परिकल्पनाओं का परीक्षण : प्राप्त आँकड़ों के आधार पर निर्माण की गई परिकल्पनाओं का परीक्षण किया जाना इसकी उपयोगिता है।

6. आँकड़ों का विश्लेषण तथा निष्कर्ष : प्राप्त आँकड़ों के आधार पर निष्कर्ष देना तथा इनकी पुनः अवलोकन से तुलना करनी होती है। यदि उपकल्पना सही है तो अगला चरण प्रतिवेदन होता है अन्यथा फिर से उपकल्पनाओं का निर्माण स्तर पर पहुंचना होता है और फिर से सही आँकड़े संकलित करने होते हैं एवं परीक्षण करना होता है।

7. प्रतिवेदन : निष्कर्षों से प्राप्त तथ्यों को प्रतिवेदन के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

1.10 राजनीति विज्ञान में वैज्ञानिक शोध पद्धति की सीमाएँ : राजनीति विज्ञान में शोधकर्त्ता अपने राजनीति विश्लेषण में इस बात का प्रयत्न करता है कि किस प्रकार से अपने मूल्यों को प्रेषित करे तथा साथ ही यह प्रयास भी करता है कि उसके नैतिक विचारों का प्रभाव वास्तविक हो। मानव जीवन की समस्या दो प्रकार की होती है – वास्तविक और नैतिक। दोनों प्रकार की समस्याएं देखने में विजातीय लगती हैं पर वास्तव में दोनों का एक–दूसरे से सहसंबंध है। अतः तथ्यों और मूल्यों के बीच सहसंबंध होता है। कार्ल मेराटूम और अर्नस्ट टोरेल्स के अनुसार – व्यवहार और सिद्धांत दोनों में नैतिक मूल्यों का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। मूल्यों का राजनीति विज्ञान में महत्व एवं कार्य मुख्यतः समस्या के चयन का रूप निर्धारण करना, समस्या के निर्माण को विशिष्ट आधार देना एवं सामग्री संकलन का चयन और उनकी व्याख्या करना है। नैतिकता और वास्तविकता के बीच अटूट संबंध होता है। नैतिकता वास्तविक अनुभव पर निर्भर करती है। मानवीय मूल्यों की अनदेखी किए बगैर राजनीति विज्ञान में शोध नहीं किया जा सकता । आज हम प्रजातंत्र को अच्छी सरकार मानते हैं। प्रजातंत्र के मान्य मूल्य को अच्छी सरकार के मान्य मूल्य माना जाता है। जैसे सर्वोन्मुखी विकास दलितों, पिछड़ों के अधिकारों की रक्षा, कानूनी प्रणाली का सम्मान, जनता के हाथ में सत्ता आदि ही मूल्य हैं, जिनकी वजह से ही भारतवर्ष और अन्य देशों में प्रजातंत्र सुरक्षित है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होने के नाते सामाजिक घटनाओं से अपने–आपको अलग नहीं कर सकता है। इस कारण सामाजिक शोध में वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग की लगभग सभी समस्याएं राजनीति विज्ञान के शोधों में भी लागू होती हैं। परंतु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि राजनीति विज्ञान में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग नहीं किया जा सकता। वैज्ञानिक पद्धति की उपयोगिता को देखते हुए यह आवश्यक है कि समस्याओं के निराकरण के लिए मानव व्यवहार व उसके मूल्यों का गहराई से अध्ययन किया जाए जिससे उसमें वस्तुनिष्ठता का गुण विद्यमान हो जाए तथा विषय गणनात्मक हो जाए। इससे वर्तमान की घटनाओं के आधार पर भविष्य के बारे में पूर्वानुमान लगाया जा सके। मानव व्यवहार की प्रकृति परिवर्तनशील होती है। परिवर्तनशीलता या बदलाव संसार का नियम है परंतु यह परिवर्तनशील प्रकृति राजनीति विज्ञान में वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग में बाधा उत्पन्न नहीं कर सकती क्योंकि भौतिक घटनाओं की प्रकृति भी गतिशील होती है। परंतु फिर भी उसका अध्ययन वैज्ञानिक प्रक्रिया से आसानी से किया जा सकता है। अतः राजनीति विज्ञान में घटनाओं का अध्ययन भी वैज्ञानिक पद्धति द्वारा अवश्य किया जा सकता है। उपरोक्त पहलुओं पर विचार करने के पश्चात हम कह सकते हैं कि यद्यपि वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग राजनीति विज्ञान के सभी पक्षों का अध्ययन करने में नहीं किया जा सकता परंतु फिर भी बहुत सीमा तक हम इसके अध्ययन को वैज्ञानिक बना सकते हैं तथा घटनाओं के अध्ययन में अवलोकन, परीक्षण, विवेचन व विश्लेषण को आधार बनाकर शोध किए जा सकते हैं। इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि राजनीति विज्ञान में घटनाओं का अध्ययन वैज्ञानिक पद्धति से करना काफी कुछ संभव है।

1.11 सामाजिक अनुसन्धान में वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग की समस्या

(Problem of use of Scientific Method in Social Research)

समाज के विभिन्न पक्षों के अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति का प्रभावकारी प्रयोग हो सकता है या नहीं, यह प्रश्न अनुसंधानकर्त्ताओं के बीच विवाद का विषय है। अनुसंधानकर्त्ताओं का एक वर्ग यह मानता है कि सामाजिक अनुसंधानों में वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग नहीं किया जा सकता जबकि दूसरा वर्ग इसके महत्त्व को स्वीकार करता है। एक लम्बी चर्चा और विवाद के पश्चात् इन दोनों के बीच का मतभेद समाप्त नहीं हो पाया

है। दोनों तरह की विचारधाराएँ आज भी समाजिक विज्ञानों में प्रचलित हैं। इन दोनों में से किसे पूर्ण रूप से सही माना जाए, इस सम्बन्ध में निर्णय देना कठिन है, किन्तु प्रत्येक पक्ष के तर्कों की विस्तृत व्याख्या करना उपयुक्त होगा जिनके आधार पर एक निश्चित निष्कर्ष निकालने की सम्भावना बन जाएगी।

यह मूल्याँकन आवश्यक है कि वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग सामाजिक अनुसंधानों में नहीं किया जा सकता है। इस व्याख्या के लिए हम लुण्डबर्ग के द्वारा प्रस्तुत प्रारूप को ही आधार बना रहे हैं। लुण्डबर्ग ने लिखा है कि वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग सामाजिक अनुसन्धानों में नहीं हो सकता है उनके तर्क में सामाजिक घटनाओं की जटिलता, सामाजिक घटनाओं की व्यक्तिनिष्ठता एवं अमूर्तता, सामजिक घटना की गुणात्मक प्रकृति, सामाजिक घटनाक्रम की गतिशीलता, पूर्वानुमान न कर पाने की क्षमता आदि वे कारण हैं जो वैज्ञानिक पद्धति के मार्ग में बाधक माने जा सकते हैं। ये निम्न प्रकार हैं :

1. सामाजिक घटनाओं की जटिलता (Complexity of Social Phenomena) : लुण्डबर्ग लिखते हैं कि समाजिक घटनाओं की जटिलता अनुसन्धानों में वैज्ञानिक पद्धति के उपयोग मे कठिनाई उत्पन्न करती है। इस तर्क के समर्थन में यह कहा जाता है कि सामाजिक घटनाएँ और मानव व्यवहार उतने सरल नहीं होते हैं जितने सतही तौर पर सरल नजर आते हैं। सामाजिक घटनाओं में क्रम, व्यवस्था और नियम एक जटिल प्रक्रिया के रूप में आपस में गुँथे रहते हैं। अतः उन्हें समझना आसान नहीं होता। सामजिक घटनाएँ अपेक्षाकृत जटिल हैं। लुण्डबर्ग ने लिखा है कि जटिलता वैज्ञानिक पद्धति के उपयोग की सम्भावना को समाप्त नहीं कर पाती है। अगर सामाजिक घटनाओं पर गहनता से विचार करें तो यह स्पष्ट होता है कि उसमें भी नियमितता, व्यवस्था और क्रमबद्धता है और ऐसी घटनाओं का अध्ययन निश्चित रूप में वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा किया जा सकता है।

2. सामजिक घटनाओं की व्यक्तिनिष्ठता एवं अमूर्तता (Subjectivity & Abstractness of Social Phenomena) : सामाजिक अनुसंधान में वैज्ञानिक पद्धति के उपयोग में दूसरी बाधा सामाजिक घटनाओं की व्यक्तिनिष्ठता एवं अमूर्तता है। घटनाओं की व्यक्तिनिष्ठता की चर्चा करते हुए अनुसंधानकर्त्ता कहते हैं कि प्राकृतिक विज्ञानों में हम जिन वस्तुओं का अध्ययन करते हैं उनसे हमारा कोई निश्चित लगाव नहीं होता और न ही अपने कोई विचार होते हैं। ऐसी स्थिति में अनुसन्धानकर्त्ताओं के लिए यह सरल व सम्भव होता है कि वे तटस्थता

को बनाए रखते हुए वस्तुनिष्ठ रह कर घटनाओं का अध्ययन कर सकें। इसके विपरीत सामाजिक अनुसंधान के अन्तर्गत अनुसंधानकर्त्ता ऐसे विषय का अध्ययन करते हैं जिसमें उनके स्वयं के अपने निश्चित विचार होते हैं, दृष्टिकोण होते हैं और उसके विभिन्न पक्षों से वे लगाव महसूस करते हैं। ऐसी स्थिति में वे अपने आपको पूर्ण तटस्थ नहीं रख पाते हैं और तथ्य अनुसंधानकर्त्ता के विचार या लगाव से प्रभावित होने लगते हैं। यह व्यक्तिनिष्ठता की स्थिति है। सामाजिक घटनाओं में अमूर्तता की चर्चा करते हुए यह कहा जाता है। कि प्रकृति विज्ञान में जिन वस्तुओं का अध्ययन करते हैं उनमें से अधिकाँश मूर्त होती हैं जिन्हें देखा या छूआ जा सकता है। इनके विपरीत सामाजिक सम्बन्ध व सामाजिक घटनाएँ ऐसी स्थितियाँ हैं जो कि अमूर्त हैं।

3. सामाजिक घटनाओं की गुणात्मक प्रकृति (Qualitative Nature of Social Phenomena) : सामाजिक अनुसंधान में वैज्ञानिक पद्धति के महत्त्व में एक बाधा सामाजिक घटनाओं की गुणात्मक प्रकृति है। प्राकृतिक विज्ञान और समाजिक विज्ञान मे महत्त्वपूर्ण अन्तर यह है कि प्राकृतिक विज्ञानों में तथ्य परिमाणात्मक होते हैं जबकि समाज विज्ञानों में तथ्य अधिकाँशतः गुणात्मक होते हैं। अभिप्राय यह हुआ कि सामाजिक घटनाओं से प्राप्त तथ्यों का एक बहुत बड़ा भाग ऐसा होता है जिसका माप नहीं किया जा सकता है। यह स्थिति एक वर्ग के विचार में वैज्ञानिक पद्धति के मार्ग में बाधा उत्पन्न करती है। इस सन्दर्भ में यह ध्यान रखना होगा कि विज्ञान के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उसके सभी तथ्य परिमाणात्मक हों या गुणात्मक तथ्यों का अध्ययन वैज्ञानिक विधि से नहीं किया जा सकता। दूसरी ओर यह ध्यान रखना होगा कि वर्तमान में समाजिक विज्ञान और उसकी प्रविधियाँ इतनी विकसित हो चुकी हैं कि उनके माध्यम से हम गुणात्मक घटनाओं की परिमाणात्मक व्याख्या प्रस्तुत कर सकते हैं। इस सन्दर्भ में यह स्पष्ट करना महत्त्वपूर्ण होगा कि केवल परिमाणात्मक तथ्य अध्ययन के लिए पर्याप्त नहीं होते परिमाणात्मक तथ्यों के साथ–साथ उनका गुणात्मक विश्लेषण तथ्यों की गहन व्याख्या में मदद देता है। अतः इस आधार पर यह माना जाना चाहिए कि तथ्यों की गुणात्मकता या परिमाणात्मकता आलोचना के विषय नहीं हो सकते और यह कि तथ्यों की गुणात्मकता वैज्ञानिक पद्धति के उपयोग में बाधक है, एक भ्राँतिमूलक धारणा है।

4. सामाजिक घटनाओं की गतिशीलता (Dynamic Nature Social Phenomena) : सामाजिक घटनाओं की प्रकृति की चर्चा करते हुए कहा जाता है कि समाज गतिशील अवस्था में रहता है। इसके विभिन्न अंग समय–समय पर परिवर्तित होते रहते हैं और इस परिवर्तनशीलता के कारण समाज–विज्ञानों में वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग नहीं किया जा सकता है। समाज चूँकि गतिशील अवस्था में रहता है, इस कारण उसके बनाए गए सिद्धान्त आगे आने वाली स्थितियों के लिए और उपयुक्त होंगे, इसकी सम्भावना कम हो जाती है। इस तर्क को दो कारणों से स्वीकार नहीं किया जा सकता है–एक तो यह कि कतिपय भौतिक एवं प्राकृतिक घटनाओं में गत्यात्मकता और परिवर्तनशीलता का तत्त्व होता है और ऐसा होने पर उनका अध्ययन वैज्ञानिक पद्धति के माध्यम से किया जाता है। सामाजिक घटनाएँ जब परिवर्तित होती हैं, ये परिवर्तन एक व्यवस्थित और नियमित क्रम में होता है और इस कारण उसे समझने में विशेष कठिनाई नहीं हो सकती। यह भी ध्यान में रखना होगा कि यद्यपि समाज में गत्यात्मकता है, किन्तु परिवर्तन और गतिशीलता की दर इतनी कम है कि आज अनुसंधान के आधार पर जो नियम बनाये गये हैं वे कल के लिए सही नहीं होंगे, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता। यदि हमारे स्वयं के समाज की विभिन्न संस्थाओं या परम्पराओं पर ध्यान दें तो यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है। इसमें मौलिक परिवर्तन आने में लम्बा समय लग जाता है। इस कारण गत्यात्मकता नियमों के प्रतिपादन के मार्ग में बाधक नहीं बन सकती है।

5. पूर्वानुमान की सीमित क्षमता (Limited Capacity of Predictibility) : वैज्ञानिक अध्ययनों की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि ऐसे अध्ययनों के आधार पर भविष्य में होने वाली घटनाओं का पूर्वानुमान किया जा सकता है। ऐसा पूर्वानुमान प्राकृतिक विज्ञान की आधारभूत विशेषता रही है। विचारकों का एक वर्ग यह मानता है कि समाजिक घटनाओं के सन्दर्भ मे पूर्वानुमान या भविष्यवाणी करना सम्भव नहीं है। वास्तविकता यह है कि इस तर्क को इसी रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है, किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्राकृतिक घटनाओं की तुलना में सामाजिक घटनाओं का पूर्वानुमान करना अपेक्षाकृत कठिन है। जॉन मेज ने लिखा है कि कॉम्टे और स्पेन्सर से लेकर वर्तमान के वैज्ञानिक व विचारक कम से कम इससे सहमत हैं कि भौतिक व प्राकृतिक घटना की तुलना में मानवीय व्यवहार की भविष्यवाणी करना कहीं अधिक कठिन है। इसका मूल कारण यह है

कि सामाजिक घटनाओं एवं मानवीय व्यवहार की प्रकृति, प्राकृतिक घटनाओं की तुलना में अधिक जटिल होती हैं। एक आरोप समाज विज्ञानों पर यह भी लगाया जाता है कि इसमें जो पूर्वानुमान किये जाते हैं वास्तविक परिस्थितियों में सही सिद्ध नहीं होते। वस्तुतः पूर्वानुमान की क्षमता और पूर्वानुमान सही साबित होना ये दोनों भिन्न–भिन्न मान लिये जायें तो यह बात समाज विज्ञानों तक ही सीमित नहीं है वरन् प्राकृतिक विज्ञानों में भी दृष्टिगत होती है। मौसम विभाग के द्वारा किये गये पूर्वानुमान कई बार गलत प्रमाणित हुए हैं। पूर्वानुमान के गलत होने का महत्वपूर्ण कारण यह है कि पूर्वानुमान हमेशा निश्चित परिस्थितियों के सन्दर्भ में किये जाते हैं और किसी कारणवश उन परिस्थितियों में कोई मौलिक अन्तर आ जाये तो पूर्वानुमान गलत प्रमाणित हो सकते हैं। ऐसी स्थितियाँ प्राकृतिक एवं सामाजिक दोंनों प्रकार के विज्ञानों में आ सकती हैं। वास्तविकता यह है कि पूर्वानुमानों की क्षमता विषय की विषय–वस्तु पर नहीं, बल्कि अध्ययन पद्धति की विकसित अवस्था पर निर्भर करती है।

1.12 अपनी प्रगति जांचिए :

(क) विज्ञान क्या है?

(ख) विज्ञान की विशेषताओं का वर्णन करो।

(ग) वैज्ञानिक पद्धति क्या है?

(घ) विज्ञान वैज्ञानिक पद्धति से किस प्रकार संबंधित है?

(ड़) आगमन तार्किक प्रक्रिया को परिभाषित कीजिए।

(च) निगमन तार्किक प्रक्रिया को परिभाषित कीजिए।

(छ) वैज्ञानिक पद्धति के चरणों का नाम बताओ।

(ज) सामाजिक शोध किसे कहते हैं?

(झ) सामाजिक अनुसंधान में कौन–कौन से विषय शामिल हैं?

(ञ) सामाजिक शोध की वैज्ञानिक पद्धति में प्रयोग होने वाली विधियाँ बताओ।

(ट) राजनीति विज्ञान अनुसंधान से क्या तात्पर्य है?

(ठ) राजनीति विज्ञान अनुसंधान में वैज्ञानिक पद्धति की किन्हीं दो सीमाओं को बताओ।

1.13 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर :

(क) तथ्यों व आँकड़ों के क्रमबद्ध व सुव्यवस्थित ज्ञान को ही विज्ञान कहते हैं।

(ख) विज्ञान की विशेषताएँ

– तार्किक ज्ञान – प्रमाणिकता पर आधारित

– अवलोकन पर आधारित – आनुभाविक ज्ञान

– व्यवस्थित स्वरूप

(ग) वैज्ञानिक पद्धति एक सामूहिक शब्द है जो उन अनेक प्रक्रियाओं को स्पष्ट करता है जिनकी सहायता से विज्ञान का निर्माण होता है। व्यापक अर्थों में जिसके द्वारा विज्ञान व व्यवस्थित ज्ञान को प्राप्त किया जाता है।

(घ) किसी भी अनुसंधान विधि द्वारा विज्ञान का निर्माण व विस्तार होता है, उसे वैज्ञानिक पद्धति कहते हैं। जिससे ज्ञान को व्यवस्थित रूप से संचालित किया जाता है।

(ड़) आगमन पद्धति : विशेष वैज्ञानिक तथ्यों से निष्कर्ष निकालना या सामान्य दृष्टांतों से विशेष सिद्धांत निकालना व सामान्यीकरण स्थापित करना।

(च) निगमन पद्धति : सामान्य सिद्धान्तों से विशेष दृष्टांत पर तर्क करने की प्रक्रिया व सामान्यीकरण का परीक्षण करना।

(छ) वैज्ञानिक पद्धति के चरण

- समस्या का चुनाव
- उद्देश्यों का निर्धारण
- परिकल्पना का निर्माण
- आँकड़ों का संकलन

(ज) मानव समाज से संबंधित विषयों (अर्थशास्त्र, भूगोल, राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र, इतिहास, विधि आदि) के अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग ही सामान्य शोध है।

(झ) सामाजिक अनुसंधान में समाज से संबंधित सभी पहलुओं से संबंधित विषयों जैसे – संचार, इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन, समाजशास्त्र, विधि आदि विषय शामिल हैं।

(ञ) सामाजिक शोध की वैज्ञानिक पद्धति में निम्न विधियाँ प्रयोग में आती हैं : सर्वेक्षण, साक्षात्कार, अंतर्वस्तु विश्लेषण, प्रतिदर्शन और निरीक्षण आदि।

(ट) राजनीति विज्ञान अनुसंधान के अंतर्गत वैज्ञानिक विधियों के माध्यम से राजनीतिक पहलुओं की खोजबीन व संबंधित सिद्धांतों का निरूपण व सामान्यीकरण शामिल है।

(ठ) राजनीति विज्ञान अनुसंधान में वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग की सीमाएँ –

– राजनीति विज्ञान की प्रकृति परिवर्तनशील है।

– पूर्वानुमान की कम संभावना क्योंकि विषयवस्तु मानवीय मूल्य हैं।

1.14 सारांश :

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि शोध को एक विशेष व क्रमबद्ध स्वरूप प्रदान करना ही वैज्ञानिक पद्धति का प्रमुख कार्य है। समाजशास्त्र के जन्मदाता ऑगस्ट कॉम्टे का दृढ़ विश्वास था कि समस्त ब्रह्माण्ड स्थिर प्राकृतिक नियमों द्वारा व्यवस्थित व निर्देशित होता है। यदि हम इन नियमों को जानना चाहते हैं तो किसी धार्मिक या आध्यात्मिक आधार पर नहीं, बल्कि वैज्ञानिक पद्धति द्वारा ही जाना जा सकता है। वैज्ञानिक पद्धति में अनेक प्रक्रियाओं की सहायता से यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है। घटनाओं को विश्लेषित करने के कई आधार होते हैं। प्रमुख आधार उस घटना के संबंध में पूर्व सिद्धांत, जिनके आधार पर हम यथार्थ को उसके स्वाभाविक रूप में समझ सकें। यह सुनिश्चित करने के लिए विशुद्ध व सर्वमान्य ज्ञान प्राप्त करने की विधि वैज्ञानिक सामाजिक विज्ञान में भी विषय वस्तु के व्यवस्थित व क्रमबद्ध ज्ञान प्राप्ति में सहायक है।

यद्यपि सामाजिक विज्ञान की प्रकृति गुणात्मक होती है। इसके अंतर्गत निहित विषयवस्तु परिवर्तनशील होती है। कार्य–कारण संबंध जटिल होते हैं जिनके माध्यम से सामान्यीकरण व सैद्धांतिकरण सरल नहीं होता है। लुण्डबर्ग ने कहा भी है कि वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग सामाजिक अनुसंधान में नहीं हो सकता है उनके तर्क में सामाजिक घटनाओं की जटिलता, व्यक्तिनिष्ठता, अमूर्तता, गुणात्मक प्रकृति, गतिशीलता, पूर्वानुमान न कर पाने की क्षमता आदि वे कारण हैं जो वैज्ञानिक पद्धति के सामाजिक अनुसंधान में प्रयोग के मार्ग में बाधक माने जाते हैं। फिर भी सामाजिक विज्ञान के विषयों के शोध में वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग से सामाजिक विज्ञान की समस्याओं के निरूपण, सामान्यीकरण व सिद्धांत निरूपण में सहायता प्राप्त होती है।

1.15 मुख्य शब्दावली :

- **वैज्ञानिक पद्धति :** वैज्ञानिक पद्धति–विज्ञान व पद्धति का सम्मिलित रूप है। जिसका शाब्दिक अर्थ है तथ्यों का व्यवस्थित अवलोकन, वर्गीकरण व सारणीयन।

- **आगमन** : विशिष्ट से सामान्य की प्रक्रिया जिसमें दृष्टांतों के आधार पर सामान्यीकरण किया जाता है।
- **निगमन** : समान्य से विशिष्ट की प्रक्रिया जिसमें आधार वाक्यों से निष्कर्ष निकाले जाते हैं।
- **कार्य–कारण संबंध** : प्रत्येक घटना के घटित होने के पीछे कोई न कोई कारण निहित होता है।
- **सामाजिक अनुसंधान** : सामाजिक घटनाओं का वैज्ञानिक विधि से गहन अध्ययन।
- **अमूर्तता** : वह विषयवस्तु जिसे गुणात्मक रूप से महसूस किया जा सकता है उसे ठोस रूप प्रदान नहीं कर सकते हैं।
- **व्यक्तिनिष्ठता** : किसी विषयवस्तु के अध्ययन में शोधकर्त्ता के स्वयं के विचारों का समावेश।
- **राजनीति विज्ञान अनुसंधान** : राजनीति से संबंधित पहलुओं का वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर खोजबीन व सिद्धांत निरूपण।
- **सैद्धान्तिकरण** : वैज्ञानिक पद्धति के माध्यम से कार्य–कारण संबंधों के अध्ययन के उपरान्त सिद्धांत निर्माण की प्रक्रिया

1.16 अभ्यास हेतु प्रश्न :

(क) इन प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर दीजिए :

(1) शोध की वैज्ञानिक पद्धति का वर्णन करो।

(2) वैज्ञानिक पद्धति के आगमनात्मक व निगमनात्मक तर्क को परिभाषित कीजिए।

(3) कार्य–कारण सिद्धांत से क्या अभिप्राय है?

(4) सैद्धांतीकरण क्या है?

(5) आनुभाविक ज्ञान को परिभाषित करो।

(6) वस्तुनिष्ठता को परिभाषित करो।

(7) व्यक्तिनिष्ठता व वस्तुनिष्ठता में अंतर बताओ।

(8) क्या सामाजिक अनुसंधान में पूर्णतः वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग संभव है?

(9) राजनीति विज्ञान अनुसंधान से क्या अभिप्राय है?

(10) वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग राजनीति विज्ञान अनुसंधान में क्यों आवश्यक है?

(ख) प्रस्तुत प्रश्नों के विस्तृत उत्तर दीजिए :

(1) विज्ञान को परिभाषित करते हुए इसकी विशेषताएँ बताओ।

(2) वैज्ञानिक पद्धति का अर्थ व विशेषताएँ बताओ।

(3) वैज्ञानिक पद्धति की मूलभूत अवधारणाओं का वर्णन करो।

(4) वैज्ञानिक पद्धति क्या विज्ञान पर ही आधारित है, इस पहलू को परिभाषित करते हुए वैज्ञानिक पद्धति के चरणों का विस्तारपूर्वक वर्णन करो।

(5) सामाजिक शोध को परिभाषित करें व इसके वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग के आधारों का वर्णन करें।

(6) सामाजिक अनुसंधान में वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग की समस्याओं का वर्णन करो।

(7) राजनीति विज्ञान अनुसंधान को परिभाषित करते हुए इसमें वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग की सीमाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन करें।

1.17 आप ये भी पढ़ सकते हैं :

- अर्ल बैबी, ''द प्रक्टिस ऑफ सोशल रिसर्च'', (थ्रटियथ एडिशन), वैड्सवर्थ पब्लिशिंग कम्पनी, न्यूयार्क, 2012
- डी.के. भट्टाचार्य, ''रिसर्च मैथ्डोलॉजी'', एक्सल बुक्स, न्यू दिल्ली, 2005
- सी.आर. कोठारी, ''रिसर्च मैथ्डोलॉजी : मैथड्स एण्ड टैक्निक्स'', (सैकिण्ड रिवाइज्ड एडिसन), न्यू एज इंटरनेशनल पब्लिशर्स (पी. लिमिटेड), न्यू दिल्ली, 2004
- राबर्ट बी.बर्नस, ''इंट्रोडूक्सन टू रिसर्च मैथड्स'', (फोर्थ एडिसन), सेज पब्लिकेशन्स, लंदन, 2000
- एस. सरनताकोस, ''सोशल रिसर्च'', (सैकिण्ड एडिसन), मैकमिलन प्रेस, लंदन, 1998
- एच.एल. मैनहिम, ''सोशलोजिकल रिसर्च'', दा डोरसे प्रेस, इलिनोइस, 1977
- रसेल एल. एकॉफ, ''डिजाइन ऑफ सोशल रिसर्च'', यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो, 1960
- राम आहूजा, ''सामाजिक अनुसंधान'', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2010

***

इकाई–2 सामाजिक विज्ञान अनुसंधान

इकाई की रूपरेखा :

2.0 परिचय

2.1 अधिगमन उद्देश्य

2.2 संरचना

2.3 अनुसंधान का अर्थ एवं परिभाषा

2.4 सामाजिक अनुसंधान का अर्थ एवं परिभाषा

2.5. सामाजिक अनुसंधान की प्रकृति

2.6 सामाजिक अनुसंधान के उद्देश्य

2.7 सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की आधारभूत मान्यताएँ

2.8 सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की समस्याएँ

2.9 सामाजिक विज्ञान शोध की सीमाएँ

2.10 सामाजिक शोध के प्रकार

2.11 अपनी प्रगति जांचिए

2.12 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

2.13 सारांश

2.14 मुख्य शब्दावली

2.15 अभ्यास हेतु प्रश्न

2.16 आप ये भी पढ़ सकते हैं

2.0 परिचय :

संसार के विभिन्न प्राणियों में से केवल मानव ही ऐसा प्राणी है जो प्रारम्भ से ही अपने पर्यावरण के प्रति जागरूक एवं जिज्ञासु रहा है इसकी यह प्रवृत्ति प्राचीनकाल से चली आ रही है तथा चलती रहेगी। आदिकाल से अध्ययनरत होते हुए ही वह वर्तमान वैज्ञानिक युग में विचरण करने लगा है। यह सब मानव के बुद्धि, विवेक एवं कार्यक्षमता की ही देन है कि उसने आज चाँद पर तक अपनी पकड़ प्राप्त कर ली है। मनुष्य के पास ज्ञान का अपार भण्डार है। इस अपार भण्डार के माध्यम से ही वह ज्ञान की ज्योति प्रज्जवलित कर अज्ञानता को समाज से दूर भगा रहा है। मानव का यह प्रयत्न कभी भी शान्त नहीं हो सकता बल्कि निरन्तर आगे बढ़ता जाएगा। सत्य तक पहुँचने के लिए अध्ययनकर्त्ता को कठिन से कठिन परिश्रम करना पड़ता है। समाज से सम्बन्धित विषयों में अध्ययनकर्त्ता को समानता तभी प्राप्त हो सकती है जब वह निष्पक्ष होकर अध्ययन करे। मानव आज ऐसे अन्वेषण व परीक्षण करने लगा है कि जिसकी कभी कल्पना तक नहीं कि जा सकती थी, कोई भी कार्य चाहे वह प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र में हो या समाज विज्ञान के क्षेत्र में अगर उसको व्यवस्थित ढंग तथा वस्तु विशेष की महता को समझ कर अध्ययन किया जाए तो उसके परिणाम सदैव ठीक निकलते हैं। यदि अध्ययनकर्त्ता अपने कार्य के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित है तो उसके द्वारा सम्पादित कार्यों में कोई गलती की सम्भावना नहीं रह जाती है। इसके अभाव में वास्तविकता सामने नहीं आ सकती है। यही कारण है कि सामाजिक अनुसंधानकर्त्ता सामाजिक अनुसधान की मदद से ही समाज में व्याप्त हर स्थिति/परिस्थिति का अध्ययन कर वास्तविकता को समाज के सम्मुख प्रकट करने में सक्षम होता है। इसलिए सामाजिक घटनाओं के सम्बन्ध में सत्य की खोज ही सामाजिक शोध है। इस इकाई में, अनुसंधान व सामाजिक विज्ञान अनुसंधान का अर्थ स्पष्ट करने के साथ–साथ इसकी प्रकृति, उद्देश्य, आधारभूत मान्यताओं, समस्याओं, सीमाओं व सामाजिक विज्ञान शोध के विभिन्न प्रकारों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

2.1. अधिगमन उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप निम्न उद्देश्यों को भली भांति समझ सकेंगे :

- सामाजिक विज्ञान अनुसंधान का अर्थ

- सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की प्रकृति व उद्देश्य
- सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की आधारभूत मान्यताएँ
- सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की समस्याएँ व सीमाएँ
- सामाजिक विज्ञान अनुसंधान के विभिन्न प्रकारों के बारे में जान पाएंगे।

2.2. संरचना :

संरचना किसी शोध के विभिन्न स्रोतों से प्राप्त आँकड़ों का व्यवस्थित स्वरूप है जिसमें विभिन्न चरणों के आधार पर आँकड़ों को क्रमबद्ध किया जाता है। सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की समग्र सामग्री को निम्न चरणों में क्रमबद्ध किया गया है :

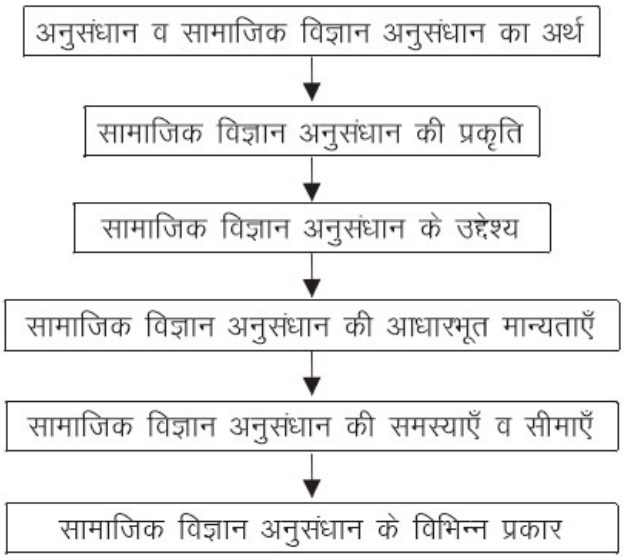

2.3. अनुसंधान का अर्थ एवं परिभाषा

(Meaning and Definitions of Research)

सामाजिक अनुसंधान का अर्थ जानने से पहले हमारे लिए जरूरी है कि अनुसंधान शब्द का अर्थ क्या होता है। विज्ञान की अवधारणा के विस्तृत विवेचन से अनुसंधान की वैज्ञानिकता का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। अवैज्ञानिक अनुसंधानकर्त्ता समय व धन का अपव्यय करता है। जे. डब्ल्यू. बेस्ट (J.W. Best) के अनुसार, "विश्लेषण की वैज्ञानिक विधि को अधिक आकारिक, व्यवस्थित एवं गहन रूप में प्रयोग करने को अनुसंधान कहा जाता है।"

The New Century Dictionary के अनुसार, ''अनुसंधान का अर्थ किसी वस्तु अथवा व्यक्ति के विषय में सावधानी से खोज करना, तथ्यों अथवा सिद्धान्तों का अन्वेषण करने के लिए विषय सामग्री की निरन्तर सावधानीपूर्वक पूछताछ अथवा पड़ताल करना है।''

Encyclopaedia of Social Sciences में लिखा है कि "अनुसंधान वस्तुओं, प्रत्ययों तथा संकेतों आदि को कुशलतापूर्वक व्यवस्थित करता है, जिसका उद्देश्य सामान्यीकरण द्वारा विज्ञान का विकास, परिमार्जन अथवा सत्यापन होता है, चाहे वह ज्ञान व्यवहार में सहायक हो अथवा कला में।"

डिक्शनरी ऑफ सोशियोलोजी में जी. एम. फिशर (G.M. Fisher) लिखते हैं, ''किसी को हल करने या किसी उपकल्पना की जाँच करने अथवा नवीन घटनाक्रम तथा उसमें पाए जाने वाले नए सम्बन्धों की खोज करने हेतु उपयुक्त पद्धतियों का किसी सामाजिक स्थिति में जो प्रयोग किया जाता है उसे सामाजिक अनुसंधान कहा जाता है।"

रेडमैन और मौरी (L. V. Redman and A. V. H. Mory) के अनुसार, "नवीन ज्ञान की प्राप्ति हेतु व्यवस्थित प्रयत्न को हम अनुसंधान कहते हैं।"

ए. डब्लू. स्माल (A. W. Small) के अनुसार, "इसके निम्नतम स्तर पर सरल अंग्रेजी में अनुसंधान केवल वस्तुओं को खोज निकालने का एक प्रयास है।"

लुण्डबर्ग (Lundberg) के अनुसार, "अनुसंधान की परिभाषा में अवलोकित सामग्री का सम्भावित वर्गीकरण, साधारणीकरण एवं सत्यापन करते हुए पर्याप्त कर्म विषयक और व्यवस्थित पद्धति है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि शोधकर्त्ता के निरन्तर प्रयोग तथा प्रयत्न से जो ज्ञान की वृद्धि करे, अनुसन्धान कहलाता है। शोध नूतन ज्ञान की प्राप्ति तथा उपलब्ध ज्ञान की व्याख्या करता है। वैज्ञानिक का प्रयत्न सफल हो या असफल, उससे लाभ हो अथवा हानि अनुसन्धान का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। इतना की काफी है कि एक प्रयास किया जा रहा है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें तथ्यों का अवलोकन, वर्गीकरण, साधारणीकरण तथा सत्यापन के चरण क्रम से होते हैं। अनुसन्धान एक ऐसा प्रयत्न है जिसमें नवीन ज्ञान की खोज तथा उपलब्ध ज्ञान में परिवर्तन को भी मालूम करना होता है।

2.4 सामाजिक अनुसन्धान का अर्थ एवं परिभाषा

(Meaning and Definitions of Social Research)

मानव ने आज तक का सम्पूर्ण ज्ञान वैज्ञानिक शोध के द्वारा ही प्राप्त किया है, इसी के द्वारा मनुष्य ने अपने सम्पूर्ण सामाजिक संगठन, अपने पर्यावरण, अनेक प्रचलित नियमों के बारे में जानकारी प्राप्त की है। प्रत्येक शोध को वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता है केवल वही शोध वैज्ञानिक होगा जिसमें इसके दो आवश्यक तत्त्व 1. निरीक्षण 2. कारण दर्शाना सम्मिलित हों।

यह कहा जा सकता है कि सामाजिक शोध वह क्रमबद्ध तथा वैज्ञानिक अध्ययन विधि है जिसके आधार पर सामाजिक घटनाओं के सम्बन्ध में हम नवीन ज्ञान की प्राप्ति करते हैं या पहले से प्रतिपादित नियमों की पुनः परीक्षा करते हैं तथा साथ ही तथ्यों के कार्य कारण को स्पष्ट करते हैं सामान्यतः यह माना जाता है कि सामाजिक शोध, सामाजिक अनुसंधान का ही एक रूप है क्योंकि इसमे सम्पूर्ण ज्ञान वैज्ञानिक पद्धति (निरीक्षण, वर्गीकरण, प्रयोग, निष्कर्षीकरण) द्वारा प्राप्त किया जाता है और इसी पद्धति के द्वारा पूर्व स्थापित सिद्धान्तों की पुनर्परीक्षा की जाती है व सत्यता की जाँच की जाती है। वैज्ञानिकों ने सामाजिक अनुसंधान की निम्नलिखित परिभाषाएँ दी हैं :

पी॰ वी॰ यंग (P. V. Young) के अनुसार, "सामाजिक शोध एक वैज्ञानिक योजना है जिसका उद्देश्य तार्किक तथा क्रमबद्ध पद्धतियों के द्वारा नवीन तथ्यों का अन्वेषण अथवा पुराने तथ्यों को पुनः परीक्षा एवम् उनमें पाए जाने वाले अनुक्रमों (Sequences), अन्तः सम्बन्धों कारण सहित व्याख्याओं तथा उनको संचालित करने वाले स्वाभाविक नियमों का विश्लेषण करना है।"

मोसर (Moser) ने लिखा है कि, ''सामाजिक घटनाओं व समस्याओं के सम्बन्ध में नवीन ज्ञान की प्राप्ति के लिए किए गए व्यवस्थित अनुसन्धान को हम सामाजिक शोध कहते हैं।''

बोगाईस (Bogradus) के अनुसार, "एक साथ रहने वाले लोगों के जीवन में क्रियाशील अन्तर्निहित प्रक्रियाओं का अनुसन्धान ही समाजिक शोध है।"

ह्विटने (Whitney) का कथन है, "समाजशास्त्रीय शोध में मानव–समूह के सम्बन्धों का अध्ययन होता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि सामाजिक शोध वास्तव में सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों के विषय में अध्ययन करने की एक वैज्ञानिक योजना है। चूँकि यह वैज्ञानिक है अतः इसके अन्तर्गत समस्त अनुसन्धान–कार्य वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार ही होता है, इसमें असम्बद्ध तरीकों का कोई भी स्थान नहीं हैं। यह तार्किक तथा क्रमबद्ध पद्धतियों पर निर्भर है और इन्हीं पद्धतियों के द्वारा यह सामाजिक जीवन व घटनाओं के विषय में अन्वेषण करता है, पुराने सिद्धान्तों की पुनः परीक्षा करता है तथा विभिन्न सामाजिक तथ्यों के बीच पाए जाने वाले अन्त–सम्बन्धों व अनुक्रमों को दर्शाता है।

2.5 सामाजिक अनुसन्धान की प्रकृति

(Nature of Social Research)

सामाजिक अनुसन्धान की उपर्युक्त परिभाषाओं में वैज्ञानिकों के द्वारा व्यक्त अनेक लक्षण और विशेषताएँ उभर कर सामने आती हैं, जो इसकी प्रकृति को भी स्पष्ट करती हैं। वे इस प्रकार है :

1. प्राक्कल्पना की जाँच (Testing of Hypothesis) : सामाजिक अनुसन्धान प्राक्कल्पना के निर्माण से प्रारम्भ होता है तथा इसका मुख्य उद्देश्य समाज से सम्बन्धित प्राक्कल्पनाओं की जाँच करना होता है।

2. व्यावहारिक एवं शुद्ध अनुसन्धान (Pure and Applied Research) : गुडे एवं हॉट ने लिखा है कि सामाजिक अनुसन्धान समाज से सम्बन्धित दो प्रकार के अनुसन्धान होते हैं (1) शुद्ध अनुसन्धान, तथा (2) व्यावहारिक अनुसन्धान। शुद्ध अनुसन्धान पुस्तकालय में उपलब्ध विषय से सम्बन्धित सामग्री का क्रमबद्ध संकलन, वर्गीकरण तथा विश्लेषण करके शुद्ध सिद्धान्त का निर्माण करता है। व्यावहारिक अनुसन्धान वास्तविक समस्या से सम्बन्धित क्षेत्र से तथ्य एकत्र करके प्राक्कल्पना का परीक्षण करता है।

3. कार्य–कारण सम्बन्ध का अध्ययन (Study of Cause-Effect Relation) : सामाजिक अनुसन्धान प्राक्कल्पना अथवा अध्ययन की समस्या से सम्बन्धित तथ्यों के परस्पर

कारण–प्रभाव सम्बन्ध का अध्ययन करता है। प्राक्कल्पना में वर्णित समीकरण की जाँच कारण–प्रभाव के सन्दर्भ में करता है।

4. वैज्ञानिक चरणों का पालन (Following Scientific Steps) : सामाजिक अनुसन्धान में अनुसन्धानकर्त्ताओं द्वारा वैज्ञानिक शोध के चरणों (प्राक्कल्पना का निर्माण, तथ्यों का संकलन, वर्गीकरण तथा निष्कर्ष) का कठोरता से पालन किया जाता है।

5. तथ्यों की खोज (Discovery of Facts) : सामाजिक अनुसन्धान में समाज, सामाजिक व्यवस्था, संगठन आदि से सम्बन्धित नवीन तथ्यों की खोज की जाती है तथा पुराने तथ्यों की जाँच की जाती है।

6. सिद्धान्तों का परीक्षण (Testing of Theory) : सिद्धान्त कई प्रकार के होते हैं, जैसे – विश्लेषणात्मक, आदर्शात्मक, तत्त्वमीमांसीय आदि। सामाजिक अनुसन्धान जब प्राक्कल्पना अथवा सिद्धान्त का परीक्षण करके निर्माण करता है तो वह वैज्ञानिक सिद्धान्त कहलाता है। वैज्ञानिक सिद्धान्तों की जाँच नवीन तथ्यों द्वारा समय–समय पर उनकी प्रमाणिकता, विश्वसनीयता तथा सत्यता के लिए होती रहनी चाहिए। यह कार्य सामाजिक अनुसन्धान करता है। वैज्ञानिक सिद्धान्तों का परीक्षण करके उन्हें पुनः स्थापित, खण्डित, संशोधित करता है अथवा त्याग देता है।

7. नवीन प्रविधियों की खोजें (Discovery of New Techniques) : सामाजिक अनुसन्धान में प्राक्कल्पना की जाँच, तथ्यों का संकलन, सिद्धान्तों की सत्यता आदि से सम्बन्धित अध्ययन करने के अतिरिक्त नवीन प्रविधियों की खोज भी की जाती है। अनेक ऐसी प्राक्कल्पनाएँ हैं जिनकी जाँच करने तथा उनके सम्बन्धित तथ्य–संकलन की प्रविधियाँ विज्ञान में नहीं होती हैं। ऐसी प्राक्कल्पनाओं का परीक्षण करने के लिए सामाजिक अनुसन्धान सर्वप्रथम नवीन प्रविधि की खोज करता है।

सामाजिक शोध की प्रकृति के सम्बन्ध में अन्तिम बात यह है कि यह सामाजिक जीवन व घटनाओं पर अधिकाधिक नियन्त्रण पाने का प्रयत्न करता है। यहाँ नियन्त्रण का अर्थ यह नहीं है कि समाज के सदस्यों को डरा–धमकाकर अपने वश में कर लेता है। यहाँ नियन्त्रण से तात्पर्य यह है कि अपने अनुसंधान–कार्य में प्रयोगात्मक पद्धति का उपयोग करने के लिए कुछ सामाजिक घटनाओं को नियन्त्रित करके उसी प्रकार की अन्य

सामाजिक घटनाओं पर विभिन्न कारकों के प्रभावों को देखना है। इस प्रकार का नियन्त्रण विषय के सम्बन्ध में शोधकर्त्ता के उत्तरोत्तर ज्ञान पर निर्भर होता है। सामाजिक जीवन व घटनाओं के सम्बन्ध में अधिकाधिक ज्ञान द्वारा उन पर अधिक नियन्त्रण पाना सामाजिक शोध का प्राथमिक लक्ष्य है।

2.6 सामाजिक अनुसन्धान के उद्देश्य

(Objectives of Social Research)

सामाजिक शोध के उद्देश्यों को मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–प्रथम, सैद्धान्तिक अथवा ज्ञान सम्बन्धी उद्देश्य और द्वितीय, व्यावहारिक अथवा प्रयोगवादी उद्देश्य। उपर्युक्त परिभाषाओं में विशेषतया उद्देश्य पर बल दिया गया है; परन्तु यह भी उल्लेखनीय है कि इन विद्धानों द्वारा सामाजिक शोध के व्यावहारिक (Applied) पक्ष की भी अवहेलना नहीं की गई है जैसा कि निम्नलिखित विवेचना के स्पष्ट होगा :

1. सैद्धैान्तिक उद्देश्य

(Theoretical Objectives)

सैद्धान्तिक अनुसन्धान के उद्देश्य और भूमिकाएँ सामाजिक विज्ञानों में बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। समाजिक विज्ञानों में सिद्धान्त, ज्ञान तथ्य–संकलन, अनुसन्धान की दिशा (अभिविन्यास), तथ्यों की भविष्यवाणी, ज्ञान में कमी को बताना आदि अनेक उद्देश्य सैद्धान्तिक अनुसन्धान के हैं इतना ही नहीं समाजिक अनुसन्धान में अवधारणा के विकास की प्रक्रिया तथा वर्गीकरण का महत्त्वपूर्ण कार्य भी सैद्धान्तिक अनुसन्धान करता है इन उपर्युक्त कार्यों, उद्देश्यों तथा भूमिकाओं का उल्लेख गुडे एवं हॉट ने किया है।

(i) अनुसन्धान की दिशा निर्धारण (Determination of Research) : अनुसन्धान का प्रमुख सैद्धान्तिक उद्देश्य विभिन्न सामाजिक विज्ञानों में अध्ययन का क्षेत्र, विषय–सामग्री, अध्ययन का दृष्टिकोण आदि को निश्चित करना है। फुटबाल का कई परिप्रेक्ष्यों के अनुसार अध्ययन कर सकते हैं। सैद्धान्तिक अनुसन्धान तय करेगा कि किस सामाजिक विज्ञान में इसका अध्ययन किन प्रभावों को ध्यान में रखकर किया जाए। सैद्धान्तिक अनुसन्धान इस बात की परिभाषा करने में मदद करता है कि किस प्रकार के तथ्य सम्बन्धित कारक हैं और कौन से नहीं हैं।

(ii) संक्षिप्तीकरण (Summarization) : सैद्धान्तिक अनुसन्धान का दूसरा और महत्त्वपूर्ण उद्देश्य उन सबका संक्षिप्तीकरण करना है जो किसी अध्ययन की वस्तु के सम्बन्ध में उपलब्ध हैं। इस ज्ञान के संक्षिप्तीकरण को निम्नलिखित दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है– (1) आनुभविक सामान्यीकरण, और (2) विभिन्न प्रस्थापनाओं के सम्बन्धों की व्यवस्था। तथ्यों को विज्ञान में जिस दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए वह सैद्धान्तिक अनुसन्धान प्रदान करता है तथा ज्ञान का संक्षिप्तीकरण करता है।

(iii) ज्ञान की कमी बताना (Points Gap in the Knowledge) : गुडे एवं हॉट का कहना है कि जब सैद्धान्तिक अनुसन्धान उपलब्ध ज्ञान का संक्षिप्तीकरण करता है तथा यह भी निर्देश देता है कि किन तथ्यों को एकत्र करना है तथा कौन–कौनसे तथ्य एकत्र किए जा चुके हैं तो वह यह भी बताता है कि अभी और कौन–कौन से तथ्यों को एकत्र करना शेष है तथा कौन–कौन से अध्ययन करने शेष हैं। इसके द्वारा विशिष्ट सामाजिक विज्ञान में कौन–कौन से अध्ययन नहीं हुए हैं का भी पता चल जाता है। जहाँ उपलब्ध ज्ञान का संक्षिप्तीकरण हो चुका है तब उनसे यह भी पता चल जाता है कि कौन से तथ्य वर्गीकृत तथा संगठित नहीं किए गए हैं।

(iv) तथ्यों की भविष्यवाणी (Forecast of Facts) : सैद्धान्तिक अनुसन्धान का एक प्रमुख उद्देश्य विज्ञान में तथ्यों की भविष्यवाणी अथवा पूर्वानुमान प्रस्तुत करना है। सैद्धान्तिक अनुसन्धान का कर्त्तव्य है कि वह स्पष्ट करे कि कौन–कौन से तथ्यों के घटने की सम्भावना है। यह निर्देश देता है कि कौन से तथ्य एकत्र करने हैं और कौन से तथ्य नहीं।

(v) तथ्यों का वर्गीकरण (Classification of Fact) : सैद्धान्तिक अनुसन्धान विज्ञान में उपलब्ध ज्ञान, तथ्यों आदि का वर्गीकरण, सारणीयन आदि करता है। इसके द्वारा सामाजिक वैज्ञानिकों को विषय की पूर्ण जानकारी हो जाती है कि कौन–कौन से अध्ययन के क्षेत्र शेष हैं जिनका अध्ययन करना बाकी है। इस अनुसन्धान का यह उद्देश्य तथा कार्य विशेष महत्त्वपूर्ण है।

(vi) समस्याओं के कारणों की खोज (Discovery of Causes of Problems) : सैद्धान्तिक अनुसन्धान का व्यावहारिक समस्याओं के केन्द्रीय कारकों का पता लगाना प्रमुख उद्देश्य है। मान लीजिए कि विभिन्न प्रजाति के समुदाय खेल के मैदान में लड़ते हैं। इस समस्या का तत्काल समाधान ये कर दिया जाता है की अलग–अलग प्रजाति समूहों हो अलग–अलग

समय में खेल का मैदान खेलने को दिया जाता है। परन्तु सैद्धान्तिक अनुसन्धान इनका समाधान प्रस्तुत करेगा कि उन्हें समाजीकरण, सामाजिक अन्तः क्रिया, समूह के मानदण्ड आदि बचपन से सिखाए जाएँ तो बड़े होकर वे परस्पर मित्रता पूर्ण रहेंगे। सैद्धान्तिक अनुसन्धान सामान्य ज्ञान से कहीं अधिक दूर की जानकारी देता है।

(vii) समस्याओं का समाधान (Remedy for Problems) : सैद्धान्तिक अनुसन्धान अनेक विकल्पों तथा समाधानों का विकास करता है जिसके परिणामस्वरूप समस्याओं के अनेक समाधान उपलब्ध हो जाते हैं। समाधान से समस्याओं के निराकरण की लागत कम हो जाती है। गुडे एवं हॉट का कहना है कि सिद्धान्तों के विकास के द्वारा अनेक व्यावहारिक समस्याओं का समाधान प्रदान करना है।

(viii) प्रशासन को व्यवस्थित करना (Systematizing of Administration) : अनुसन्धान प्रशासन को व्यवस्थित रूप से चलाने में सहायता पहुँचाता है। सरकारी तथा व्यापारिक संगठनों ने अनुसन्धान केन्द्रों से सूचनाएँ एकत्र करके उनका उपयोग करना शुरू कर दिया है। सामाजिक सैद्धान्तिक अनुसंधान, उपकरणों तथा तकनीकों का मूल्यांकन करते हैं। जिनका पुरानी तथा नई समस्याओं के समाधान में उपयोग किया जाता है। गुडे एवं हॉट के अनुसार सैद्धान्तिक अनुसन्धान का एक प्रमुख उद्देश्य समस्याओं का समाधान प्रदान करना है जो प्रशासन को मानकात्मक पद्धति प्रदान करता है।

2. व्यावहारिक उद्देश्य

(Applied Objectives)

सामाजिक शोध के दूसरे उद्देश्य की प्रकृति व्यावहारिक है। इसका तात्पर्य यह है कि सामाजिक शोध सामाजिक जीवन तथा विभिन्न घटनाओं के सम्बन्ध में हमें जो जानकारी प्रदान करता है उसका उपयोग हम अपने व्यावहारिक जीवन में भी कर सकते हैं। और भी स्पष्ट रूप से सामाजिक शोध सामाजिक जीवन के सम्बन्ध में हमारे ज्ञान का एक महत्त्पूर्ण शोध है। वह ज्ञान हमें सामाजिक समस्याओं को हल करने व सामाजिक जीवन को अधिक प्रगतिशील बनाने के लिए आवश्यक योजना बनाने में मदद कर सकता है। इस दृष्टिकोण से सामाजिक शोध के व्यावहारिक उद्देश्य निम्नलिखित हो सकते है :

(i) ज्ञान का विकास (Development of Knowledge) : अनुसन्धान का प्रमुख उद्देश्य ज्ञान का विकास करना है। सामाजिक अनुसन्धान का उद्देश्य सामाजिक घटनाओं, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्थाओं, सामाजिक जीवन, सामाजिक परिर्वतन आदि के सम्बन्ध में ज्ञान का विकास करना है। यह अनुसन्धान समाज की संरचना और उसके कार्यों की व्याख्या तथा वर्णन करता है। यह हर क्षेत्र में ज्ञान की उत्तरोत्तर वृद्धि करता है। उपलब्ध ज्ञान को एकत्र करके क्रमबद्ध तथा व्यवस्थित करता है। संचयी ज्ञान के आधार पर आगे अनुसन्धान करता है। नवीन तथ्यों की खोज करता है।

(ii) प्रकार्यात्मक अध्ययन (Function at Study) : व्यावहारिक अनसुन्धान सामाजिक घटनाओं तथा अध्ययन की सामग्री से सम्बन्धित तथ्यों का प्रकार्यात्मक अध्ययन करता है। तथ्यों में परस्पर एक–दूसरे के बीच कारण–प्रभाव का क्या सम्बन्ध है, सामाजिक व्यवस्था को समझने के लिए, सम्बन्धित तथ्यों के गुण और प्रभाव का अध्ययन आवश्यक है। सामाजिक अनुसन्धान इस कार्य को क्रमबद्ध तथा व्यवस्थित रूप से करके हमारे सामने प्रस्तुत करता है कि तथ्यों के क्या–क्या गुण, दोष, प्रभाव आदि हैं। विभिन्न तथ्य दूसरे तथ्यों से कैसे प्रभावित होते हैं तथा किस प्रकार से उनको प्रभावित करते हैं। इसमें सामाजिक व्यवस्थाएँ तथा अन्य सामाजिक घटनाओं को समझने में सुगमता रहती है। समाज के सन्तुलन, गतिशीलता, निरन्तरता तथा व्यवस्था आदि के लिए इन सबका ज्ञान आवश्यक है जो सामाजिक अनुसन्धान समाजशास्त्रियों, सामाजिक वैज्ञानिकों, समाज सुधारकों, योजनाकारों आदि को उपलब्ध करवाते हैं। गुडे एवं हॉट ने भी लिखा है कि बाल–अपराध, निर्धनता, बेकारी आदि सामाजिक समस्याओं को समझने में यह ज्ञान उपयोगी रहता है।

(iii) सिद्धान्तों की खोज (Discovery of theories) : व्यावहारिक अनुसन्धान का एक प्रमुख उद्देश्य नए–नए सिद्धान्तों की खोज करना है। सिद्धान्त तथ्यों का परस्पर सम्बन्ध बताते हैं। सिद्धान्त तथ्यों का संक्षिप्तीकरण करते हैं। सिद्धान्तों की खोज करना तथा निर्माण करना व्यावहारिक अनुसन्धान के विभिन्न चरणों में से अन्तिम चरण नियमों अथवा सिद्धान्तों का निर्माण, जाँच, संशोधन आदि है। सामाजिक घटना से सम्बन्धित तथ्यों का संकलन करने के बाद व्यावहारिक अनुसन्धान तथ्यों के आधार पर उनके परस्पर सम्बन्धों को कथन के रूप में प्रस्तुत करता है। ये कथन प्रयोग–सिद्ध तथ्यों पर आधारित होते हैं। व्यावहारिक

अनुसन्धान सिद्धान्तों के द्वारा सामाजिक संगठन की व्याख्या तथा भविष्यवाणी करता है। इसके द्वारा घटनाओं का अनुमान लगाना सरल हो जाता है।

(iv) अवधारणाओं का विकास (Development of Concepts) : व्यावहारिक अनुसन्धान के अनेक चरण हैं। यह कहना तो बहुत कठिन है कि कौन–सा चरण अधिक महत्त्वपूर्ण है और कौन–सा कम परन्तु प्रत्येक चरण के अन्तर्गत कोई–न–कोई उद्देश्य अवश्य निहित होता है। इसमें एक चरण अवधारणाओं की व्याख्या, स्पष्टीकरण तथा संक्षिप्तीकरण का होता है। अवधारणाएँ तथ्यों की व्याख्या करती हैं। जब नए–नए तथ्य अनुसन्धान द्वारा खोजे जाते हैं तो उनकी व्याख्या करने वाली अवधारणाओं की भी पुनः परीक्षा करनी होती है। नए तथ्यों के सन्दर्भ में पुरानी अवधारणाओं की पुनः व्याख्या करना, स्पष्टीकरण करना, सुनिश्चित करना आदि कार्य सामाजिक अनुसन्धान को करना आवश्यक हो जाता है। बदली हुई परिस्थितियों में अनुसन्धान नए–नए तथ्यों, अवधारणाओं और सिद्धान्तों की खोज करता है, निर्माण करता है, इनकी स्थापना करता है। तथा इनमें आवश्यक होता है तो संशोधन भी करता है।

उपरोक्त विवेचन से यह कदापि नहीं समझ लेना चाहिए कि सामाजिक शोधकर्त्ता ही ज्ञान को व्यावहारिक अथवा सैद्धान्तिक रूप प्रदान करता है। वह केवल ज्ञान प्राप्त करता है तथा तथ्यों के आधार पर सिद्धान्तों को स्थापित करता है। श्रीमती यंग लिखती हैं कि सामाजिक शोध का उद्देश्य केवल सामाजिक जीवन को समझकर उस पर अधिक नियन्त्रण स्थापित करना होता है।

2.7 सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की आधारभूत मान्यताएं : सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की आधारभूत मान्यताएं निम्नलिखित हैं :

1. सामाजिक घटनाओं में कार्य–कारण संबंधों को समझने की इच्छा : समाज में घटित होने वाली विभिन्न घटनाओं के घटित होने के पीछे कुछ कारक होते हैं। इन्हीं विभिन्न घटनाओं एवं प्रक्रियाओं में कार्य–कारण संबंधों की खोज सामाजिक विज्ञान अनुसंधान के अंतर्गत की जाती है, यदि सामाजिक घटनाओं के घटित होने के कारक का पता लगा लिया जाए तो समाज को अपराध और बुराइयों से सुरक्षित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि यह पता लगा लिया जाए कि बढ़ती हुई जनसंख्या, बेरोजगारी और खाद्य

आपूर्ति को जन्म देती है तो परिवार नियोजन द्वारा जनसंख्या में कमी करके बेरोजगारी और खाद्यान्न समस्या में कमी लाई जा सकती है।

2. सामाजिक घटनाओं में निश्चित नियम या क्रम का होना : समाज में घटित होने वाली विभिन्न घटनाएं कुछ निश्चित नियमों के द्वारा संचालित होती हैं अर्थात् हर घटना का कोई न कोई आधार अवश्य होता है। घटनाएं अनायास और बिना आधार के घटित नहीं होती हैं, पारिवारिक विघटन वाला अपराध, बाल मजदूरी आदि सामाजिक समस्याओं को बढ़ाती हैं। इससे भविष्य में अपराधों की अधिकता और कमी का अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है। इस प्रकार सामाजिक विज्ञान अनुसंधान के माध्यम से किसी भी घटना के बारे में भविष्यवाणी की जा सकती है।

3. अज्ञात के प्रति जिज्ञासा : मानव स्वभाव से ही जिज्ञासु प्रवृत्ति का प्राणी रहा है। इस कारण मनुष्य आदिकाल से ही उत्सुकता के साथ वस्तुओं एवं घटनाओं के बारे में ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करता रहा है। यही जिज्ञासा मानव समाज की प्रगति का भी आधार है तथा उसे सामाजिक घटनाओं, समस्याओं, संस्कृति, व्यवहार, आपसी विवादों तथा सामाजिक वास्तविकता को जगाने की ओर प्रेरित करती है।

4. सामाजिक घटनाओं से अलगाव रखकर अध्ययन करना : सामाजिक विज्ञान अनुसंधान में किसी भी सामाजिक समस्या का अध्ययन करते समय उस समस्या से स्वयं को अलग रखा जाए तभी अनुसंधान निष्पक्ष हो सकता है। मनुष्य भावना प्रधान प्राणी है, उसमें घटनाओं के प्रति अनेक प्रकार की भावनाओं, जैसे–प्रेम, स्नेह, राग, द्वेष, ईर्ष्या, सहयोग, असहयोग इत्यादि का समन्वय रहता है। सामाजिक विज्ञान के अनुसंधान निष्पक्ष तथा जन कल्याणकारी हों इसके लिए आवश्यक है कि शोधकर्त्ता अपने को इन सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में मूल्य निरपेक्ष रखे ताकि अध्ययन वस्तुनिष्ठ, स्पष्ट और वास्तविक हो सके।

5. प्रतिनिधि निदर्शन की संभावना : सामाजिक विज्ञान की विषय–वस्तु एवं विषय क्षेत्र अति व्यापक है। किसी समस्या को लेकर संपूर्ण विषय क्षेत्र का अध्ययन एक साथ नहीं किया जा सकता इसलिए संपूर्ण विषय क्षेत्र को अनेक इकाइयों में बांटा जाता है और उसमें से उस इकाई का चुनाव किया जाता है जो अध्ययन क्षेत्र की उन सभी इकाइयों का प्रतिनिधित्व कर सके। इस प्रकार प्रतिनिधि निदर्शन के माध्यम से संपूर्ण या एक वर्ग का अध्ययन किया जाता है।

6. नवीन एवं आशातीत घटनाओं का घटित होना : समाज में समय–समय पर नवीन एवं अप्रत्याशित घटनाएं घटित होती रहती हैं। सामाजिक विज्ञान के शोधकर्त्ता की जिज्ञासा इन घटनाओं के विभिन्न कारणों को जानने, समझने में तथा इन पर नियंत्रण करने की होती है। अतः व्यक्ति इन घटनाओं एवं समस्याओं के कारण जानकर हमेशा यह चाहता है कि भविष्य में उन पर नियंत्रण प्राप्त कर ले, इसके अलावा अनेक सामाजिक विज्ञान अनुसंधान सामाजिक घटनाओं को समझने के प्रयास हेतु भी किए जाते हैं।

7. लाभकारी एवं मौलिक ज्ञान प्राप्त करने हेतु नवीन वैज्ञानिक प्रवृत्तियों की खोज करना : सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की एक अन्य मान्यता लाभकारी एवं मौलिक ज्ञान प्राप्त करने हेतु नवीन वैज्ञानिक प्रवृत्तियों की खोज करना तथा पुरानी प्रणाली अथवा प्रविधियों की परीक्षा करने की इच्छा करना है। अतः शोधकर्त्ता शोध के लिए नवीन विधियों एवं प्रविधियों को विकसित करने की कोशिश करता रहता है जिससे सामाजिक विज्ञान की समस्याओं, घटनाओं एवं क्रियाओं को अधिक से अधिक अच्छी तरह से समझा जा सके तथा बदलते हुए सामाजिक परिवेश के साथ सामंजस्य स्थापित किया जा सके।

8. आदर्श प्रारूपों की संभावना : सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की अंतिम मान्यता आदर्श प्रारूप की संभावना है। आदर्श प्रारूप की धारणा का प्रतिपादन मैक्स वेबर ने किया था इसके अंतर्गत सामाजिक विज्ञान अनुसंधान में एक वर्ग विशेष का समग्र अध्ययन संभव नहीं .होता है। अतः उसके कुछ विशेष भाग का अध्ययन किया जाता है एवं जो निष्कर्ष प्राप्त होते हैं उन्हें समस्त वर्ग विशेष पर लागू कर दिया जाता है। अतः इन वर्गों के कुछ भाग का अध्ययन करके जो निष्कर्ष प्राप्त होते हैं उन्हें सभी वर्गों पर लागू कर दिया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अनुसंधान चाहे सामाजिक हो चाहे प्राकृतिक, सभी में कुछ न कुछ मान्यताएं अवश्य होती हैं। मान्यता किसी भी अनुसंधान की आधारशिला होती है। जिसके सहारे शोध आगे बढ़ता है। सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की उक्त मान्यता है कि यदि शोधकर्त्ता अपने अध्ययन वैज्ञानिक पद्धति से करता है तो शोध के परिणाम अधिक व्यावहारिक व कल्याणकारी होते हैं।

2.8 सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की समस्याएं :

सामाजिक विज्ञान में अनुसंधान करना एक जटिल कार्य है। इसके शोध को प्रारंभ करते समय तथा शोध के दौरान शोधकर्त्ता को अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की प्रमुख समस्याएं निम्न हैं–

1. समस्या का स्पष्ट न होना : सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की प्रमुख समस्या, समस्या का ठीक प्रकार से स्पष्ट न होना है। अतः समस्या का सावधानीपूर्वक निर्माण हमें अनुसंधान के अगले चरणों में आने वाली बाधाओं से बचा जा सकता है। इस प्रकार समस्या स्पष्ट और परिभाषित होनी चाहिए।

2. निदर्शन का चयन ठीक प्रकार न होना : सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की समस्या अनुंसधान के लिए विषय क्षेत्र का निदर्शन के आधार पर चुनाव न कर पाना है। अध्ययन के लिए जिन व्यक्तियों का चुनाव किया गया है अथवा जिन क्षेत्रों का सर्वेक्षण किया जाना है वे पहुंच के बाहर होते हैं या जिन तक पहुंचना बहुत मुश्किल होता है। सूचनादाताओं से समय पर न मिलना या मिलने पर संतोष जनक उत्तर न मिलना अथवा उनका सूचना देने से इंकार करना आदि। इसी प्रकार अध्ययन क्षेत्र का बहुत दूर होना, वहां के लिए साधनों का न होना आदि समस्याएं हैं, जिनका शोधकर्त्ता को अपने शोध के दौरान सामना करना पड़ता है।

3. विश्वसनीय सामग्री का संकलन : सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की एक बड़ी समस्या अनुसंधान के लिए विश्वसनीय तथा प्रमाणिक सूचनाओं का संकलन न हो पाना है चूंकि सामाजिक विज्ञान में सामान्यतः सूचना के संकलन का मुख्य स्रोत मनुष्य है। अतः सूचनादाता कभी अज्ञान या पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर सही सूचना अथवा जानकारी नहीं देते हैं। ऐसे में एक से अधिक विधियों का प्रयोग कर आँकड़े एकत्रित किए जाते हैं। तत्पश्चात उनकी विश्वसनीयता एवं प्रमाणिकता की जांच की जाती है। इस प्रक्रिया में समय धन और श्रम अधिक लगता है। कभी–कभी सावधानीपूर्वक संकलित किए गए तथ्य अथवा आँकड़े भी विश्वसनीय नहीं होते, जिसके कारण भ्रमिक निष्कर्ष निकल सकते हैं।

4. वस्तुनिष्ठता का अभाव होना : सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की समस्या शोध में वस्तुनिष्ठता बनाए रखने की है। अधिकांश विद्वानों का मानना है कि सामाजिक विज्ञान के अनुसंधान में प्राकृतिक विज्ञान की भांति प्रमाणिकता लाना कठिन है। सामाजिक विज्ञान के शोध में शोधकर्त्ता सामाजिक व्यवहार के संदर्भ में संभावित प्रकृति को महत्व देते हैं। इसका प्रमुख कारण है, सामाजिक घटना का स्वरूप, ठोस मापदंडों का विकसित न होना इत्यादि।

5. सामाजिक घटनाओं की गुणात्मक प्रकृति : सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की एक प्रमुख समस्या सामाजिक घटनाओं की गुणात्मक प्रकृति का होना है। प्राकृतिक विज्ञान की प्रवृत्ति गुणनात्मक होती है, जिसके कारण उसमें भावना सापेक्ष होती है परंतु सामाजिक घटनाओं

की प्रकृति गुणात्मक होती है। इस कारण इसको मापना कठिन होता है। जैसे समाज का व्यवहार, उसका किसी घटना के प्रति मनोभाव, मनुष्य की किसी समस्या को समझने की क्षमता, उसके दृष्टिकोण आदि। अतः सामाजिक घटनाओं की गुणात्मक प्रकृति सही एवं स्पष्ट वैज्ञानिक निष्कर्ष दे पाने में असमर्थ रहती है।

6. शोधकर्त्ता का अंतःविषयक दृष्टिकोण : सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की समस्या शोधकर्त्ता का समस्या के प्रति अंतः विषयक दृष्टिकोण है। सामाजिक विज्ञान की प्रकृति जटिल है। इसका विषय क्षेत्र तथा अध्ययन क्षेत्र विस्तृत है। अतः सही अध्ययन विषय का चुनाव करना, इसके लिए सही अध्ययन क्षेत्र का चुनाव, सही निदर्शन पद्धति, विश्वसनीय आँकड़ों का संकलन, सटीक विश्लेषण एवं उपयुक्त निष्कर्ष प्रस्तुत करना एक अच्छे शोधकर्त्ता के गुण होते हैं। परंतु अक्सर शोधकर्त्ता शोध के इन चरणों को सही प्रकार से अपना नहीं पाता जिस कारण सामाजिक घटनाओं की सही व्याख्या तथा समस्याओं का निदान नहीं हो पाता है।

7. उपकल्पना के निर्माण में कठिनाई : सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की समस्या सही उपकल्पना का निर्माण न हो पाना है। उपकल्पना का निर्माण शोध के प्रारंभ में समस्या के संबंध में किया जाता है। इन्हीं उपकल्पना या उपकल्पनाओं का परीक्षण एवं सत्यापन शोध के दौरान करना होता है। परंतु शोधकर्त्ता द्वारा कभी–कभी समस्या के संबंध में सही उपकल्पना का निर्माण ही नहीं हो पाता है। अतः वह समस्या से भटक जाता है या अस्पष्ट निष्कर्ष देता है जिससे शोध की विश्वसनीयता प्रभावित होती है। अतः शोध समस्या का गहराई से अध्ययन करने से पहले समस्या को स्पष्ट परिभाषित करना अति आवश्यक है क्योंकि स्पष्ट समस्या स्पष्ट समाधान का आधार है। यदि समस्या स्पष्ट होती है तो उसके समाधान हेतु की गई उपकल्पना भी सही होगी।

2.9 सामाजिक विज्ञान शोध की सीमाएं : सामाजिक विज्ञान शोध की सीमाएं निम्नलिखित हैं :

1. निदर्शन का आकार : सामान्यतः सामाजिक विज्ञान अनुसंधान के लिए निर्धारित समस्या के अध्ययन में जिन इकाइयों का प्रयोग किया जाना है वे कितनी हैं, यह पहले ही तय किया जाना जरूरी है। यहां समग्र में से सही निदर्शन इकाइयों का चुनाव जो समग्र का प्रतिनिधित्व करे तथा अध्ययन योग्य हो, अर्थात जिनका अध्ययन सरलता से किया जा सके, उनका चुनाव करना एक प्रकार से अध्ययन विषय की सीमा तय करता है।

2. विश्वसनीय या उपलब्ध आँकड़े अथवा तथ्यों की कमी : उपलब्ध एवं विश्वसनीय तथ्यों की कमी भी शोधकर्त्ता के अध्ययन और विश्लेषण पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। इसके अलावा शोधकर्त्ता द्वारा निदर्शन इकाई की संख्या अथवा आकार भी अर्थपूर्ण तथा महत्वपूर्ण तथ्यों को पाने में भी बाधा उत्पन्न करती है। इस स्थिति में शोधकर्त्ता के लिए इन सीमाओं को जानना जरूरी हो जाता है, जिनके कारण वह और उपयोगी एवं विश्वसनीय तथ्य एकत्रित नहीं कर पाता है। उपयुक्त एवं विश्वसनीय आँकड़ों की अनुपलब्धता से शोधकर्त्ता में कुंठा का भाव आ सकता है लेकिन वह इस मनःस्थिति से अपने आपको निकालकर इस स्थिति को भविष्य में शोध के लिए आधार सामग्री के रूप में प्रयोग के लिए ले सकता है।

3. विषय से संबंधित पूर्व शोध या अध्ययन की कमी : शोधकर्त्ता जिस विषय को अध्ययन के लिए चुनता है उससे संबंधित पूर्व में किए गए अध्ययनों के निष्कर्षों को अपने अनुसंधान से संबंधित अध्ययन सामग्री के रूप में प्रयुक्त करता है। यदि शोध विषय पर पूर्व में कोई अध्ययन नहीं हुआ है तो उसे पूरा अनुसंधान प्रारूप नये सिरे से तैयार करना पड़ता है। चूंकि शोधकर्त्ता को शोध के प्रारंभ में ही आधार सामग्री का अभाव होता है तो ऐसे में शोध पर ज्यादा समय, श्रम और धन लगता है।

4. आँकड़ों के संकलन पद्धति की सीमा : शोधकर्त्ता अपने अध्ययन विषय से संबंधित तथ्यों को संकलित करने के लिए विभिन्न विधियों का प्रयोग करता है। किसी भी शोध से संबंधित विश्वसनीय और उपयोगी आँकड़े शोधकर्त्ता की स्वयं की योग्यता तथा विषय से संबंधित उपयुक्त आँकड़े संकलन की तकनीक के कारण ही एकत्रित हो सकते हैं। यदि शोधकर्त्ता आँकड़ों के संकलन की प्रणाली का उचित प्रयोग करने में असफल रह जाता है तो वह प्राप्त निष्कर्षों का गहनता के साथ विश्लेषण नहीं कर सकता है। परिस्थिति अध्ययन विषय, निदर्शन की स्थिति भी प्रणाली के चयन को प्रभावित करती है, जैसे ग्रामीण स्तर पर साक्षात्कार प्रणाली, अनुसूची प्रणाली उपर्युक्त से परंतु अंतःदर्शन पद्धति का प्रयोग बड़े पैमाने वाले शोध पर नहीं किया जा सकता।

5. स्वतः प्रतिवेदित आँकड़े : शोधकर्त्ता आँकड़ों का स्वतः प्रतिवेदन दो प्रकार से करता है – पहला पूर्व में संकलित किए गए आँकड़ों के आधार पर एवं दूसरा शोध के गुणात्मक अध्ययन के लिए स्वयं आँकड़ों को एकत्रित करना। प्रत्येक दशा में स्वतः प्रतिवेदित आँकड़े इस तथ्य के आधार पर सीमित हो सकते हैं कि ये तथ्य स्वतंत्र रूप से प्रमाणित हैं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि सामाजिक विज्ञान अनुसंधान में शोधकर्त्ता उन्हीं तथ्यों को

संकलित करता है जो चिह्न उसे उत्तरदाता द्वारा साक्षात्कार में या समूह परिचर्चा में, या प्रश्नोत्तरी में बताए जाते हैं। ये स्वतः प्रतिवेदित तथ्य किसी न किसी प्रकार की पूर्वधारणा से प्रभावित हो सकते हैं, जैसे उत्तरदाता द्वारा स्वयं शोधकर्त्ता द्वारा या प्रतिदर्शन की अवधारणा द्वारा भी हो सकता है।

6. भाषा प्रवाह की सीमा : यदि शोधकर्त्ता किसी ऐसे विषय पर शोध करना चाहता है जो भाषा से संबंधित है तथा शोधकर्त्ता उस भाषा को ठीक से नहीं जानता, जैसे एक हिन्दी भाषी शोधकर्त्ता मैक्सिकन–अमेरिकन विद्यार्थियों का अध्ययन करना चाहता है जो स्पेनिश भाषा बोलते हैं, तब शोधकर्त्ता को इस प्रकार के अध्ययन के लिए स्पेनिश भाषा के शोध अध्ययन को उस विषय पर पढ़ने के लिए योग्य होना आवश्यक हो जाता है। यह समस्या भी सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की एक सीमा को व्यक्त करती है।

2.10 सामाजिक शोध के प्रकार

(Types of Social Research)

सामजिक शोध मुख्य रूप से तीन प्रकार के हो सकते हैं। सामाजिक शोध की प्रकृति को समझने के लिए यह आवश्यक है कि इसके प्रकारों के सम्बन्ध में भी विवेचना कर ली जाए। ये तीन प्रकार निम्नलिखित है :

1. मौलिक या विशुद्ध शोध (Fundamental or Pure Research) : इस प्रकार के सामाजिक शोध में सामाजिक जीवन व घटनाओं के सम्बन्ध में मौलिक सिद्धान्तों व नियमों का अनुसन्धान किया जाता है और इस अनुसन्धान का उद्देश्य नवीन ज्ञान की प्राप्ति व वृद्धि तथा पुराने ज्ञान की पुनः परीक्षा द्वारा उसका शुद्धिकरण होता है। इस प्रकार की खोज में नवीन तथ्यों व घटनाओं का अध्ययन किया जाता है। और साथ ही इस बात की भी जाँच की जाती है कि जो प्रचलित पुराने सिद्धान्त व नियम हैं वे वर्तमान परिस्थितियों के संदर्भ में ठीक हैं या नहीं। हो सकता है कि नवीन परिस्थितियों में भी पुराने नियम व सिद्धान्त खरे उतरें, पर यह भी हो सकता है कि नवीन परिस्थितियों के अनुसार उनमें कुछ आवश्यक सुधार या हेरफेर करना जरूरी हो जाए। यह भी हो सकता है कि नवीन परिस्थितियों की माँग नवीन सिद्धान्त व नियम हों। मौलिक शोध के अन्तर्गत नए सिद्धान्तों व नियमों की खोज नवीन परिस्थितियों तथा समस्याओं के उत्पन्न होने पर की जाती है। ऐसा इस उद्देश्य से किया जाता है कि इन नवीन सिद्धान्तों का वर्तमान परिवर्तित

परिस्थितियों के साथ अधिकाधिक मेल बैठ जाए और हम उनके सम्बन्ध में अपने नवीनतम ज्ञान के सहारे विद्यमान परिस्थितियों की चुनौती का सामना अधिक सफलतापूर्वक कर सकें। इस दृष्टिकोण से यह स्पष्ट है कि मौलिक शोध की प्रकृति आधारभूत रूप में सैद्धान्तिक है क्योंकि इसका एकमात्र उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति, वृद्धि तथा शुद्धिकरण होता है। सत्य की खोज करना इसका प्रमुख लक्ष्य है और इसीलिए समस्त घटनाओं के अनुसन्धान में यह केवल इसी लक्ष्य की प्राप्ति के प्रति सजग व प्रयत्नशील रहता है। जब यह किसी घटना का अध्ययन करता है तो उसके सम्बन्ध में उसे ज्ञान की प्राप्ति होती है, जब वह नवीन घटनाओं के सम्बन्ध में अनुसन्धान करता है तो विद्यमान ज्ञान की वृद्धि होती है और जब वह परिवर्तित परिस्थितियों के सन्दर्भ में पुराने नियमों तथा सिद्धान्तों की फिर से जाँच करता है तो उनके सम्बन्ध में उसके ज्ञान में आवश्यक सुधार या हेर–फेर हो जाता है। इस प्रकार फिर हम इसी निष्कर्ष पर आते हैं कि अपने अनुसन्धानों के द्वारा जो सामाजिक शोध ज्ञान की प्राप्ति, परिमार्जन व परिवर्द्धन को अपना लक्ष्य मानता है उसे मौलिक शोध करते हैं।

2. व्यवहारिक शोध (Applied Research) : पी॰ वी॰ यंग (P. V. Young) ने ठीक ही लिखा है कि खोज का एक निश्चित सम्बन्ध लोगों की प्राथमिक आवश्यकताओं तथा कल्याण से होता है। वैज्ञानिकों की मान्यता यह है कि समस्त ज्ञान सारभूत रूप से उपयोगी इस अर्थ में है कि वह एक सिद्धान्त के निर्माण में या एक कला को व्यवहार में लाने में सहायक होता है सिद्धान्त तथा व्यवहार आगे चलकर बहुधा एक–दूसरे में मिल जाते हैं। इसी मान्यता के आधार पर सामाजिक शोध का जो दूसरा प्रकार प्रकट होता है उसे ही हम व्यावहारिक शोध कहते हैं। व्यावहारिक शोध का सम्बन्ध सामाजिक जीवन के व्यावहारिक पक्ष से होता है और वह सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में ही नहीं अपितु सामाजिक नियोजन, सामाजिक अधिनियम, स्वास्थ्य, रक्षा सम्बन्धी नियम, धर्म, शिक्षा, न्यायालय, मनोरंजन आदि विषयों के सम्बन्ध में भी अनुसन्धान करता है और इनके सम्बन्ध में कारण–सहित व्याख्या व तर्कयुक्त ज्ञान से हमको समृद्ध करता है। पर इसका तात्पर्य यह नहीं है कि व्यावहारिक शोध का कोई सम्बन्ध समाज–सुधार से, सामाजिक व्याधियों के उपचार बनाने या सामाजिक नियोजनों को व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत करने से होता है। वह स्वयं यह सब कुछ नहीं करता है, यह काम तो समाज–सुधारक, राष्ट्रीय नेता,

प्रशासकों तथा अधिकारियों का होता है। व्यवहारिक शोध का काम केवल व्यवहारिक जीवन से सम्बन्धित विषयों तथा समस्याओं के सम्बन्ध में हमें यथार्थ ज्ञान देना है।

सामाजिक जीवन में व्यावहारिक शोध के महत्त्व को दर्शाते हुए स्टाउफर (Stouffer) ने लिखा है कि यदि सामाजिक–विज्ञान को अपना महत्त्व बढ़ाना है तो उसको अपने व्यावहारिक पक्ष पर बल देना होगा। उदाहरणार्थ, यदि समाज–विज्ञान स्पष्ट रूप से यह दर्शा सके कि एक परामर्श देने वाली व्यवस्था (Counselling System) सार्वजनिक स्कूलों में किस भाँति सर्वाधिक प्रभावपूर्ण हो सकती है तो यह स्पष्ट है कि समाज–विज्ञान के महत्त्व की सार्वजनिक स्वीकृति बढ़ जाएगी। व्यावहारिक शोध में भी अनुसन्धान के उन्हीं उपकरणों का उपयोग किया जाता है जिसका कि मौलिक या 'विशुद्ध विज्ञान में, और इसीलिए इसके द्वारा प्रस्तुत व्यावहारिक ज्ञान बड़े महत्त्व का और साथ ही यथार्थ सिद्ध होता है। व्यावहारिक शोध हमारे व्यावहारिक जीवन में आने–जाने वाली समस्याओं तथा अन्य घटनाओं पर नियन्त्रण प्राप्त करने या उनका अन्य उपचार करने के लिए आवश्यक सिद्धान्तों के विषय में हमारी चिन्तन–प्रक्रिया को उभार सकता है। इसका कारण यह है कि बहुधा यह देखा गया है कि एक आश्चर्यजनक प्रयोग सिद्ध व्यावहारिक खोज की व्याख्या या विश्लेषण करने के दौरान शोधकर्त्ता ऐसे व्यावहारिक सुझावों को प्रस्तुत करता है या ऐसी बातों को कहता है जो कि अनेक सामाजिक समस्याओं के उपचार में सहायक सिद्ध होते हैं। स्टाउफर (Stouffer) ने आगे लिखा है कि सामाजिक विज्ञान के व्यावहारिक शोध के तीन महत्वपूर्ण योगदान हैं : (क) कतिपय सामाजिक तथ्य किस भाँति समाज के लिए उपयोगी हैं इसके सम्बन्ध में विश्वसनीय प्रमाणों को प्रस्तुत करना; (ख) इस प्रकार की प्रविधियों का उपयोग व विकास करना जो कि मौलिक शोध के लिए भी उपयोगी सिद्ध हों; (ग) इस प्रकार के तथ्यों तथा विचारों को प्रस्तुत करना जो कि निष्कर्षीकरण या सामान्यीकरण की प्रक्रिया को प्रोत्साहित कर सके।

3. क्रियात्मक शोध (Action Research) : क्रियात्मक शोध व्यावहारिक शोध से अनेक अर्थ में मिलता–जुलता है क्योंकि इसका भी सम्बन्ध सामाजिक जीवन की ऐसी समस्याओं तथा घटनाओं से होता है जिनका कि व्यावहारिक या क्रियात्मक महत्त्व हो। जब समाजिक शोध अध्ययन के निष्कर्षों का क्रियात्मक रूप देने की किसी तत्कालीन अथवा भावी योजना से सम्बन्ध होता है तो उसे क्रियात्मक शोध कहा जाता है। और भी स्पष्ट रूप में हम यह कह

सकते हैं कि क्रियात्मक शोध वह अनुसंधान है जो कि किसी सामाजिक समस्या या घटना के क्रियात्मक पक्ष पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है और साथ ही अनुसन्धान के निष्कर्षों का उपयोग विद्यमान सामाजिक अवस्थाओं में परिवर्तन लाने की योजना के एक भाग के रूप में करता है। गुडे तथा हॉट (Goode and Hatt) के अनुसार, "क्रियात्मक शोध उस कार्यक्रम का अंश होता है जिसका लक्ष्य विद्यमान अवस्थाओं को परिवर्तित करना होता है; चाहे वह गन्दी बस्ती की अवस्थाएँ हों या प्रजातीय तनाव व पक्षपात हो या एक संगठन की प्रभावशीलता हो।" उदाहरणार्थ, यदि एक शोध–कार्य इस उद्देश्य को सामने रखते हुये किया जा रहा है कि उसके निष्कर्षों को गन्दी बस्तियों की सफाई के कार्यक्रम के उपयोग में लाया जाएगा अर्थात् उन गन्दी बस्तियों में इस समय रहने वाले व्यक्तियों के जीवन में और गन्दी बस्तियों की सामान्य अवस्थाओं में परिवर्तन लाने की किसी भावी योजना में उस शोध से प्राप्त निष्कर्ष उपयोगी सिद्ध होगा, तो उसे क्रियात्मक शोध कहेंगे। इसी प्रकार देश की वर्तमान शिक्षा–प्रणाली व संगठन में अमूल परिवर्तन लाने के लिए कोठारी कमीशन (Kothari Commission) कि नियुक्ति की गई थी, उसने देश की शिक्षा–प्रणाली के प्रत्येक पक्ष से सम्बद्ध इतने निर्भरयोग्य प्रमाणों व तथ्यों को एकत्रित कर आवश्यक सुधार व परिवर्तन लाने के सम्बन्ध में व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत किया कि उस कमीशन की रिपोर्ट भी क्रियात्मक शोध का एक उज्जवल उदाहरण बन गई है। अपनी रिपोर्ट को पेश करने से पूर्व इस कमीशन ने जिसमें स्वदेश तथा विदेश के प्रख्यात विशेषज्ञ सम्मिलित थे, सारे देश का दौरा किया, हर जगह शिक्षा–प्रणाली की वास्तविक क्रियाशीलता को देखा, निरीक्षण के द्वारा तथ्यों को एकत्रित किया, सम्बद्ध शिक्षकों, प्रधानाचार्यों, उपकुलपतियों, कुलपतियों, शिक्षा संघ के प्रतिनिधियों तथा अन्य क्रियात्मक एजेन्सियों से साक्षात्कार किया, उनके लिखित व मौखिक विचारों, माँगों तथा सुझावों का विश्लेषण किया और अन्य देशों में प्रचलित शिक्षा–प्रणालियों का भी अध्ययन किया। इसके पश्चात् फिर कहीं समस्त वास्तविक तथ्यों के आधार पर वर्तमान शिक्षा–प्रणाली के वास्तविक स्वरूप का चित्रण किया, उसमे घर किए हुए गम्भीर दोषों का विश्लेषणात्मक विवरण कारण सहित प्रस्तुत किया और उन्हें दूर करने तथा शिक्षा–व्यवस्था में आवश्यक परिवर्तन लाने के लिए व्यावहारिक सुझावों को प्रस्तुत किया। इन सबका उद्देश्य यही था कि कमीशन के निष्कर्ष तथा सुझाव इस देश की शिक्षा–प्रणाली की वर्तमान अवस्था में परितर्वन लाने के लिए बनने वाली किसी भावी योजना का अंग बन सकें। वास्तव में यही हुआ है। यद्यपि कोठारी

कमीशन क्रियात्मक शोध का कोई वास्तविक उदाहरण नहीं है, फिर भी इसके कार्यक्रमों से क्रियात्मक शोध की प्रकृति स्पष्ट होती है। क्रियात्मक शोध में शोधकर्त्ता को प्रारम्भ से ही कुछ विशेष बातों का ध्यान रखना पड़ता है। ये इस प्रकार हैं :

(अ) अध्ययन के समय घटना या समस्या के वास्तविक क्रिया पक्ष पर ध्यान : इसका तात्पर्य यह है कि जिस घटना का अध्ययन शोधकर्त्ता कर रहा है उसमें अन्तर्निहित मानवीय क्रियाओं, उनके कारणों, आधारों व नियमों के प्रति वह अत्यधिक सचेत रहता है। यदि वह प्रजातीय पक्षपात का अध्ययन कर रहा है तो वह यह जानने का प्रयत्न करेगा कि श्वेत प्रजाति के लोग श्याम प्रजाति के सदस्यों के प्रति कैसा व्यवहार करते हैं और उनके उन व्यवहारों का क्या कारण व आधार है। साथ ही, शोधकर्त्ता उस समस्या से सम्बद्ध क्रियात्मक एजेन्सियों का सक्रिय सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा। समस्या के चुनाव के सम्बन्ध में, उस समस्या के सम्बद्ध प्राथमिक ज्ञान प्राप्त करने के सम्बन्ध में, उस घटना की वास्तविक क्रियाशीलता को मालूम करने में, यहाँ तक कि तथ्यों के संकलन में भी क्रियात्मक एजेन्सियों का प्रयोग अत्यधिक लाभप्रद सिद्ध होता है।

(ब) समस्या या घटना के सम्बन्ध में ज्ञान : इसका तात्पर्य यह है कि क्रियात्मक शोध में शोधकर्त्ता के लिए यह आवश्यक है कि उसे समस्या या घटना के सम्बन्ध में कुछ न कुछ ज्ञान अवश्य ही हो। यदि ऐसा न हुआ तो उस घटना या समस्या में अन्तर्निहित किसी भी क्रियात्मक पक्ष का यथार्थ अनुसन्धान उसके लिए सम्भव न होगा। अतः इस प्रकार के शोधकार्य में शोधकर्त्ता सम्पूर्ण घटना या समस्या को तथा उसमें भाग लेने वाले व्यक्तियों या मानव–समूहों के व्यवहार–प्रतिमान को समझने का प्रयत्न करता है।

(स) सहयोग की प्राप्ति : इसका तात्पर्य यह है कि शोधकर्त्ता को निरन्तर इस बात का प्रयत्न करना पड़ता है कि उसे अपने कार्य में कम से कम विरोध का सामना करना पड़े। क्रियात्मक शोध का प्राथमिक उद्देश्य, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, विद्यमान अवस्थाओं में परिवर्तन लाना होता है। हो सकता है कि उस समाज या समूह में इस प्रकार के कुछ लोग या स्वार्थ–समूह हों जो कि इस परिवर्तन के पक्ष में न हों, क्योंकि परिवर्तन होने से उनके स्वार्थ को ठेस पहुँचेगी। इस कारण वे परिवर्तन का विरोध कर सकते हैं जिससे कि शोधकार्य में बाधा उत्पन्न हो सकती है। अतः शोधकर्त्ता को इस प्रकार की परिस्थितियों को उत्पन्न करना होता है जिससे कि विरोध की सम्भावनाएँ न्यूनतम हों।

(द) रिपोर्ट को आरम्भ में ही अन्तिम रूप न देना : इसका तात्पर्य यह है कि क्रियात्मक शोध की रिपोर्ट को एकदम अन्तिम रूप देकर प्रस्तुत नहीं करना चाहिए। पहले एक अन्तरिम रिपोर्ट (Interim Report) प्रस्तुत करनी चाहिए जिससे कि उससे प्रभावित होने वाले व्यक्तियों अथवा समूहों की प्रतिक्रियाओं को जाना जा सके। उन प्रतिक्रियाओं के आधार पर अन्तिम रिपोर्ट में आवश्यक सुधार करने की गुंजाइश सदैव रहनी चाहिए। तभी वह अन्तिम रिपोर्ट वास्तव में उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

2.11. अपनी प्रगति जांचिए :

(क) अनुसंधान से क्या तात्पर्य है?

(ख) सामाजिक विज्ञान अनुसंधान से क्या तात्पर्य है?

(ग) सामाजिक विज्ञान अनुसंधान किसका अध्ययन है?

(घ) सामाजिक विज्ञान अनुसंधान के प्रमुख उद्देश्य क्या हैं?

(ड़) सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की विषय वस्तु कैसी है?

(च) सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की गुणात्मक विधियाँ कौन सी हैं?

(छ) सामाजिक विज्ञान अनुसंधान क्यों जरूरी है?

(ज) विशुद्ध व मौलिक अनुसंधान को परिभाषित करो।

(झ) व्यावहारिक अनुसंधान का वर्णन करो।

(ञ) सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की तीन सीमाएँ बताओ।

2.12. अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर :

(क) अनुसंधान विभिन्न प्रकार की समस्याओं के समाधान खोजने की एक सुनियोजित व वैज्ञानिक विधि है जिसके अंतर्गत समस्या के विभिन्न पक्षों के विषय में सामग्री एकत्रित करके उसका विधिपूर्वक विश्लेषण करके समस्या का समाधान किया जाता है।

(ख) सामाजिक शोध वह क्रमबद्ध तथा वैज्ञानिक अध्ययन विधि है जिसके आधार पर सामाजिक घटनाओं के संबंध में हम नवीन ज्ञान की प्राप्ति करते हैं या पहले से प्रतिपादित नियमों की पुनः परीक्षा करते हैं।

(ग) सामाजिक विज्ञान समाज का विज्ञान है जिसमें मानव व्यवहार, सामाजिक सबंधों, सामाजिक क्रियाओं, सामाजिक व्यवहार, संस्कृति व सामाजिक संबंधों का अध्ययन किया जाता है।

(घ) सामाजिक विज्ञान की प्रकृति के आधार पर इसके उद्देश्यों को निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :

1. सैद्धान्तिक अथवा बौद्धिक उद्देश्य

2. व्यावहारिक या उपयोगितावादी उद्देश्य

(ड़) सामाजिक घटनाएँ, सामाजिक मान्यताएँ, विशिष्ट सामाजिक व्यवहार, सामाजिक समस्याओं के किसी भी पहलू के अध्ययन को सामाजिक विज्ञान अनुसंधान के अंतर्गत रखा जा सकता है।

(च) सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की गुणात्मक विधियाँ साक्षात्कार विधि, अवैयक्तिक विधि तथा अवलोकन विधि हैं।

(छ) सामाजिक जीवन से जुड़ी घटनाओं व समस्याओं को जानने का प्रयास व विभिन्न सामाजिक समस्याओं का निष्पक्ष वैज्ञानिक ढंग से समाधान खोजने के लिए सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की आवश्यकता होती है।

(ज) मौलिक अनुसंधान नवीन ज्ञान की प्राप्ति एवं वृद्धि करने तथा पुराने सिद्धान्तों की परीक्षा एवं पुनर्परीक्षा करने का काम करता है। गुडे एवं हॉट ने कहा भी है – रोग के निदान तथा इलाज के लिए और कोई तथ्य इतना व्यावहारिक नहीं है जितना कि मौलिक सैद्धांतिक अनुसंधान।

(झ) व्यावहारिक अनुसंधान के अंतर्गत सामान्यतः मौलिक अनुसंधान के द्वारा प्राप्त परिणाम को व्यावहारिक बनाने का प्रयास किया जाता है। इसके अन्तर्गत ज्ञान प्राप्ति मानवीय भाग्य के सुधार में सहायता प्रदान करती है।

(ञ) सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की सीमाएँ हैं :

– विश्वसनीयता की कमी

– तथ्यों व आँकड़ों का अभाव

– विषय से संबंधित पूर्व शोध की कमी

2.13. सारांश :

अतः स्पष्ट है कि सामाजिक अनुसंधान का अर्थ केवल पुनः खोज करना ही नहीं बल्कि किसी घटना या समस्या के बारे में नवीन जानकारी प्राप्त करना या उपलब्ध ज्ञान में किसी प्रकार का परिवर्तन करना भी है। सामाजिक शोध एक व्यवस्थित प्रक्रिया है जिसमें सामाजिक विषयों व तथ्यों की वास्तविकता, उनके कार्य–कारण संबंध एवं प्रक्रियाओं के बारे में क्रमबद्ध जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। इसका उद्देश्य केवल साधारण ज्ञान प्राप्त करना ही नहीं बल्कि व्यावहारिक जीवन में पाई जाने वाली सामान्य व जटिल दोनों प्रकार की समस्याओं के समाधान के लिए उस ज्ञान को उपयोग में लाना भी है। सामाजिक अनुसंधान वर्तमान समय में बदलती हुई परिस्थितियों तथा जन समस्याओं जैसे–गरीबी, बेकारी आदि के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है और इसके द्वारा ही इन सामाजिक समस्याओं का हल हो सकता है। इसलिए सामाजिक–अनुसंधान पर सरकार व प्रशासन के ध्यानाकर्षण की जरूरत है। जिससे मानव जीवन को सरल बनाया जा सकता है।

2.14. मुख्य शब्दावली :

- **सामाजिक विज्ञान अनुसंधान :** सामाजिक घटनाओं, समस्याओं तथा क्रियाओं के बारे में नवीन ज्ञान प्राप्त करके कार्य–कारण संबंधों, उनके अंर्तसंबंधों व अंतर्निहित प्रक्रियाओं का पक्षपात रहित विधि से अध्ययन ही सामाजिक विज्ञान अनुसंधान है।
- **मौलिक शोध :** अनुसंधान की वैज्ञानिक पद्धति जिसका उद्देश्य सैद्धांतिक ज्ञान प्राप्त करना है, नवीन ज्ञान की प्राप्ति व वृद्धि तथा पुराने ज्ञान की पुनः परीक्षा व शुद्धिकरण।
- **व्यावहारिक शोध :** सामाजिक विज्ञान के व्यावहारिक पक्ष से संबंधित शोध।
- **क्रियात्मक शोध :** सामाजिक जीवन की वे समस्याएँ व घटनाएँ जिनका क्रियात्मक महत्व होता है और जिनका लक्ष्य विद्यमान अवस्थाओं में परिवर्तन है।
- **विषय क्षेत्र :** किसी भी अध्ययन विषय के अंतर्गत जो पहलू शामिल होते हैं वो उसके विषय क्षेत्र का बोध कराते हैं। सामाजिक विज्ञान अनुसंधान के विषय क्षेत्र के

अंतर्गत समाज के राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक इत्यादि सभी पहलू निहित होते हैं।

2.15. अभ्यास हेतु प्रश्न :

(क) प्रस्तुत प्रश्नों के संक्षिप्त में उत्तर दीजिए :

(1) सामाजिक विज्ञान अनुसंधान से क्या अभिप्राय है ?

(2) सामाजिक विज्ञान अनुसंधान का विषय क्षेत्र बताओ।

(3) सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की प्रकृति का वर्णन करो।

(4) सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की उपयोगिता पर प्रकाश डालो।

(5) सामाजिक विज्ञान अनुसंधान के प्रमुख उद्देश्य क्या हैं?

(6) सामाजिक विज्ञान अनुसंधानों के प्रकारों के नाम लिखो।

(ख) प्रस्तुत प्रश्नों के विस्तृत उत्तर दीजिए :

(1) सामाजिक विज्ञान अनुसंधान के अर्थ को परिभाषित करते हुए इसकी विशेषताओं का वर्णन करो।

(2) सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की प्रकृति व अवधारणाओं का वर्णन करो।

(3) सामाजिक विज्ञान अनुसंधान के उद्देश्यों का विस्तारपूर्वक वर्णन करो।

(4) सामाजिक विज्ञान अनुसंधान के प्रकारों का विस्तृत वर्णन करो।

(5) सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की समस्याओं व सीमाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन करो।

2.16. आप ये भी पढ़ सकते हैं :

- अर्ल बैबी, ''द प्रक्टिस ऑफ सोशल रिसर्च'', (थ्रटियथ एडिशन), वैड्सवर्थ पब्लिशिंग कम्पनी, न्यूयार्क, 2012
- डी.के. भट्टाचार्य, ''रिसर्च मैथ्डोलॉजी'', एक्सल बुक्स, न्यू दिल्ली, 2005
- सी.आर. कोठारी, ''रिसर्च मैथ्डोलॉजी : मैथड्स एण्ड टैक्निक्स'', (सैकिण्ड रिवाइज्ड एडिसन), न्यू एज इंटरनेशनल पब्लिशर्स (पी. लिमिटेड), न्यू दिल्ली, 2004

- राबर्ट बी.बर्नस, ''इंट्रोडूक्सन टू रिसर्च मैथड्स'', (फोर्थ एडिसन), सेज पब्लिकेशन्स, लंदन, 2000
- एस. सरनताकोस, ''सोशल रिसर्च'', (सैकिण्ड एडिसन), मैकमिलन प्रेस, लंदन, 1998
- एच.एल. मैनहिम, ''सोशलोजिकल रिसर्च'', दा डोरसे प्रेस, इलिनोइस, 1977
- रसेल एल. एकॉफ, ''डिजाइन ऑफ सोशल रिसर्च'', यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो, 1960
- राम आहूजा, ''सामाजिक अनुसंधान'', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2010

***

इकाई–3 उपकल्पना अर्थात् परिकल्पना

इकाई की रूपरेखा :

3.0 परिचय

3.1 अधिगमन उद्देश्य

3.2 संरचना

3.3 परिकल्पना की परिभाषा

3.4 परिकल्पना की विशेषताएँ

3.5. सामाजिक अनुसंधानों में उपकल्पनाओं का महत्त्व या उपयोगिता

3.6 उपकल्पना के स्रोत

3.7 उपकल्पनाओं के प्रकार

3.8 उपयोगी (श्रेष्ठ) उपकल्पना की विशेषताएँ

3.9 उपकल्पना के निर्माण में कठिनाइयाँ

3.10 राजनीति विज्ञान शोध में उपकल्पना की भूमिका

3.11 सामाजिक विज्ञानों में सिद्धान्त निर्माण–राजनीति विज्ञान के विशेष संदर्भ में

3.11.1 राजनीति विज्ञान के संदर्भ में सिद्धान्त–निर्माण

3.12 अपनी प्रगति जांचिए

3.13 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

3.14 सारांश

3.15 मुख्य शब्दावली

3.16 अभ्यास हेतु प्रश्न

3.17 आप ये भी पढ़ सकते हैं

3.0. परिचय

सामाजिक शोध सामाजिक घटनाओं का वैज्ञानिक अध्ययन है और कोई भी अध्ययन तब तक वैज्ञानिक नहीं हो सकता जब तक उसमें वैज्ञानिक पद्धति को काम में न लाया जाए इस वैज्ञानिक पद्धति का सदुपयोग तब तक नहीं हो सकता जब तक हमें अपने अध्ययन–विषय के सम्बन्ध में कुछ–न–कुछ आरम्भिक ज्ञान एवं सामान्य अनुभव न हो। इस आरम्भिक ज्ञान व अनुभव के आधार पर हम अपने अध्ययन–विषय के विभिन्न पक्षों के सम्बन्ध में एक सामान्य अनुमान पहले से ही लगा सकते हैं। यह सामान्य अनुमान शोधकर्त्ता के लिए एक मार्ग–निर्देशक बन जाता है और शोधकर्त्ता का ध्यान कुछ निश्चित व आवश्यक तथ्यों पर ही केन्द्रित करके अनुसन्धान की दिशा को निर्धारित करता है और उसे अनिश्चितता के अन्धकार में भटकने से बचा देता है। उदाहरणार्थ, यदि हमारा अध्ययन–विषय 'बाल–अपराध' है तो हम अपने आरम्भिक ज्ञान व सामान्य अनुभव के आधार पर एक कामचलाऊ अनुमान यह कर सकते हैं कि निर्धनता व टूटे परिवार ही बाल–अपराध को जन्म देने के सबसे प्रभावशाली कारक हैं। उस अवस्था में हमारा यह अनुमान हमारे अध्ययन–कार्य में अत्यन्त सहायक सिद्ध होगा क्योंकि हमें यह निश्चित रूप में पता होगा कि हमें आर्थिक तथा पारिवारिक कारकों पर ध्यान केन्द्रित करना है, उन्हीं से सम्बन्धित तथ्यों को एकत्रित करना है और फिर देखना है कि जो 'अनुमान' हमने आरम्भ में लगाया था वह सही है अथवा गलत। इसी आरम्भिक सामान्य तथा कामचलाऊ अनुमान को जो कि आगे के अध्ययन–कार्य का आधार और वैज्ञानिक के लिए एक सहारा बन जाता है, कार्य–निर्वाही अथवा कामचलाऊ प्राक्कल्पना या उपकल्पना (Working Hypothesis) कहते हैं। प्रो॰ यंग (Young) के अनुसार कार्यनिर्वाही अथवा कामचलाऊ प्राक्कल्पना का निर्माण वैज्ञानिक पद्धति का प्रथम चरण (first step) है।

अतः हम कह सकते हैं कि "उपकल्पना का निर्माण वैज्ञानिक अनुसन्धान का अन्तिम लक्ष्य नहीं है।" अर्थात् अपनी उपकल्पना को सच प्रमाणित करने के उद्देश्य से वैज्ञानिक अनुसन्धान–कार्य में उपकल्पना का निर्माण नहीं किया जाता। वैज्ञानिक अनुसन्धान का अन्तिम लक्ष्य तो सच को ढूंढ़ निकालना है और सत्य की खोज वास्तविक तथ्यों के आधार पर ही सम्भव है, न कि उपकल्पना के आधार पर, उपकल्पना का निर्माण तो हम केवल इसलिए करते हैं कि अध्ययन–कार्य में हमें निश्चित रूप से क्या करना है उसके सम्बन्ध में

हमें एक अन्दाजा लग जाए और हम एक ही समय में एक ही विषय से सम्बन्धित सभी पहलुओं पर अपने ध्यान को बिखरा देने की गलती न करके अपने अनुसन्धान–क्षेत्र को सीमित करके अपनी उपकल्पना या प्राक्कल्पना के अनुसार अध्ययन–विषय के एक विशिष्ट पहलू पर अपना ध्यान केन्द्रित करें और उसी से सम्बन्धित तथ्यों को एकत्रित करें। इस प्रकार उपकल्पना हमें अध्ययन–कार्य के दौरान इधर–उधर भटकने से बचाता है और हम एक निश्चित दिशा में सत्य की खोज में आगे बढ़ सकते हैं। हो सकता है कि वास्तविक तथ्यों को एकत्रित कर लेने के पश्चात् हम यह पायें कि अपने अध्ययन–विषय के सम्बन्ध में जिस उपकल्पना का निर्माण हमने किया था, वह गलत है और वास्तविक तथ्यों के सन्दर्भ में उसे बदलने की आवश्यकता है। अर्थात् प्राक्कल्पना (उपकल्पना) के निर्माण के बाद हम अपने अध्ययन–कार्य के दौरान विषय से सम्बन्धित कुछ वास्तविक तथ्यों को एकत्रित करते हैं और फिर उन तथ्यों के आधार पर उस उपकल्पना की परीक्षा करते हैं कि वह सही है अथवा गलत। दूसरे शब्दों में, वास्तविक तथ्यों के आधार पर उपकल्पना को सही या गलत प्रमाणित करना वैज्ञानिक अनुसन्धान का अन्तिम लक्ष्य है, न कि केवल उपकल्पना का निर्माण। हाँ, यह सच है कि उपकल्पना का निर्माण कुछ वैज्ञानिक उद्देश्यों की पूर्ति करने में मदद करता है। अर्थात् अनुसन्धान–कार्य में सहायक सिद्ध होता है। इस इकाई के अन्तर्गत, परिकल्पना अर्थात् उपकल्पना का अर्थ स्पष्ट करने के साथ–साथ इसकी प्रकृति व विशेषताओं, सामाजिक अनुसंधानों में इसकी उपयोगिता, स्रोतों, प्रकारों, श्रेष्ठ उपकल्पना की विशेषताओं, उपकल्पना के निर्माण में कठिनाइयों व सामाजिक विज्ञानों विशेषकर राजनीति विज्ञान के संदर्भ में सिद्धांत निर्माण की भूमिका व प्रकृति का विस्तृत वर्णन किया गया है।

3.1 अधिगमन उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप निमलिखित उद्देश्यों को अच्छी तरह समझ सकेंगे–

(1) उपकल्पना का अर्थ व प्रकृति

(2) उपकल्पना के स्रोत व प्रकार

(3) एक अच्छी उपकल्पना की विशेषताएँ

(4) उपकल्पना का शोध में महत्व

(5) राजनीति विज्ञान अनुसंधान में उपकल्पना की भूमिका

(6) सामाजिक विज्ञान में सिद्धान्त निर्माण प्रक्रिया के बारे में जान पाएंगे।

3.2 संरचना :

अनुसंधान कार्य के अंतर्गत समग्र तथ्यों से संग्रहित सामग्री को एक क्रमबद्ध व व्यवस्थित तरीके से संगठित किया जाता है। जिससे उसका अध्ययन स्पष्टतापूर्वक चरण दर चरण किया जा सके। अनुसंधान कार्य में समस्या के परिभाषिकरण के बाद दूसरा चरण उपकल्पना निर्माण होता है। उपकल्पना परीक्षणों के आधार पर ही सिद्धान्तों का निरूपण होता है। प्रस्तुत इकाई में उपकल्पना को विस्तृत रूप से संगठित किया गया है और अंत में सामाजिक विज्ञानों विशेषकर राजनीति विज्ञान के संदर्भ में सिद्धांत निर्माण प्रक्रिया का भी वर्णन किया है। जिसका संरचनात्मक ढ़ांचा इस प्रकार है–

3.3 परिकल्पना की परिभाषा :

विभिन्न सामाजिक विद्वानों ने परिकल्पना को अलग–अलग तरह से परिभाषित किया है। नीचे कुछ प्रमुख विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं को प्रस्तुत किया जा रहा है।

1. वेबस्टर न्यू इन्टरनेशनल डिक्शनरी आफ दी इंगलिश लेंगवेज के अनुसार, ''एक परिकल्पना, एक विचार, दशा या सिद्धांत होती है जो कि सम्भवतः बिना किसी विश्वास के मान ली जाती है जिससे कि उसके तार्किक परिणाम निकाले जा सकें और ज्ञात या निर्धारित किए जाने वाले तथ्यों की सहायता से इस विचार की सत्यता की जाँच की जा सके।"

2. एमोरी एस॰ बोगार्डस ने इसे, "परीक्षित किए जाने वाले विचार के रूप में परिभाषित किया है।"

3. पी॰वी॰ यंग के अनुसार, "एक अस्थाई लेकिन केन्द्रीय महत्व का विचार जो उपयोगी अनुसंधान का आधार बन जाता है, उसे हम एक कार्यकारी परिकल्पना कहते हैं।"

4. लुण्डबर्ग के अनुसार, "एक परिकल्पना एक सामाजिक या कार्यवाह सामान्यीकरण होता है जिसकी सत्यता का परीक्षण करना अभी शेष रहता है।"

5. गुड व स्केट्स के शब्दों में, 'एक परिकल्पना प्रेक्षित तथ्यों या अवस्थाओं को समझाने और अध्ययन को मार्ग दर्शित करने के लिए बनाया गया व अस्थाई रूप में अपनाई गई एक बुद्धिमत्तापूर्ण कल्पना का निष्कर्ष होता है।"

6. प्रो॰ गुडे एवं हॉट के शब्दों में, "एक परिकल्पना एक विचार है जिसकी सत्यता या सार्थकता को आँकने के लिए उसको परीक्षा हेतु रखा जाता है।"

7. बर्नाड फिलिप्स लिखते हैं कि, "वे किसी घटना में विद्यमान सम्बन्धों के विषय में अस्थाई कथन हैं।" परिकल्पनाओं को 'प्रकृति से पूछे गए प्रश्न' कहा जाता है और वे वैज्ञानिक अनुसंधान में प्राथमिक महत्व के यंत्र होते हैं।

8. पीटर एच॰ मैनन परिकल्पना को "एक कार्यवाहक कल्पना" ही मानते हैं।

9. एम॰एन॰ गोपाल ने परिकल्पना को इन शब्दों के साथ परिभाषित किया, "यह ज्ञात व प्राप्त तथ्यों के एक सामान्य प्रेक्षण पर आधारित एक कार्यवाहक या अस्थाई उपचार या हल होता है, जो कि कुछ विशेष घटनाओं के समझने व अन्य की खोज में मार्गदर्शन के लिए अपनाया जाता है।''

परिकल्पनाओं की उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर प्रो॰ गुडे एवं हॉट ने अपने विचारों को व्यक्त करते हुए लिखा है कि, "वास्तव में अधिक जटिल अनुसंधान के क्षेत्रों में पुनः शोध करने के लिए उपकरणों और समस्याओं का निर्माण करना इस प्रकार की परिकल्पना का महत्वपूर्ण कार्य है।''

3.4 परिकल्पना की विशेषताएँ :

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह ज्ञात होता है कि परिकल्पना एक ऐसा पूर्व विचार, निष्कर्ष या सामान्यीकरण होता है जिसे कि अध्ययनकर्त्ता अपने अनुसंधान की समस्या के बारे में बना लेता है और फिर उसकी सार्थकता की जाँच करने के लिए आवश्यक तथ्यों को एकत्रित करता है। यदि अध्ययन में प्राप्त किए तथ्यों से इसकी सच्चाई सिद्ध हो जाती है तो यह विचार या सामान्यीकरण जिसे परिकल्पना कहा गया है, एक सिद्धांत का रूप धारण कर लेता है। यह देखा गया है कि अधिकतर वैज्ञानिक अनुसंधान में परिकल्पना की आवश्यकता होती है। यद्यपि यह प्रत्येक दशा में आवश्यक नहीं है तथापि इसके बिना सही तरह से आगे बढ़ना सम्भव नहीं है। इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना अति आवश्यक है कि आरम्भ में जब एक वैज्ञानिक किसी परिकल्पना को बनाता है तो उस समय घटनाओं के विषय में उसका ज्ञान सीमित होता है लेकिन जैसे–जैसे वह अपने अनुसंधान में आगे बढ़ता जाता है और तथ्यों पर अधिकार प्राप्त करता चला जाता है, उसका ज्ञान बढ़ता जाता है और तब वह यह अनुभव करने लगता है कि वह अपने द्वारा बनाई गई परिकल्पनाओं का निर्माण करे। ऐसा करने में वह तनिक भी घबराता नहीं है।

इन तथ्यों के आधार पर परिकल्पना की निम्नलिखित मुख्य विशेषताएं हैं–

(i) परिकल्पनाएँ अध्ययन–क्षेत्र में अनुसन्धानकर्त्ता का मार्गदर्शन करने के लिए अपनायी जाती हैं। केवल काल्पनिक रूप से उन्हें गढ़ने से वे अध्ययन को गलत बना सकती हैं। इसलिए अध्ययनकर्त्ता जितने भी तथ्यों के बारे में जानता है, उस जानकारी के आधार पर ही अपनी परिकल्पनाओं का निर्माण करता है।

(ii) परिकल्पना में तथ्यों का वर्णन या सारांश नहीं होता है बल्कि वह उसके विषय में एक सामान्यीकरण, विचार एवं प्रस्थापना होती है।

(iii) एक परिकल्पना के लिए यह आवश्यक है कि वह स्पष्टतया सामान्य प्रकार की हो जिससे वैज्ञानिक क्षेत्र में उसको अच्छी तरह समझा जा सके। अतः अनुसन्धानकर्त्ता के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह अपने विज्ञान की शब्दावली से भली–भांति परिचित हो।

(iv) परिकल्पना सरल होनी चाहिए। सरलता का तात्पर्य यह है कि वह न तो आवश्यकता से अधिक और न आवश्यकता से कम कारकों को अपनी परिकल्पना में सम्मिलित करे तथा वह जो कुछ विचार उसमें रखना चाहे वह सरल व सीधे–सादे प्रत्यक्ष रूप में रखा जाए।

(v) यदि परिकल्पना प्रचलित अनुसन्धान पद्धतियों से मेल खाने वाली होती है तो वह व्यावहारिक प्रश्नों के हल में सहायक सिद्ध होती है। लेकिन ऐसा होना सदैव जरूरी नहीं होता है, यदि अध्ययनकर्त्ता किसी महत्वपूर्ण घटना से सम्बन्धित एक या अधिक परिकल्पनाओं का स्पष्टतया व सरलतापूर्वक निर्माण कर चुका है तो यह सम्भव हो सकता है कि वह अपने अध्ययन के लिए कोई नवीन पद्धति को बना डाले, लेकिन प्रायः सामान्य अध्ययनकर्त्ताओं से इस प्रकार की आशा करना निरर्थक ही है।

(vi) परिकल्पना में प्रयोगसिद्धता का गुण होना चाहिए।

(vii) परिकल्पना अध्ययन की समस्या के मुख्य सिद्धांत से घनिष्टतापूर्वक सम्बन्धित हो।

(viii) कई बार निषेधात्मक या ऋणात्मक तथ्यों के आधार पर परिकल्पना बनाई जाती है। वह निष्कर्षों के धनात्मक तर्क का विरोध करती है। अतः इसे निराकरणीय परिकल्पना कहा जा सकता है।

(ix) वह केवल मात्र ऐसे आदर्श वाक्य के रूप में ही व्यक्त न हो जिसका विद्यमान तथ्यों या प्राप्त होने वाले तथ्यों में मेल न हो अर्थात् जिसे प्राप्त करना कठिन हो।

(x) यदि एक परिकल्पना उचित है तो उसके अनुसार एकत्रित किए जाने वाले तथ्य उपयोगी ही होंगे चाहे वे उसकी पुष्टि करें अथवा उसका खण्डन दोनों ही अवस्थाओं में लाभदायक होगा।

3.5 सामाजिक अनुसन्धानों में उपकल्पनाओं का महत्व या उपयोगिता :

सामाजिक अनुसन्धान में उपकल्पना का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। सामाजिक प्रघटनाओं के अध्ययन में विषय क्षेत्र चूँकि अधिक व्यापक होता है अतः उपकल्पना का

निर्माण अनुसन्धान क्षेत्र को सीमित कर उसे नियन्त्रण योग्य बना देता है। पी.वी.यंग का कहना है कि "उपकल्पना का प्रयोग उन तथ्यों की अंधी खोज व अंधाधुंध संकलन पर नियन्त्रण लगाता है जो बाद में अध्ययन किए जाने वाली समस्या के लिए अप्रासंगिक सिद्ध होते हैं।" अतः मार्गदर्शन के लिए उपकल्पना समुद्रों में जहाजों को रास्ता दिखाने वाले प्रकाश स्तम्भ (Light House) के समान है जो अनुसन्धानकर्त्ता व वैज्ञानिकों को इधर–उधर भटकने से बचाता है। डॉ॰ सत्यदेव ने अपनी कृति 'सामाजिक विज्ञानों की शोध पद्धतियाँ' में उपकल्पना के महत्त्व को एक उदाहरण से समझाया है। वे लिखते हैं कि "वनस्पति विज्ञान का एक विद्यार्थी पौधों के विकास के सम्बन्ध में शोध कार्य करना चाहता है। इस उद्देश्य से यदि वह नगर के पेड़–पौधों की पत्तियाँ गिनना प्रारम्भ करे तो उसका प्रयत्न हास्यास्पद होगा। इसका मुख्य कारण यह है कि उसका तथ्य संकलन आधार–हीन है। किन्तु यदि कोई सैद्धान्तिक आधार हो तो यही काम अर्थयुक्त हो सकता है। जैसे उसकी उपकल्पना यह हो सकती है कि किसी विशेष खाद के प्रयोग से पत्तियों की संख्या बढ़ जाती है। इसकी परीक्षा के लिए वह दो क्यारियों में पौधों की पत्तियों की संख्या की तुलना करता है –एक ऐसी जिसमें खाद डाली गई है और दूसरी जिसमें खाद नहीं डाली गई है। इस तुलना द्वारा यह जाना जा सकता है कि खाद पत्तियों की संख्या बढ़ाने में उपयोगी है या नहीं। इस प्रकार हम देखते हैं कि पत्तियाँ तभी उपयोगी हो सकती हैं यदि इसके पीछे उपकल्पना का आधार हो।"

इसी प्रकार सामाजिक विज्ञान में भी शोध के लिए उपकल्पनाओं का आधार आवश्यक है। राजनीति के क्षेत्र में एक उपकल्पना हो सकती है कि "मजदूर वामपंथी दलों को दक्षिण–पंथी दलों की अपेक्षा अधिक पसन्द करते हैं।" लोक–प्रशासन के क्षेत्र में उपकल्पना हो सकती है कि "जितनी ही कड़ी निगरानी कर्मचारियों की होती है उतना ही उनका मनोबल कम हो जाता है।" जैसा ऊपर कहा जा चुका है, अंतर्सम्बन्धित उपकल्पनाओं या उपकल्पनाओं के तंत्र को सिद्धांत कहते हैं।

कॉल पॉपर (Karl Peper) के अनुसार, ''वैज्ञानिक उपकल्पनाओं के लिए यह आवश्यक है कि उनका परीक्षण हो सके और यदि वे असत्य हों तो उन्हें सिद्ध किया जा सके। यदि किसी उपकल्पना को अनुभव के आधार पर असत्य सिद्ध करना असम्भव हो तो उसे वैज्ञानिक उपकल्पना नहीं कहा जाएगा। जो उपकल्पनाएँ परीक्षण की कसौटी पर खरी

उतरती हैं उससे ही विज्ञान का कलेवर बनता है। उनके परीक्षण के लिए पहले आधार–सामग्री का संग्रह करते हैं और फिर उसके आधार पर अनुमान लगाते हैं कि उपकल्पना स्वीकार्य है या अस्वीकार्य।''

जहोदा एवं कुक ने तो उपकल्पना को अनुसन्धान का प्रमुख वैज्ञानिक उद्देश्य माना है। वे स्वयं लिखते हैं कि "उपकल्पनाओं का निर्माण तथा सत्यापन करना ही वैज्ञानिक अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य होता है।''

एम. कोहेन के मत में, "उपकल्पनाओं के बिना अथवा प्रकृति में आशा किए बिना आनुभविक तथ्यों के संचय के ढंग के माध्यम से भी वैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि में वास्तविक प्राप्ति नहीं हो सकती। पथ–प्रदर्शन करने वाले किसी न किसी विचार के बिना हम वह नहीं जानते हैं कि किन तथ्यों का संग्रह करना है। सिद्ध करने के लिए किसी वस्तु के बिना हम यह निश्चित नहीं कर सकते कि क्या संगत और क्या असंगत है।''

उच. ध्यायनकेयर ने भी लिखा है, "यह प्रायः कहा गया है कि प्रयोग का पूर्वकल्पित विचारों के बिना किया जाना असंभव है। वह न केवल प्रत्येक प्रयोग को निष्फल बनाएगा बल्कि यदि हम इसे करना भी चाहें तो भी यह नहीं किया जा सकता है।''

कोहेन और नैगन ने यह विचार व्यक्त किया है "किसी भी पूछताछ में हम तब तक कदम आगे नहीं बढ़ा सकते हैं तब तक कि उस कठिनाई के प्रस्तावित स्पष्टीकरण अथवा समाधान से हम आरम्भ न करें जिससे इसे उत्पन्न किया है। इस प्रकार के कामचलाऊ स्पष्टीकरण हमें विषय–वस्तु के अन्तर्गत किसी वस्तु या हमारे पूर्व ज्ञान द्वारा सुझाये जाते हैं। जब ये पूर्वकल्पना के रूप में प्रतिपादित किए जाते हैं तो इन्हें उपकल्पनाएँ कहा जाता है।''

उपकल्पना का कार्य घटनाओं के बीच विशिष्ट सम्बन्धों को इस प्रकार व्यक्त करना है कि इस सम्बन्ध का आनुभविक परीक्षण किया जा सके। एक उपकल्पना का कार्य तथ्यों में क्रम की हमारी खोज को निर्देशित करना है। उपकल्पना में प्रतिपादित सुझाव समस्या के समाधान हो सकते हैं। वे हैं या नहीं, यह पूछताछ का कार्य है। सुझावों से कोई भी आवश्यक रूप से हमारे उद्देश्य की ओर नहीं भी ले जा सकता है और प्रायः कुछ सुझाव

एक–दूसरे के विरोध की स्थिति में भी हो सकते हैं ताकि ये सभी उसी समस्या के समाधान न हो सकें।

वैज्ञानिक ढंग के प्रयोग की एक मौलिक आवश्यकता यह है कि अवधारणाओं, वाक्य–विन्यासों एवं चरों की आवश्यक परिभाषा करने के पश्चात् अगला कदम यह है कि अनुसन्धान प्रश्नों का स्पष्ट एवं विस्तृत रूप से निर्माण किस प्रकार किया जाए जिनका उत्तर प्राप्त करने की हम आशा रखते हैं। ये प्रश्न हमें उपकल्पनाओं के निर्माण की ओर ले जाते हैं। एक उपकल्पना यह व्यक्त करती है कि हमें किस चीज की तलाश है। जब तथ्यों को एकत्रित कर उन्हें व्यवस्थित करते हुए उनके पारस्परिक सम्बन्धों की स्थापना की जाती है तो सिद्धांत का निर्माण होता है। सिद्धांत सही नहीं, बल्कि ये तथ्यों पर आधारित होते हैं। सिद्धांत के अन्तर्गत विभिन्न तथ्यों का तार्किक विश्लेषण किया जा सकता है तथा सम्बन्धों की भी स्थापना की जा सकती है। इस स्थल पर हमें इस बात की कोई जानकारी नहीं होती कि निगमनित नवीन सम्बन्ध सत्य हैं अथवा असत्य। ये निगमनित सम्बन्ध उपकल्पना का निर्माण करते हैं। यदि पुनः एकत्रित किए गए आँकड़ों के आधार पर इनकी पुष्टि हो जाती है तो यह भविष्य में किए जाने वाले सिद्धान्त निर्माण का एक अंग बन जाता है। जॉर्ज के शब्दों में, "प्रयोग में सिद्धांत एक विस्तृत उपकल्पना है जो सरल उपकल्पना की तुलना में अधिक प्रकार के तथ्यों के साथ कार्य करती है – अन्तर स्पष्ट रूप में पारिभाषित नहीं है। सिद्धांत से अन्य पूर्व–उपकल्पनाओं की उत्पत्ति दिखाई जा सकती है, यह पूर्व–कल्पनाएँ ही उपकल्पनाएँ हैं।"

उपकल्पना आनुभविक परीक्षण की दिशा में हमें ले जाती है चाहे कुछ भी परिणाम क्यों न हो। इस प्रकार उपकल्पना प्रस्तुत किया गया एक प्रश्न है जिसका किसी न किसी प्रकार आगे चल कर उत्तर प्राप्त किया जा सकता है।

इस प्रकार उपकल्पना के महत्व को हम निम्नांकित बिन्दुओं में रखकर समझ सकते हैं –

1. उपकल्पना अध्ययन में निश्चितता स्थापित करती है (Hypothesis Establishes Definiteness in the Study) : उपकल्पना की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसमें स्वयं में निश्चितता का तत्त्व या गुण पाया जाता है जिसके परिणामस्वरूप अध्ययन को एक स्पष्टता प्राप्त होती है। फलस्वरूप अनुसन्धानकर्त्ता को यह स्पष्टतः ज्ञात हो जाता है कि

उसे क्या–क्या करना है किन–किन तथ्यों को एकत्रित करना है, किन–किन तथ्यों को छोड़ना है। स्वयं गुडे एवं हॉट ने लिखा है कि उपकल्पना यह बताती है। कि हम किसकी खोज कर रहे हैं। इस प्रकार उपकल्पना के अध्ययन कार्य को निश्चितता प्रदान करने के परिणामस्वरूप अध्ययन कार्य में यथार्थता बढ़ जाने की सम्भावना रहती है क्योंकि अनुसन्धानकर्त्ता इधर–उधर के व्यर्थ के आँकड़ों एवं अनुपयोगी तथ्यों में न उलझकर केवल उन तथ्यों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करता है जिनकी सहायता से इसकी सत्यता या असत्यता को प्रमाणित किया जा सके।

2. उपकल्पना अध्ययन–क्षेत्र को सीमित करने में सहायक होती है (Hypothesis Helpful in the Limiting Subject Matter) : उपकल्पना द्वारा अध्ययन क्षेत्र को इस प्रकार सीमित करना सम्भव हो जाता है कि अनुसन्धानकर्त्ता अपना ध्यान अध्ययन के एक विशेष पहलू अथवा कुछ विशेष तथ्यों पर ही केन्द्रित कर सके। वास्तव में, प्रत्येक अध्ययन विषय के बहुत से पहलू हो सकते हैं। यदि अध्ययनकर्त्ता सभी पहलुओं को एक साथ लेकर अध्ययन करना आरम्भ कर दे तो किसी भी पहलू की गहराई में जाकर तथ्यों की एकत्रित नहीं किया जा सकता। अध्ययन की वैज्ञानिकता के लिए अध्ययन क्षेत्र का सीमित होना आवश्यक है जो उपकल्पना की सहायता से ही सम्भव हो सकता है। लुण्डबर्ग के शब्दों में, "उपकल्पना के प्रयोग से अध्ययन–क्षेत्र सीमित हो जाता है और अध्ययनकर्त्ता गहराई में जाकर विषय का अध्ययन करने में सफल हो सकता है।"

3. उपकल्पना अनुसन्धान की दिशा निर्धारित करती है (Hypothesis Determines the Direction of the Research) : उपर्युक्त विवचेना से यह स्पष्ट है कि उपकल्पनाएँ अनसुन्धानकर्त्ता का ध्यान अध्ययन विषय के एक विशिष्ट पहलू पर केन्द्रित कर देती हैं और अनुसन्धानकर्त्ता उसी के अनुसार एक निश्चित दिशा की ओर बढ़ता चला जाता है। इस अर्थ में उपकल्पना अनुसन्धानकर्त्ता के लिए ध्रुव तारे का काम करती है। अपनी उपकल्पना के आधार पर अनुसन्धानकर्त्ता यह जानता है कि उसे क्या करना है और क्या नहीं करना है, क्या उसके लिए काम की चीज है और क्या निरर्थक, किस दिशा को उसे अपनाना है और किस को नहीं। वास्तव में ठीक–ठीक उपकल्पना का निर्माण कर लेने से न केवल अध्ययन–क्षेत्र का ही अपितु लक्ष्य का भी, स्पष्टीकरण हो जाता है और

अनुसन्धानकर्त्ता का प्रत्येक प्रयास उद्देश्यपूर्ण, अर्थयुक्त तथा वैज्ञानिक धारणा के अनुकूल हो जाता है।

4. उपकल्पना उद्देश्य को स्पष्ट करती है (Hypothesis Clears the Objects) : उपकल्पना एक ऐसा मापदण्ड स्थापित करती है जिससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अध्ययन का क्या उद्देश्य है? कुछ अध्ययन बहुद्देश्यीय होते हैं, अतः उन्हें स्पष्ट करना आवश्यक होता है। जब उद्देश्य सुस्पष्ट हो जाता है तो अध्ययनकर्त्ता को सामग्री संकलन करने में कठिनाई नहीं होती। वह कई स्रोतों से आवश्यक और अभीष्ट सूचना प्राप्त कर सकता है। कई बार अनुसन्धानकर्त्ता उद्देश्य की स्पष्टता के अभाव में इतना भटक जाता है कि अन्त में निराशा ही हाथ आती है। उसके श्रम का कोई लाभ नहीं होता चाहे उसने कितनी ही निष्ठा, दिलचस्पी, लगन के साथ कार्य किया हो, अतः उपकल्पना इन मुख्य दोषों से बचाती है।

5. उपकल्पना उपयोगी तथ्यों के संकलन में सहायक होती है (Hypothesis helpful in the Collection of Useful Facts) : किसी भी सामाजिक घटना अथवा समस्या का अध्ययन करते समय अध्ययनकर्त्ता के सामने अनेक प्रकार के तथ्य आते हैं। कभी–कभी उन तथ्यों की उपयोगिता अथवा अनुपयोगिता को न समझ पाने के कारण अध्ययनकर्त्ता उपयोगी तथ्यों को छोड़कर व्यर्थ के तथ्यों के संकलन में लग जाता है। इसके फलस्वरूप सम्पूर्ण अध्ययन अव्यवस्थित और अवैज्ञानिक बन सकता है। इस स्थिति में "उपकल्पना सहायता से यह निश्चित करना आसान हो जाता है कि किन तथ्यों को एकत्रित किया जाए और किन्हें सरलता से छोड़ा जा सकता है" इसका तात्पर्य है कि उपकल्पना ही वह महत्त्वपूर्ण आधार है जो अध्ययनकर्त्ता पर नियन्त्रण बनाए रखकर अध्ययन को वैज्ञानिक बनाने में सहायता देती है।

6. उपकल्पना तर्कसंगत निष्कर्षों में सहायक होती है (Hypothesis helpful in the Logical Conclusions) : आरम्भ में ही यह स्पष्ट किया जा चुका है कि उपकल्पना की यह मान्यता है जिसके द्वारा अनुसन्धान–कार्य आरम्भ करने से पहले ही एक कामचलाऊ निष्कर्ष प्रस्तुत कर दिया जाता है। यह निष्कर्ष सत्य है अथवा असत्य, इसका परीक्षण बाद में एकत्रित तथ्यों के आधार पर किया जाता है। तथ्यों के आधार पर यदि उपकल्पना से सम्बन्धित निष्कर्ष सही प्रमाणित होता है तो उसे एक सामान्य नियम के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि यदि उपकल्पना का सावधानी से

निर्माण किया जाए तो यह उपयुक्त और तर्कसंगत निष्कर्ष निकालने में अत्यधिक सहायक होती है।

7. उपकल्पना निष्कर्ष निकालने में सहायक होती है (Hypothesis helpful in drawing Conclusions) : उपकल्पना के निर्माण के बाद हम उससे सम्बन्धित तथ्यों का संकलन करते हैं। इन तथ्यों के आधार पर हम यह सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि उपकल्पना सही है या गलत। यदि सही है तो हम सिद्धांत का निर्माण करते हैं जो अन्य अनुसन्धानों के लिए आधार बन जाते हैं। यदि गलत भी सिद्ध होती है तो हमें वास्तविकता का पता चलता है। उदाहरणार्थ यह कल्पना है कि "विद्यार्थी वर्ग का राजनीतिज्ञ केवल अपने संकीर्ण हितों की रक्षा के लिए शोषण करते हैं" यदि यह गलत भी सिद्ध होता है तो हमें वास्तविकता का तो ज्ञान होता ही है। श्रीमती पी. वी. यंग के अनुसार, वैज्ञानिक के लिए एक नकारात्मक परिणाम उतना ही महत्त्वपूर्ण तथा रोचक है जितना कि सकारात्मक परिणाम। दोनों ही अवस्थाओं में हमें सत्य का ज्ञान होता है जो उपकल्पना से ही सम्भव है। पी.वी. यंग के अनुसार उपकल्पना की उपयोगिता अनुसन्धानकर्त्ता की निम्न बातों पर निर्भर करती है – 1. तीक्ष्ण अवलोकन, 2. अनुशासित कल्पना एवं सृजनात्मक चिन्तन, 3. कुछ निरूपित सैद्धांतिक स्वरूप।

8. उपकल्पना सिद्धान्तों के निर्माण में योगदान देती है (Hypothesis Contributes in Formation of Theories) : सामाजिक अनुसन्धान का अन्तिम उद्देश्य सिद्धांतों का निर्माण करना होता है। इस कार्य में उपकल्पना की भूमिका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रमाणित हुई है। जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है, उपकल्पना का निर्माण साधारणतया किसी पूर्व स्थापित सिद्धांत के आधार पर होता है। एक अनुसन्धानकर्त्ता जब नई परिस्थितियों के सन्दर्भ में किसी पुराने सिद्धांत की सार्थकता को देखने का प्रयत्न करता है तो उपकल्पना उसके इस कार्य को बहुत सरल बना देती है। उपकल्पना की सहायता से जो सामान्य निष्कर्ष प्रस्तुत किए जाते हैं वे नए सिद्धांतों का निर्माण करने में भी अत्यधिक सहायक होते हैं। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि किसी भी अनुसन्धान में उपकल्पना का महत्त्व केन्द्रीय है। यही कारण है कि सामाजिक घटनाओं से सम्बन्धित कोई भी अनुसन्धान कार्य ऐसा नहीं होता जिसमें किसी न किसी उपकल्पना को आधार मानकर एकत्रित न किया जाए।

3.6 उपकल्पना के स्रोत :

उपकल्पना की अवधारणा की जानकारी के पश्चात् यह आवश्यक है कि अनुसन्धानकर्त्ता को उन उद्‌गम–स्रोतों (Sources) की जानकारी हो जहां से वह उपकल्पनाओं को प्राप्त कर सकता है, अथवा उन्हें निर्मित कर सकता है। दूसरे शब्दों में, वे कौन से उद्‌गम–स्थल एवं स्रोत हैं जिनसे किसी विशेष उपकल्पना या उपकल्पनाओं के निर्माण की प्रेरणा अनुसन्धानकर्त्ता को प्राप्त होती है। हमारा सामान्य अनुभव आसपास पाए जाने वाले संसार, साहित्य कविता अथवा कोई भी चीज उपकल्पना का स्रोत हो सकती है। जॉर्ज लुण्डबर्ग लिखते हैं कि "एक उपयोगी उपकल्पना की खोज में हम कविता, साहित्य, दर्शन, सामाजशास्त्र से विस्तृत वर्णनात्मक साहित्य, मानव, जातिशास्त्र, कलाकारों के काल्पनिक सिद्धान्तों या उन गम्भीर विचारों के सिद्धांतों की सम्पूर्ण दुनिया में विचरण कर सकते हैं, जिन्होंने कि मनुष्य के सामाजिक सम्बन्धों के गहन अध्ययन कार्य में अपने को नियोजित किया है।"

सामान्यतः सामाजिक विज्ञानों में उपकल्पनाओं के दो प्रमुख स्रोतों का उल्लेख किया गया है –

1. वैयक्तिक या निजी स्रोत (Personal or Individual Sources),

2. बाह्य स्रोत (External Sources)

वैयक्तिक या निजी स्रोत में अनुसंधानकर्त्ता की अपनी स्वयं की अन्तर्दृष्टि, सूझ–बूझ, कोरी कल्पना, विचार, अनुभव कुछ भी हो सकता है। एक अनुसन्धानकर्त्ता सामान्यतया अपनी प्रतिभा, दूरदर्शिता, विचारों की मौलिकता तथा अनुभवों के आधार पर उपकल्पना का निर्माण कर सकता है। अनेक उदाहरण ऐसे दिए जा सकते हैं जिनमें वैज्ञानिकों ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर ऐसी अनेक उपकल्पनाओं का निर्माण किया, जिनके आधार पर विश्व–विख्यात वैज्ञानिक नियमों का प्रतिपादन सम्भव हुआ। बाह्य स्रोत में कोई भी साहित्य, कल्पना, कहानी, कविता, विचार, अनुभव, सिद्धांत, साहित्य दर्शन, नाटक, उपन्यास अथवा प्रतिवेदन आदि कुछ भी हो सकता है। इसका मूल आशय यह है कि जब कभी अनुसंधानकर्ता किसी अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा प्रतिपादित एक सामान्य विचार के आधार पर अपनी उपकल्पना का निर्माण करता है, तो उसे हम उपकल्पना का बाह्य

स्रोत कहते हैं। अनेक समाजिक वैज्ञानिकों ने उपकल्पना के विभिन्न स्रोतों का उल्लेख किया है जिन्हें निम्नलिखित रूपों में स्पष्ट किया जा सकता है।

1. सामान्य संस्कृति (General Culture) : व्यक्तियों की गतिविधियों को समझने का सबसे अच्छा तरीका उनकी संस्कृति को समझना है। व्यक्तियों का व्यवहार एवं उनका सामान्य चिन्तन, बहुत सीमा तक उनकी अपनी संस्कृति के अनुरूप ही होता है। अतः अधिकांश उपकल्पनाओं का मूल स्रोत वह सामान्य संस्कृति होती है, जिसमें विशिष्ट विज्ञान का विकास होता है। संस्कृति लोगों के विचारों, जीवन–प्रणाली तथा मूल्यों को प्रभावित करती है। अतः प्रमुख सांस्कृतिक मूल्य प्रत्यक्षतः शोध–कार्य की प्रेरणा बन जाते हैं। उदाहरण के लिए, जैसे पश्चिमी संस्कृति में व्यक्तिगत सुख, भौतिकवाद, सामाजिक गतिशीलता, प्रतिस्पर्द्धा एवं सम्पन्नता आदि पर अधिक जोर दिया जाता है, जबकि भारतीय संस्कृति में दर्शन, आध्यात्मिकता, धर्म, संयुक्त परिवार, जाति–प्रथा आदि का गहन प्रभाव दिखाई देता है। इस प्रकार सामान्य संस्कृति भी अनुसन्धानकर्त्ता को उपकल्पना के लिए स्रोत प्रदान करती है।

सामान्य संस्कृति को तीन प्रमुख भागों में बांटकर समझा जा सकता है –

(क) सांस्कृतिक पृष्ठभूमि (Cultural Background) : जिस सामान्य सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को लेकर विज्ञान का विकास होता है, वह संस्कृति स्वयं ही उपकल्पना निर्माण के विभिन्न स्रोत उपलब्ध करती है। जैसे– भारत एवं ब्रिटेन की पृथक्–पृथक् सांस्कृतिक पृष्ठभूमि।

(ख) सांस्कृतिक चिन्ह (Cultural Traits) : इसमें हम किसी समाज या सस्कृति के लोक –ज्ञान के विभिन्न अंग जैसे लोक–विश्वास, लोक–कथाएं, लोक–साहित्य, लोक–गीत, कहावतें आदि को रख सकते हैं जिनके आधार पर उपकल्पनाओं का निर्माण किया जा सके।

(ग) सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन (Socio-Cultural Changes) : समय–समय पर उस संस्कृति, विशेषकर उसके संस्थात्मक ढांचे के विभिन्न अंगों में परिवर्तन किया जाता है। इन परिवर्तनों के कारण परिवर्तित सांस्कृतिक मूल्य भी उपकल्पना के स्रोत बन सकते है। अतः सामाजिक, सांस्कृतिक परिवर्तनों के आधार पर उपकल्पनाएं निर्मित की जा सकती हैं।

2. वैज्ञानिक सिद्धान्त (Scientific Theories) : वैज्ञानिक सिद्धान्त, जो समय–समय पर वैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं, भी कुछ उपकल्पना के स्रोत हो सकते हैं। गुडे एवं हॉट ने तो यहाँ तक लिखा है कि "उपकल्पनाओं का जन्म स्वयं विज्ञान से होता है।" प्रत्येक विज्ञान में अनेक सिद्धान्त होते हैं। इन सिद्धान्तों से हमें एक विषय के विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है। इस प्रकार इन सिद्धान्तों के अन्तर्गत सम्मिलित पक्षों के सम्बन्ध में प्राप्त ज्ञान भी उपकल्पनाओं का स्रोत माना जा सकता है। एक अनुसन्धानकर्त्ता अपने अध्ययन के द्वारा सामान्यतः केवल नवीन सिद्धान्तों की रचना ही नहीं करता बल्कि नवीन परिस्थितियों में पहले से स्थापित सिद्धान्तों का परीक्षण भी करता है। उक्त सिद्धान्तों के पुनर्परीक्षण से उनके अन्तर्गत विद्यमान कमियां एवं अशुद्धियां भी सामने आ जाती हैं। इस प्रकार प्रचलित सिद्धान्त सामाजिक अध्ययनों को दिशा प्रदान करते हैं एवं नवीन उपकल्पनाओं को जन्म देते हैं। उदाहरण के लिए प्रमुख समाजशास्त्री रिजले (Risley) एवं नेसफील्ड (Nesfield) ने भारत में 'जाति–प्रथा' की उत्पत्ति का अध्ययन करने के लिए जाति–प्रथा की उत्पत्ति से सम्बन्धित पहले के सिद्धान्तों के आधार पर ही अपनी उपकल्पनाएँ बनाई, दुर्खीम के द्वारा प्रस्तुत आत्महत्या का सिद्धान्त (Theory of suicide) भी इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। दुर्खीम के द्वारा प्रस्तुत "आत्महत्या के विभिन्न कारणों तथा सामाजिक प्रभावों की विवेचना करने के पश्चात् उससे सम्बन्धित जिन नियमों का निर्माण किया जाएगा उनका सामूहिक नाम 'आत्महत्या का सिद्धांत' कहलाएगा।" इस प्रकर अनेक बार पूर्व सिद्धान्तों के निष्कर्षों या सामान्यीकरणों के आधार पर उपकल्पनाओं का निर्माण किया जा सकता है। इस आधार पर उपकल्पनाओं के द्वारा इन सिद्धान्तों की पुष्टि या इन्हें अस्वीकृत अथवा नवीन सिद्धान्तों की रचना भी की जा सकती है। अतः वैज्ञानिक सिद्धान्त उपकल्पनाओं के प्रमुख स्रोत हैं।

3. सादृश्यताएं (Analogies) : जब कभी दो क्षेत्रों में कुछ समानताएं या समरूपताएं दिखाई देती हैं, तो सामान्यतया इस आधार पर भी उपकल्पनाओं का निर्माण कर लिया जाता है अर्थात् ऐसी समरूपताएं या सादृश्यताएं भी उपकल्पनाओं के लिए स्रोत बन जाती हैं। ए. वुल्फ (A. Wolf) ने लिखा है कि "सादृश्यता उपकल्पनाओं के निर्माण तथा घटना में किसी कामचलाऊ नियम की खोज के लिए अत्यन्त उपयोगी पथ–प्रदर्शन है।" कभी–कभी दो तथ्यों के मध्य समानता के कारण नई उपकल्पना का जन्म होता है, और इनकी प्रेरणा का

कारण सादृश्यताएं होती हैं। जुयिन हक्सले ने बताया है कि किसी विज्ञान की प्रकृति के सम्बन्ध में सामाजिक अवलोकन उपकल्पनाओं के आधार बन जाते हैं। ये समानताएं या तो विभिन्न व्यवहार–क्षेत्रों (उदाहरणार्थ – पशु–मनुष्य, वनस्पति–मनुष्य) में समरूपता की ओर संकेत करती हैं, या जो घटनाएँ एक ही अवसर या समय पर विभिन्न स्थानों पर घटित होती हैं, सादृश्यता की प्रकृति को बताती हैं। कुछ विशिष्ट व्यवहार 'मनुष्यों' एवं पशुओं में समान हो सकते हैं। परिस्थिति–विज्ञान के अन्तर्गत सामान्य मानवीय रूप अथवा क्रियाएँ समान क्षेत्रों अथवा परिस्थितियों में रहने वाले व्यक्तियों में देखी जा सकती हैं। पौधों में नर–मादा का परस्पर सम्बन्ध एवं व्यवहार भी पुरुषों–स्त्रियों के पारस्परिक यौन–सम्बन्धों की ओर संकेत करता है।

लुई पाश्चर (Lui Pasture) द्वारा चेचक के टीके लगाने के सिद्धांतों में "गायों के चेचक से संक्रमित होने तथा उसी के सादृश्य मनुष्य के शरीर में चेचक के कीटाणु छोड़ने को उपकल्पना माना गया है।"

हरबर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer) ने सामाजिक उद्विकास के सिद्धांतों को प्रस्तुत करने के लिए जिस उपकल्पना का निर्माण किया वह इस सादृश्यता पर आधारित थी कि "समाज की उत्पत्ति, विकास और विनाश जीव–रचना के जन्म–विकास और मृत्यु के ही समान है।"

4. व्यक्तिगत प्रकृति–वैशिष्ट्य अनुभव (Personal-Ideosyncratic Experiences) : गुडे एवं हॉट के मतानुसार व्यक्तिगत प्रकृति–वैशिष्ट्य अनुभव भी उपकल्पना के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। संस्कृति, विज्ञान एवं समरूपता ही उपकल्पना निर्माण के लिए आधार–सामग्री नहीं जुटाते बल्कि व्यक्ति का अपना अनुभव भी उपकल्पना के निर्माण में महत्वपूर्ण होता है। सामान्यतः प्रत्येक व्यक्ति प्रकृति से कुछ विशिष्ट अनुभव प्राप्त करता है और उसी अनुभव के आधार पर वह उपकल्पना का निर्माण कर सकता है।

न्यूटन (Newton) ने पेड़ से गिरने वाले सेब (Apple) को देखकर (जो एक सामान्य प्रकृति–वैशिष्ट्य अनुभव था) गुरुत्वाकर्षण के महान् सिद्धान्त स्थापित करने में अपने व्यक्तिगत अनुभवों पर ही उपकल्पनाओं का निर्माण करना पड़ा था। माल्थस (Malthus) ने भी जनसंख्या की तीव्र एवं खाद्य पदार्थों की धीमी वृद्धि का सिद्धान्त अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर बनाया। अपराधशास्त्री लोम्ब्रोसो (Lombroso) ने सेना के एक

चिकित्सक के रूप में अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर एक उपकल्पना का निर्माण किया कि "अपराधी जन्मजात होते हैं (Criminals are born) एवं अपनी शारीरिक विशेषताओं में वे सामान्य व्यक्तियों से भिन्न होते हैं सर हरबर्ट रिजले (Sir Herbert Risley) ने 1901 में जनगणना के अधीक्षक के रूप में जिस विषिष्ट ढंग से भारतीय जनता को देखा एवं उनके बारे में अनुभवों को प्राप्त किया वह उनके जाति के प्रजातीय सिद्धान्त (Racial Theory of Castes) की उपकल्पना की आधारशिला बनी है।

इस प्रकार मोटे तौर पर उपकल्पनाओं के स्रोतों को दो महत्वपूर्ण वर्गों में रखा जा सकता है। उपकल्पनाओं का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत सिद्धान्त (Theory) है। सिद्धान्त हमारे चिन्तन को दिशा देता है। दूसरे शब्दों में, वह हमें यह बताता है कि किसी की व्याख्या के लिए कौन से कारक महत्वूपर्ण हैं। हमारे संचित ज्ञान में विभिन्न सिद्धान्त हैं। प्रत्येक सिद्धांत से निगमन के द्वारा हमें अनेक उपकल्पनाएं प्राप्त हो जाती हैं फिर इन उपकल्पनाओं से निगमन द्वारा हम कुछ निष्कर्ष निकालते हैं। इन निष्कर्षों की अनुभव द्वारा ज्ञात तथ्यों से तुलना की जाती है। यदि निष्कर्ष इस कसौटी पर खरे नहीं उतरते तो हम उपकल्पना को अस्वीकार कर देते हैं। कार्ल मार्क्स का प्रमुख सिद्धान्त जैसे समााजिक परिवर्तन का मुख्य कारक प्रौद्यौगिकी का विकास से अनेक उपकल्पनाओं को प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार प्रशासन के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त मानवीय सम्बन्धों का है। मानवीय सम्बन्धों के सिद्धान्त से हम निम्न उपकल्पनाओं को प्राप्त कर सकते हैं–

(1) उत्पादन के स्तर का निर्णय सामाजिक प्रतिमानों द्वारा होता है।

(2) ऐसे पुरस्कार और दण्ड जो आर्थिक नहीं है, कामगारों के व्यवहार को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करते हैं।

(3) बहुधा कामगार व्यक्तियों की भांति नहीं बल्कि समूहों के सदस्यों की भांति व्यवहार करते हैं।

(4) नेता समूह के प्रतिमानों को निश्चित और लागू करने में महत्वपूर्ण भूमिका रखता है।

(5) यदि निर्णय कर्मचारियों की राय लेकर किए जाते हैं तो मनोबल और उत्पादकता बढ़ते हैं।

उपकल्पनाओं का दूसरा महत्वपूर्ण स्रोत है–दूसरे अध्ययन (Other Studies)। जब हम कोई शोध करते हैं तो कभी–कभी हमें कुछ ऐसी जानकारी भी मिलती है जिसकी हमें पहले से आशा नहीं होती। लेकिन उस समय यह कहना कठिन हो सकता है कि यह बात केवल उसी अध्ययन के लिए है। इस प्रकार किसी अध्ययन में संयोग से मिली जानकारी दूसरे अध्ययनों के लिए परिकल्पना बन सकती है। उदाहरण के लिए, मतदान के क्षेत्र में लोजार्सफील्ड (Lazarsfield) ने महत्वपूर्ण शोध किया जो वोटिंग (Voting) के नाम से प्रकाशित हुआ है, में इस सिद्धान्त को प्रस्तुत किया है। किन्तु इस शोध में परीक्षित कुछ महत्वपूर्ण परिकल्पनाएं इससे पिछले अध्ययन 'दि पिपुल्स च्वाइस' में प्राप्त हुई थीं। प्रथम अध्ययन से यह परिकल्पना मिली थी कि मतदान के सम्बन्ध में अपना निर्णय बदलने वाले लोग मुख्यतया वे होते हैं जिन पर परस्पर–विरोधी दबाव पड़ते हैं, जैसे जब उनके धर्म के लोग एक दल को वोट देते हैं और आर्थिक वर्ग के दूसरे दल को। दूसरे अध्ययन में शोध–अभिकल्प इस प्रकार बनाया गया कि इसका परीक्षण हो सके और उसे सत्य पाया था। इस प्रकार मतदान के विषय में इस महत्वपूर्ण ज्ञान की प्राप्ति हुई।

3.7 उपकल्पनाओं के प्रकार :

सामाजिक यथार्थ की जटिल एवं अमूर्त प्रकृति के कारण उपकल्पनाओं का कोई एक सर्वमान्य वर्गीकरण प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है। अतः अनेक विद्वानों ने अपने–अपने मतानुसार उपकल्पनाओं को वर्गीकृत किया है।

एम॰एन॰ गोपाल ने परिकल्पनाओं को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया है–

(1) अशुद्ध, मिली–जुली तथा मौलिक (Crude)

(2) विशुद्ध तथा पुनर्परीक्षित (refined) : दूसरे प्रकार की उपकल्पनाओं को गोपाल ने फिर तीन प्रकार से विभाजित किया है–

(क) सामान्य स्तरीय (Simple-Level)

(ख) जटिल स्तरीय (Complex-Level)

(ग) जटिलतम अन्तः सम्बन्धित (Complicated Inter-Related)

डा॰ सुरेन्द्र सिंह ने उपकल्पनाओं को दो भागों में वर्गीकृत किया है :

(1) तात्विक उपकल्पना (Substantive Hypothesis),

(2) साँख्यिकीय उपकल्पना (Statistical Hypothesis)।

1. तात्विक उपकल्पना : इस प्रकार की उपकल्पना में दो अथवा दो से अधिक चरों के मध्य अनुमान पर आधारित सम्बन्धों को व्यक्त किया जाता है। यह एक प्रकार के सामान्य प्रकार की उपकल्पना है। सामान्यतः ये तात्विक उपकल्पनाएँ परीक्षण योग्य नहीं होती। जैसे एक नेता जितने अधिक प्रजातांत्रिक ढँगों को अपनाएगा, उसका नेतृत्व उतना ही सफल होगा तथा उसके अनुयायी उसकी बातों को उतना ही अधिक मानेंगे।

2. साँख्यिकीय उपकल्पना : एक साँख्यिकीय उपकल्पना तात्विक उपकल्पना के सम्बन्धों से निगमनित साँख्यिकीय सम्बन्धों का एक अनुमान पर आधारित कथन है। साँख्यिकीय उपकल्पना के परीक्षण के लिए किसी न किसी आधार का होना आवश्यक है। इनका परीक्षण हम एक विकल्पीय उपकल्पना की पृष्ठभूमि में करते हैं।

हेज ने केवल दो प्रकार की उपकल्पनाएँ बतायी हैं–

1. सरल उपकल्पना (Simple Hypothesis) : इसमें सामान्य उपकल्पना लेते हैं और किन्हीं दो चरों में सहसम्बन्ध ज्ञात करते हैं।

2. जटिल उपकल्पना (Complex Hypothesis) : इसमें एक से अधिक चर होते हैं तथा उनमें सह–सम्बन्ध ज्ञात करने के लिए उच्च साँख्यिकीय प्रविधियों का प्रयोग करते हैं। दोनों के उदाहरण ऊपर दिए जा चुके हैं।

कुछ विद्वानों ने अनुसन्धान–उपकल्पना और साँख्यिकीय उपकल्पना के रूप में वर्गीकरण किया है–

1. अनुसन्धान उपकल्पना (Research Hypothesis) : जब उपकल्पना का निर्माण अनुसन्धानों द्वारा प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर होता है तो उसे अनुसन्धान उपकल्पना कहते हैं। इसी को व्यक्तियों ने वैज्ञानिक उपकल्पना, सामान्य उपकल्पना तथा निम्नात्मक उपकल्पना आदि नाम भी दिए हैं।

2. साँख्यिकीय उपकल्पना (Statistical Hypothesis) : शून्य उपकल्पना (Null Hypothesis) को साँख्यिकीय उपकल्पना भी कहते हैं।

मैक ग्इगन (Mc Guigan) के अनुसार अनुभवाश्रित उपकल्पनाएँ दो प्रकार की होती हैं–

1. सार्वभौमिक (Universal) : इस वर्ग में वे परिकल्पनाएँ सम्मिलित की जाती हैं जिनका अध्ययन किया जाने वाला सम्बन्ध सभी चरों से सभी समय तथा सभी संस्थानों पर रहता है, जैसे किसी समस्या–बक्स पर चूहों को एक ओर (यथा दाहिनी) मुड़ने पर पुरस्कृत किया जाये तो सभी चूहे उसी ओर मुड़ेंगे।

2. अस्तित्वात्मक (Existental) : ऐसी उपकल्पना जो कम से कम एक मामले में चरों के अस्तित्व को उचित घोषित कर सके। पिछले उदाहरण की इस वर्ग की उपकल्पना को इस प्रकार रचित किया जा सकता है कि कम से कम एक चूहा ऐसा है कि यदि उसे एक ओर (यथा, दाहिनी) मुड़ने पर पुरस्कृत किया जाये तो वह समस्या –बक्स में उस ओर अवश्य मुड़ेगा।

सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक अनुसन्धानों में सार्वभौमिक उपकल्पनाओं की अपेक्षा अस्तित्वात्मक उपकल्पनाओं का अधिक उपयोग होता है क्योंकि मनोवैज्ञानिक कई बार यह अनुमान करता है कि किसी प्रपंच का अस्तित्व की ओर ध्यान उसकी आवृत्ति से अधिक सम्बन्धित नहीं होता।

वैज्ञानिक अनुसन्धान में उपकल्पना को सिद्ध करना वैज्ञानिक का मुख्य कार्य है। वैज्ञानिक अस्तित्वात्मक उपकल्पना द्वारा अपनी अनुसन्धानिक उपकल्पना को सिद्ध करने में अधिक सफल रह सकता है तथा वह किसी प्रपंच या घटना के अस्तित्व को स्थापित करता है। तत्पश्चात् वह अध्ययन की जाने वाली घटना का सामान्यीकरण करना चाहता है। किसी विशिष्ट घटना का अस्तित्वात्मक उपकल्पना द्वारा अध्ययन अथवा निरीक्षण करना कठिन कार्य है। इसी कारण अति विशिष्ट उपकल्पना से सार्वभौमिक उपकल्पना बनाने में वह कठिनाई अनुभव करता है। वैज्ञानिक का मुख्य कार्य यह स्थापित करना होता है कि किन विशेष दशाओं में कोई घटना अथवा प्रपंच उत्पन्न होता है जिससे वह आवश्यक दशाओं को पाकर सार्वभौमिक उपकल्पनाओं का निर्माण कर सके। अनुसन्धानों में सार्वभौमिक कथनों की आवश्यकता होती है। सार्वभौमिक कथनों में पूर्वानुमान मूल्य विशिष्ट कथनों की अपेक्षा अधिक होता है। अतएव इस प्रकार के कथन अनुसन्धान में अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

(क) सकारात्मक कथन (Positive Statement) : इसमें उपकल्पना का कथन सकारात्मक रूप में करते हैं– उदाहरणार्थ (अ) वर्ग 'अ' की बुद्धिलब्धि वर्ग 'ब' से अधिक है, (ब) लड़के लड़कियों की अपेक्षा कथन के स्वरूप के आधार पर अधिक बुद्धिमान् होते हैं, (स) अभ्यास से सीखने में उन्नति होती है (ब) 16 वर्ष के पश्चात् रुचियों में स्थायित्व आ जाता है, आदि।

(ख) नकारात्मक कथन (Negative Statement) : इस प्रकार की उपकल्पना में कथन नकारात्मक रूप में होता है। उदाहरणार्थ, (अ) वर्ग 'अ' की बुद्धिलब्धि वर्ग 'ब' से अधिक नहीं है, (ब) लड़के लड़कियों से अधिक बुद्धिमान नहीं होते, (स) अभ्यास से सीखने में उन्नति नहीं होती (द) 16 वर्ष के पश्चात् रुचियों में स्थायित्व नहीं आता।

इन दोनों प्रकार की उपकल्पनाओं को निर्देशित उपकल्पना कहते हैं। इनमें एक दोष यह होता है कि जब अनुसन्धानकर्त्ता एक कथन सकारात्मक अथवा नकारात्मक रूप में कर देता है तो उसमें उनके स्वनिहित हो जाने की सम्भावना रहती है। पुनः वह उसे प्रमाणित अथवा गलत सिद्ध करने में लग जाता है। इस सम्भावना के कारण ही इन्हें बहुत अच्छी नहीं मानते।

इन उपकल्पनाओं के बहुत अच्छी न होने का एक अन्य कारण भी है। इनके परीक्षण में सदैव एक–पुच्छ परख (One Tail Test) का ही प्रयोग करते हैं। एक सम्भावना पर विचार करते समय हम दूसरी सम्भावनाओं पर ध्यान नहीं देते। यह भी इसका एक बड़ा दोष है।

(ग) शून्य उपकल्पना (Null Hypothesis) : इसमें यह मानकर चलते हैं कि दो चर जिनमें सम्बन्ध ज्ञात करने जा रहे हैं उनमें कोई अन्तर नहीं है नल (Null) जर्मन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ होता है 'शून्य'। अतः इस परिकल्पना को शून्य उपकल्पना भी कहते हैं। उदाहरणार्थ, (अ) वर्ग 'अ' और वर्ग 'ब' की बुद्धिलब्धि में कोई अन्तर नहीं है, (ब) एक बड़े समूह के पुरुषों की औसत बुद्धिलब्धि तथा एक बड़े समूह की स्त्रियों की औसत बुद्धिलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं है, (स) शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्र के माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापक के समायोजन में अन्तर नहीं होता।

इस प्रकार की शून्य उपकल्पना को एक और रूप में कह सकते हैं– स्थान 'अ' के निवासियों की औसत बुद्धिलब्धि 105 है। इसे भी शून्य उपकल्पना कहते हैं। इसका वर्णन

हेज ने किया है। इसका कहना है कि परीक्षण करने में जो निष्कर्ष प्राप्त होता है, उसे हम स्वीकार करते हैं। यह 105 हो सकता है, इससे अधिक या कम भी हो सकता है।

शून्य उपकल्पना को नकारात्मक उपकल्पना इस अर्थ में मानते हैं कि इसमें यह मानकर चलते हैं कि दो चरों में कोई सम्बन्ध नहीं है अथवा दो समूहों में क विशेष चर के आधार पर कोई अन्तर नहीं है। इस उपकल्पना में कोई धनात्मक कथन नहीं करते।

इस प्रकार की उपकल्पना की सबसे पहली विशेषता इसका निर्देश रहित होना है। परीक्षण में सरलता होती है, अनुसन्धानकर्त्ता को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं होना पड़ता। इसकी दूसरी विशेषता यह है कि इसमें द्वि–पुच्छीय परख का प्रयोग करते हैं अर्थात् दो सम्भावनाओं पर समान दृष्टि रहती है। इसी कारण इसे अच्छी मानते हैं तथा अधिकांश व्यक्ति इसी का प्रयोग करते हैं।

समय के अनुसार उपकल्पना की स्थिति को निम्नलिखित चार्ट द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

---

1. प्राक्कलन (Prediction)	→	उपकल्पना का निर्माण	→	सार्थक वस्तु स्थिति	→	आँकड़ों का संग्रह
2. उत्तराक्कलन (Postdiction)	→	सार्थक वस्तु स्थिति	→	उपकल्पना का निर्माण	→	आँकड़ों का संग्रह
3. वर्णन या व्याख्या (Description or Explanation)	→	सार्थक वस्तु स्थिति	→	आँकड़ों का संग्रह	→	उपकल्पना का निर्माण

स्थिति 1 : इस स्थिति में पहले कोई प्राक्कलन करते हुए उसके आधार पर उपकल्पनाओं का निर्माण करते हैं, फिर उसके उपरान्त सार्थक वस्तुस्थिति अथवा उस जनसंख्या अथवा स्रोत को ज्ञात करते हैं। अन्त में आँकड़ों का संग्रह कर किसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं। उदाहरण के लिए, बुद्धि और शैक्षिक उपलब्धि में उच्च सम्बन्ध होता है। इस प्राक्कलन के

पश्चात् उपकल्पनाओं का निर्माण करें। तत्पश्चात् सार्थक वस्तुस्थिति को ज्ञात करने के लिए विभिन्न बुद्धिलब्धि के छात्रों को लेंगे, उन पर परख का प्रयोग करके आँकड़े एकत्र करेंगे और उसका विश्लेषण कर निष्कर्ष प्राक्कलन को सिद्ध अथवा असिद्ध करेगा।

स्थिति 2 : इसमें ऐतिहासिक घटनाओं का अध्ययन करते हैं। घटना पहले हो चुकी हैं वर्तमान आँकड़ों के आधार पर उपकल्पना का निर्माण करते हैं तथा आँकड़े एकत्र कर उन्हें जाँचते हैं। उदाहरणार्थ, ताजमहल किसने बनवाया? वर्तमान ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर इसकी व्याख्या कर उपकल्पना की जाँच की जा सकती है। जिसे टाइफाइड हो चुका है, उसकी क्या स्थिति होती है, इसके आधार पर किसी व्यक्ति के विषय में यह कह सकते हैं कि उसे टाइफाइड था।

स्थिति 3 : यह वर्णनात्मक अनुसन्धानों में होती है। जो स्थिति है, उसका अध्ययन करती है, उसके आधार पर आँकड़े एकत्र करते हैं, उसकी परीक्षा करते हैं और अन्त में कुछ उपकल्पनाओं का निर्माण करते हैं।

गुडे एवं हॉट ने 'मैथ्ड्स इन सोशियस रिसर्च' में उपकल्पनाओं के तीन महत्त्वपूर्ण प्रकारों का उल्लेख किया है, जो सामाजिक विज्ञानों में अधिक प्रतिष्ठित हैं, वे हैं–

1. आनुभविक एकरूपता से सम्बन्धित उपकल्पनाएँ
2. जटिल–आदर्श प्रारूप से सम्बन्धित उपकल्पनाएँ, एवं
3. विश्लेषणात्मक चरों से सम्बन्धित उपकल्पनाएँ

1. आनुभविक एकरूपता से सम्बन्धित उपकल्पनाएं (Hypothesis Related to Empirical Uniformities) : सर्वप्रथम वे उपकल्पनाएँ आती हैं, जो अनुभवात्मक समरूपता के अस्तित्व की विवेचना करती हैं। इस स्तर की उपकल्पनाएं सामान्यतया सामान्य ज्ञान पर आधारित कथनों की वैज्ञानिक परीक्षा करती हैं अर्थात् इस प्रकार की उपकल्पनाओं के द्वारा हम ऐसी समस्याओं का अध्ययन कर सकते हैं, जिनके बारे में सामान्य जानकारी पहले से ही उपलब्ध है। उदाहरण के लिए, जैसे किसी उद्योग के श्रमिकों की जातीय पृष्ठभूमि की विवेचना अथवा किसी नगर के उद्योगपतियों के बारे में या अस्पृश्यता के बारे में अध्ययन। इसी प्रकार किन्हीं विशिष्ट समूहों के व्यवहारों का अध्ययन भी किया जा सकता है, जैसे

किसी विशिष्ट कॉलेज के नवीन छात्रों के व्यवहार का अध्ययन की वे पुराने छात्रों के व्यवहार से भिन्न है या नहीं।

कुछ लोगों का विश्वास है कि इस प्रकार के अध्ययनों में किसी प्रकार की उपकल्पना का प्रयोग नहीं होता है क्योंकि मात्र कुछ नये तथ्यों को एकत्रित किया जाता है, जबकि वस्तुतः इस प्रकार के अध्ययन में सामान्य जानकारी वाले कथन उपकल्पना का कार्य करते हैं तथा किए गए सर्वेक्षण या तो उस जानकारी की पुष्टि करते हैं या उनका खण्डन करते हैं। इस उपकल्पना के विरुद्ध सबसे बड़ा तर्क यह दिया जाता है कि इस प्रकार की उपकल्पना की कोई उपयोगिता नहीं है, क्योंकि जिसे सब लोग जानते हैं, उसे बताने में कोई नवीनता नहीं है, तथापि यहाँ इतना कहना पर्याप्त होता है कि प्रत्येक सामान्य जानकारी वैज्ञानिक जानकारी नहीं होती है, क्योंकि वैज्ञानिक जानकारी केवल व्यवस्थित रूप में वैज्ञानिक पद्धति द्वारा प्राप्त की जा सकती है। सामान्य जानकारी में प्रायः अन्धविश्वास एवं शंकाएँ भी सम्मिलित रहती हैं। इस प्रकार उपकल्पना का कार्य तीन स्तरों पर होता है –

प्रथम, यह मूल्य प्रदान निर्णयों को पृथक् करती है, दूसरा, पदों की व्याख्या करती है एवं तीसरा, उसकी प्रमाणिकता की जाँच करती है।

सामान्यतः जब किसी तथ्य के बारे में वैज्ञानिक अध्ययन के बाद उपलब्ध जानकारी पर यह कहा जाता है कि इसका पहले से ज्ञान था, जबकि वस्तुतः सच्चाई यह है कि बिना उस अध्ययन के उस प्रकार की पूर्वघोषणा करना किसी के लिए भी सम्भव नहीं होता, अतः वस्तुतः जिसके बारे में यह पद होता है, उसे सभी जानते हैं। यह मात्र प्रमाणिकता सिद्ध होने के बाद ही माना जाता है। इस प्रकार उपकल्पना का सरलतम रूप आनुभविक सामान्यीकरण प्राप्त करना है।

2. जटिल आदर्श प्रारूप से सम्बन्धित उपकल्पनाएँ (Hypothesis Related to Complex Ideal Types) : गुडे एवं हॉट के अनुसार दूसरे प्रकार की उपकल्पनाएँ जटिल आदर्श प्रारूप से सम्बन्ध रखती हैं। इन उपकल्पनाओं का प्रयोग प्रचलित तार्किक एवं अनुभवात्मक एकरूपताओं के सम्बन्धों का परीक्षण करने के लिए किया जाता है। इस प्रकार की उपकल्पनाएँ विभिन्न कारकों में तार्किक अन्तर्सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से बनाई जाती हैं। ऐसी उपकल्पना की परीक्षा के लिए सर्वप्रथम तथ्यों को तर्कपूर्ण मानकर

'सामान्यीकरण' (Generalization) निकाल लिया जाता है। बाद में उसी आधार पर अन्य तथ्यों एवं घटनाओं की परीक्षा करने और उक्त आधार को सार्थक सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है। संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि उपकल्पना के इस प्रकार में एक सामान्य मान्यता अथवा निष्कर्ष को पूर्वाधार मानकर अन्य तथ्यों की तर्कपूर्ण रूप से परीक्षा की जाती है। गुडे एवं हॉट ने स्वयं लिखा है कि "यथार्थ में अधिक जटिल अनुसन्धान के क्षेत्र में पुनः शोध करने के लिए उपकरणों एवं समस्याओं का निर्माण करना इस प्रकार की उपकल्पना का महत्त्वपूर्ण कार्य है।"

ई. डब्ल्यू. बर्गेस (E.W. Burgess) ने इस प्रकार की उपकल्पनाओं का प्रयोग 'नगरीय समाजशास्त्र' में शहरों के जीवन की व्याख्याओं के सम्बन्ध में किया था। उनकी एक उपकल्पना थी कि "केन्द्रीभूत गोलाकर नगर–विकास की प्रवृत्ति के लक्षण होते हैं।" इस स्तर पर उपकल्पना मात्र सामान्य आनुभविक एकरूपताओं के अनुसन्धान से आगे बढ़कर समाज के सन्दर्भ में जटिल निर्देश को जन्म देती है। इस प्रकार की उपकल्पनाओं का प्रयोग सामान्यतः जटिल क्षेत्रों के अनुसन्धान के क्षेत्रों को प्रस्तुत करता है।

3. विश्लेषणात्मक चरों से सम्बन्धित उपकल्पनाएँ (Hypothesis Ralated to Analytical Variables) : जहाँ प्रथम प्रकार की उपकल्पनाओं का सम्बन्ध 'आनुभविक एकरूपता' से होता है; तथा द्वितीय प्रकार की उपकल्पनायें 'आदर्श प्रारूपों' को बताती हैं वहीं तृतीय प्रकार की उपकल्पनाओं में विश्लेषणात्मक परिवर्तनों के अध्ययन के लिए एक प्रकार के लक्षणों से दूसरे प्रकार के लक्षणों में परिवर्तनों के मध्य सह–सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। इस प्रकार की उपकल्पनायें न केवल अन्य प्रकार की उपकल्पनाओं की तुलना में पर्याप्त हैं, अपितु यह सूत्रीकरण का सर्वाधिक परिष्कृत तथा लचीला स्वरूप है। उपकल्पना के इस स्तर पर चरों की संख्या मात्र सिद्धान्त को सीमित कर सकता है तथा सिद्धान्त स्वयं विकास करता है, अतः निरन्तर नवीन अनुसन्धान के अवसर उपस्थित होते रहते हैं।

इस प्रकार की उपकल्पनाओं का प्रयोग सामान्यतः प्रयोगात्मक अनुसन्धानों में किया जाता है। आधुनिक सामाजिक अनुसन्धानों में इस प्रकार की उपकल्पनाओं का महत्त्व बढ़ता जा रहा है। उदाहरणार्थ, निर्धनता, बाल–अपराध, छात्र असन्तोष आदि के लिए अनेक कारक उतरदायी हैं। इसमें अन्तर्सम्बन्धों की स्थापना का तार्किक आधार महत्त्वपूर्ण होता है।

3.8 उपयोगी (श्रेष्ठ) उपकल्पना की विशेषताएँ :

(Characteristics of Workable or Usable or Good Hypothesis)

यों तो 'प्राक्कल्पनाओं का सपना' हम सभी को आता है – कोई तो परीक्षा पास करने के सम्बन्ध में प्राक्कल्पना करता है कोई रातों–रात धनी बन जाने के सम्बन्ध में प्राक्कल्पना करता है, कोई प्रेम में विजय पाने के लिए यह मान लेता है कि 'प्रेम और युद्ध में कुछ भी अनुचित नहीं है', कोई पिता अपने 'बिगड़े शहजादों' को सही रास्ते में लाने के लिए 'बाल मनोविज्ञान' की पुस्तक को खरीदकर कुछ 'अच्छी' प्राक्कल्पनाओं का निर्माण करता है– पर दुर्भाग्यवश इन्हें व्यावहारिक स्तर पर लाने या उन्हें प्रयोग में लाने योग्य बनाने और उनकी सत्यता की जांच करने का प्रयत्न बहुत कम लोग ही करते हैं। सपनों की भाँति ही ये प्राक्कल्पनाएँ रात को आती और दिन को चली जाती हैं–'बेरहमों की तरह'। प्राक्कल्पनाएँ उपयोगी हों, इसके लिए यह आवश्यक है कि उनमें कुछ उल्लेखनीय गुण या विशेषताएँ हों। वैज्ञानिक प्रयोग (use) के योग्य प्राक्कल्पनाओं की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

(क) स्पष्टता (Clarity) : प्राक्कल्पनाओं का अवधारणात्मक रूप में स्पष्ट (Conceptually Clear) होना परमावश्यक है। स्मरण रहे कि किसी भी स्तर पर अस्पष्टता वैज्ञानिक पद्धति के प्रतिकूल है और चूँकि प्राक्कल्पनाओं का निर्माण उसी वैज्ञानिक पद्धति का प्रथम चरण है। अतः प्राक्कल्पनाओं में भी अस्पष्टता होना वैज्ञानिक भावना के विरुद्ध है। प्राक्कल्पनाओं की स्पष्टता में सर्वश्री गुडे तथा हॉट (Goode and Hatt) के अनुसार दो बातें सम्मिलित हैं'–

एक तो यह कि प्राक्कल्पना में निहित अवधारणाओं को स्पष्ट रूप में परिभाषित किया जाए ताकि किसी भी प्रकार की अस्पष्टता आगे चलकर अध्ययन–कार्य में बाधा की सृष्टि न कर सके, और दूसरी यह कि ये परिभाषाएँ ऐसी स्पष्ट भाषा में लिखी जाएँ कि अन्य लोग भी सामान्यतः उसका सही अर्थ समझ सकें।

(ख) अनुभवाश्रित सन्दर्भ (Empirical Referents) : इस विशेषता का तात्पर्य यह है कि वही प्राक्कल्पना वैज्ञानिक अनुसन्धान में प्रयुक्त की जा सकती है जिसमें कि आदर्शात्मक निर्णय (value judgement) का पुट नहीं है। इसका अर्थ यह है कि वैज्ञानिक को अपनी

प्राक्कल्पना में किसी आदर्श को प्रस्तुत करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए, अपितु उसका सम्बन्ध ऐसे विचार या ऐसी अवधारणा से होना चाहिए जिसकी सत्यता की परीक्षा वास्तविक प्रयोग अथवा वास्तविक तथ्यों के आधार पर की जा सके। 'स्त्रियाँ स्वभावतः ही चंचल होती है', 'सभी विद्यार्थियों को अनुशासित जीवन व्यतीत करना है', 'आज संयुक्त परिवार अनावश्यक है', आदि प्राक्कल्पनाएँ आदर्शात्मक हैं और इसलिए वैज्ञानिक अध्ययन का आधार नहीं बन सकतीं।

(ग) विशिष्टता (Specificity) : प्राक्कल्पना अगर अत्यन्त सामान्य (General) है तो उससे यथार्थ निष्कर्ष तक पहुंचना सम्भव नहीं होता है क्योंकि किसी विषय के सभी पक्षों का वैज्ञानिक अध्ययन हम एक ही समय पर नहीं कर सकते। अतः यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि प्राक्कल्पना अध्ययन–विषय के किसी विशेष पहलू से सम्बद्ध हो। साथ ही, अगर उसमें विशिष्टता का गुण नहीं हुआ तो उसकी सत्यता की जाँच करना भी कठिन हो जाता है और जो प्राक्कल्पना जाँच से परे है। वह वैज्ञानिक के लिए निरर्थक भी है। अक्सर ऐसा होता है कि प्राक्कल्पना को अधिकाधिक आकर्षक व प्रभावशाली बनाने के लिए उसे ऐसे विराट व सामान्य तौर पर (in general terms) व्यक्त किया जाता है कि वह स्वयं वैज्ञानिक की पहुंच के बाहर हो जाती है। अतः प्राक्कल्पना में विशिष्टता का होना आवश्यक है जिससे कि एक सुनिश्चित वैज्ञानिक सीमा के अन्तर्गत रहते हुए सत्य की खोज सम्भव हो।

(घ) उपलब्ध प्रविधियों से सम्बद्ध (Related to Available Techniques) : प्राक्कल्पना का निर्माण इस बात को ध्यान में रखते हुए करना चाहिए कि उसकी सत्यता की जाँच उपलब्ध प्रविधियों के द्वारा सम्भव हो। वास्तव में, जैसा कि सर्वश्री गुडे एवं हॉट (Goode and Hatt) का कथन है, "सिद्धान्त और पद्धति एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं। जो सिद्धान्तकार यह नहीं जानता है कि उसकी प्राक्कल्पना की जाँच के लिए कौन–कौन सी प्रविधियाँ उपलब्ध हैं, वह उपयोगी प्रश्नों के निर्माण में असफल रहता है।" अतः प्राक्कल्पनाएँ ऐसी होनी चाहिएँ जो कि प्रचलित प्रविधियों की पहुंच के भीतर हों। पर इस नियम का तात्पर्य यह नहीं है कि प्राक्कल्पनाओं का निर्माण उपलब्ध प्रविधियों द्वारा सीमित है। आधुनिक समय में समस्याएँ इतनी जटिल हैं कि उनसे सम्बद्ध जटिल प्राक्कल्पनाओं का निर्माण केवल प्रविधियों को ध्यान में रखकर बनाना सम्भव नहीं। उपरोक्त नियम का तात्पर्य तो केवल

इतना ही है कि प्राक्कल्पना इस प्रकार की हो कि वह अनुसन्धान का एक सामयिक आधार भी बन सकती है या नहीं, इसकी परीक्षा उपलब्ध प्रविधियों द्वारा की जा सके।

(ङ) सिद्धान्त समूह से सम्बद्ध (Related to Body of Theory) : गुडे और हॉट (Goode and Hatt) ने लिखा है कि इस नियम की अवहेलना अक्सर सामाजिक अनुसन्धान के आरम्भिक विद्यार्थी कर जाते हैं। उनके चुनाव मे इस बाबत की सम्भावना अधिक होती है कि वे इस प्रकार के अध्ययन–विषय (Subject-Matter) को चुन लें जो कि 'रुचिकर' (Interesting) या आकर्षक हो ऐसा करते समय वे इस बात का ध्यान नहीं रखते हैं कि उनका वह शोध–कार्य वास्तव में सामाजिक संबंधों से सम्बद्ध किन्हीं विद्यमान सिद्धान्तों को गलत प्रमाणित करने या उन्हें सही प्रमाणित करने अथवा उनकी पृष्टि करने में सहायक होगा भी या नहीं। पर एक विज्ञान तभी प्रगतिशील बन सकता है जबकि विद्यमान तथ्य व सिद्धान्त–समूह सुप्रतिष्ठित हों। उस अवस्था में उसका विकास हो नहीं सकता यदि प्रत्येक अध्ययन एक पृथक् सर्वेक्षण हो। अतः प्राक्कल्पना ऐसी होनी चाहिए जो सम्बद्ध क्षेत्र में किसी पूर्वस्थापित सिद्धान्त के क्रम में हो क्योंकि असम्बद्ध प्राक्कल्पनाओं की परीक्षा विस्तृत सिद्धान्तों के सन्दर्भ में नहीं की जा सकती। भौतिक विज्ञानों में शोध–कार्य पर्याप्त उन्नत स्तर तक पहुंचने का कारण यह है कि विभिन्न अनुसन्धानकर्त्ता पूर्व सिद्धान्तों से सम्बद्ध संक्षिप्त, स्पष्ट तथा विशिष्ट प्राक्कल्पनाओं का निर्माण करके छोटी–छोटी सम्बद्ध समस्याओं पर खोज करते रहते हैं।

3.9 उपकल्पना के निर्माण में कठिनाइयाँ

(Difficulties in the Formulation of a Hypothesis)

उपकल्पना का निर्माण अत्यन्त सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए। लेकिन अनेक बार अत्यन्त सावधानीपूर्वक उपकल्पनाओं का निर्माण करने के बाद भी कुछ कठिनाईयाँ उपस्थिति हो जाती हैं। इन कठिनाइयों के कारण अनेक बार अनुसन्धानकर्त्ता अपना धैर्य खोने लगता है। गुडे एवं हॉट ने उपकल्पना निर्माण में आने वाली तीन प्रमुख कठिनाइयों का उल्लेख किया। वे हैं–

1. स्पष्ट सैद्धान्तिक सन्दर्भ का अभाव (Absence of a Clear Theoretical Framework)।

2. उपलब्ध सैद्धान्तिक सन्दर्भ को तार्किक रूप से उपयोग में लाने का अभाव (Lack of Ability to Utilise that Theoretical Framework Logically)।

3. उपलब्ध अनुसन्धान प्रविधियों के साथ पर्याप्त जानकारी का अभाव (Failure to be Acquainted with Available Research Techniques).

लेकिन यहाँ हम उपकल्पना निर्माण में आने वाली कुछ सामान्य कठिनाइयों का उल्लेख करेंगे।

1. सैद्धान्तिक सन्दर्भ की अनुपस्थिति (Lack of Theoretical Framwork) : किसी विचार के उत्पन्न होने के पश्चात् उस पर वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा अनुसन्धान करते हेतु जब उपकल्पना का निर्माण किया जाता है तो सर्वप्रथम कठिनाई यह उपस्थित होती है कि पूर्व–स्थिति के स्पष्टीकरण के लिए सैद्धान्तिक सन्दर्भ (ढाँचा) उपलब्ध नहीं हो पाता है। अतः ऐसी स्थिति में एक कार्यकारी उपकल्पना का निर्माण कठिन हो जाता है।

2. सैद्धान्तिक सन्दर्भ के आवश्यक ज्ञान का अभाव (Lack of Knowledge of Theoretical Framework) : अनेक बार सैद्धान्तिक सन्दर्भ तो उपस्थित होता है, मगर अनुसन्धानकर्त्ता को अपने विषय एवं उपकल्पना से सम्बन्धित सैद्धान्तिक सन्दर्भ का स्पष्ट ज्ञान नहीं होता, तथा उसके अभाव में वह सफलतापूर्वक उपकल्पना का निर्माण नहीं कर सकता। सैद्धान्तिक सन्दर्भ का स्पष्ट ज्ञान अनुसन्धानकर्त्ता की प्रथम आवश्यकता है।

3. सैद्धैान्तिक सन्दर्भ के तर्कपूर्ण प्रयोग का अभाव (Lack of Logical use of Theoretical Framework) : सैद्धान्तिक सन्दर्भ की पूर्ण उपस्थिति एवं उसके बारे में पर्याप्त ज्ञान होने के बाद भी उपकल्पना निर्माण में एक कठिनाई यह आती है कि उसमें सैद्धान्तिक सन्दर्भ के तर्कपूर्ण (Logical) एवं कुशल (Efficient) प्रयोग की योग्यता भी होनी चाहिए। इसके अभाव में उपयोगी उपकल्पना का निर्माण लगभग असम्भव ही है।

4. अध्ययन प्रविधियों की विविधता (Varying Study Techniques) : आधुनिक समय में अनेक नवीन आविष्कारों, मशीनों एवं यन्त्रों आदि का प्रचलन बढ़ जाने से नवीनतम अध्ययन–प्रविधियों के आ जाने से इन अध्ययन–प्रविधियों में इतनी विविधता आ गई है कि एक अनुसन्धानकर्त्ता के लिए सर्वाधिक उपयुक्त पद्धति का चयन करना अत्यन्त दुष्कर हो

गया है। वर्तमान में एक ही अध्ययन अनेक प्रविधियों से किया जा सकता है। अतः उपर्युक्त प्रविधि का चयन बहुत कठिन होता है।

3.10 राजनीति विज्ञान शोध में उपकल्पना की भूमिका :

राजनीति विज्ञान के अनुसंधान में उपकल्पनाओं का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। राजनीति विज्ञान की प्रघटनाओं के अध्ययन में विषय क्षेत्र अधिक व्यापक होता है। अतः उपकल्पना का निर्माण शोध क्षेत्र को सीमित कर उसे नियंत्रण योग्य बना देता है। प्राकल्पना सिद्धांत के सृजन का शोध प्रक्रिया में शुरू से लेकर अंत तक एक महत्वपूर्ण आधार होता है। गुडे एवं हॉट का कथन है कि ''अच्छे अनुसंधान में उपकल्पना का निर्माण करना सर्वप्रमुख चरण है।'' यह उपकल्पना शोध को नियंत्रित निर्देशित तथा संचालित करती है। इस संबंध में पी.वी. यंग का कहना है कि उपकल्पना का प्रयोग उन तथ्यों की अंधी खोज व अंधाधुंध संकलन पर नियन्त्रण लगाता है जो बाद में अध्ययन किए जाने वाली समस्या के लिए अप्रासंगिक सिद्ध हों। अतः मार्गदर्शन के लिए उपकल्पना समुद्रों में जहाजों को रास्ता दिखाने वाले प्रकाश स्तंभ के समान है। जो शोधकर्त्ता व राजनीति विज्ञान के विद्वानों को इधर उधर भटकने से बचाता है। राजनीति विज्ञान में उपकल्पना की भूमिका निम्नलिखित है :

1. अध्ययन की दिशा का निर्धारण : राजनीति विज्ञान के शोध में उपकल्पना का महत्वपूर्ण स्थान होता है क्योंकि यह अध्ययन की दिशा में सहायक होती है। अध्ययन में वैज्ञानिकता के लिए आवश्यक है कि अध्ययन की दिशा निश्चित हो। अध्ययन की दिशा से तात्पर्य है कि शोधकर्त्ता अध्ययन क्षेत्र में भटकने से बच जाए उसके पास सही दिशा निर्देश और उद्देश्य हो। उसे पता हो कि आँकड़े तथ्य तथा जानकारियाँ कहां से संचय करनी हैं। इससे उसका अध्ययन क्षेत्र सीमित हो जाता है। वह एक सीमारेखा के अंदर ही अध्ययन करता है तथा अनावश्यक भटकने से बच जाता है, जिससे व्यर्थ का परिश्रम और समय व्यय होने से बच जाता है।

2. समस्या की व्याख्या में सहायक : राजनीति विज्ञान में शोध का पहला चरण समस्या की व्याख्या करना होता है। उपकल्पनाओं के निर्माण में समस्या की ठीक प्रकार से व्याख्या की जा सकती है। साधारणतः समस्या की व्याख्या कारण प्रभाव के रूप में की जाती है। उपकल्पना के माध्यम से अध्ययन समस्या का कारण प्रभाव अथवा कार्यकारण के रूप में

अध्ययन किया जा सकता है। उपकल्पना की प्रमाणिकता की जांच शोध में कार्यकारण के आधार पर की जाती है। इस संबंध में पी.वी. यंग ने विचार दिया है कि यदि अध्ययन विषय के संबंध में उपकल्पनाएं व्यावहारिक हैं तो ये शोध की समस्या को सुनिश्चित, स्पष्ट तथा सीमित रूप में प्रस्तुत करने में सहायता करती हैं।

3. अध्ययन क्षेत्र की सीमितता तथा अध्ययन क्षेत्र के चुनाव में सहायक : उपकल्पना अध्ययन क्षेत्र की सीमितता तथा अध्ययन क्षेत्र के चुनाव में सहायक हैं। राजनीति विज्ञान वैज्ञानिक शोध में उपकल्पना को सीमित बनाता है जिससे अध्ययन क्षेत्र का चुनाव करना आसान हो जाता है। वास्तव में प्रत्येक अध्ययन विषय के बहुत से पहलू हो सकते हैं। यदि शोधकर्त्ता सभी पहलुओं को लेकर अध्ययन कार्य प्रारंभ करता है तो कोई भी पहलू का गहराई से अध्ययन नहीं किया जा सकेगा तथा प्राप्त तथ्य अस्पष्ट, निकृष्ट तथा अनुपयोगी होंगे। अध्ययन की वैज्ञानिकता के लिए आवश्यक है कि उपकल्पना की सहायता से अध्ययन क्षेत्र को सीमित किया जाए। लुण्डबर्ग ने लिखा है, ''उपकल्पना के प्रयोग से अध्ययन क्षेत्र सीमित हो जाता है और शोधकर्त्ता गहराई में जाकर विषय का अध्ययन करने में समर्थ हो सकता है।''

4. मार्गदर्शक के रूप में सहायक : उपकल्पनाएं शोधकर्त्ता की अध्ययन क्षेत्र में मार्गदर्शक के रूप में सहायता करती है। इससे शोधकर्त्ता का ध्यान मुख्य विषय पर ही केंद्रित रहता है। सही मार्गदर्शन मिलने पर शोध के उद्देश्यों को प्राप्त करने में तेजी आ सकती है। जिससे शोधकर्त्ता का मनोबल बढ़ जाता है। इस संबंध में पी.वी. यंग ने लिखा है, ''उपकल्पनाएं शोधकर्त्ता को दृष्टिहीन खोज से बचाती हैं। अर्थात् उपकल्पना एक प्रकार का प्रकाश स्तंभ हैं जो शोधकर्त्ता को दिशा निर्देश देता है तथा उसे व्यर्थ के सूचना संग्रह से रोकता है।''

5. प्रासंगिक एवं उपयोगी तथ्यों के संकलन में सहायक : किसी भी राजनीतिक विज्ञान की घटना या समस्या का अध्ययन करते समय शोधकर्त्ता के सामने अनेक प्रकार के तथ्य आते हैं लेकिन वह सिर्फ प्रासंगिक तथ्यों को ही संकलित करता है। उपकल्पनाएं अध्ययन का उद्देश्य अथवा क्षेत्र तथा दिशा निर्धारित कर देती हैं। इससे शोधकर्त्ता केवल उपयोगी एवं सारगर्भित तथ्यों का ही संकलन करता है। इसके फलस्वरूप संपूर्ण अध्ययन व्यवस्थित और वैज्ञानिक बन जाता है, जिससे उपकल्पना की प्रमाणिकता की जांच आसानी से हो सकती

है। उपरोक्त का तात्पर्य है कि उपकल्पना के आधार पर ही शोधकर्त्ता नियंत्रण में रहकर अध्ययन को वैज्ञानिक बना सकता है। वैज्ञानिक अध्ययन हेतु यह भी आवश्यक होता है कि अध्ययन क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित हो इसलिए जो तथ्य शोध के लिए आवश्यक तथा उपयोगी हैं उन्हें ही संकलित किया जाए। उपकल्पना अध्ययन की समस्या को स्पष्ट सुनिश्चित तथा कारण प्रभाव के क्रम में करने में सहायक होती है। इस प्रकार नियंत्रण में रहकर शोधकर्त्ता विषय एवं कारण प्रभाव संबंधित तथ्यों का ही संचय करता है साथ ही विषय से संबद्ध तथ्य संचित होने से उपकल्पना की प्रमाणिकता को भी सत्यापित किया जा सकता है।

6 तर्कसंगत निष्कर्षों में सहायक : किसी भी शोध का प्रारंभ उपकल्पना सृजन से होता है। इसमें शोध के संबंध में पूर्व कल्पना या पूर्व निष्कर्ष प्रस्तुत किए जाते हैं। इन्हीं उपकल्पना के आधार पर तथ्यों का संचय, वर्गीकरण तथा सारणीकरण किया जाता है और अंत में निष्कर्ष निकालने पर यह देखा जाता है कि पूर्व कल्पना या पूर्व निष्कर्ष सही प्रमाणित होते हैं तो उसे एक सामान्य नियम के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है। इस प्रकार अभिष्ट परिणाम और लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उपकल्पना का निर्माण विषय के गहन अध्ययन के पश्चात सावधानीपूर्वक करना चाहिए।

7. सिद्धांतों के निर्माण में सहायक : किसी भी शोध का अंतिम उद्देश्य सिद्धांतों का निर्माण करना होता है। उपकल्पना सिद्धांत के सृजन में सहायक होती है। यह राजनीति विज्ञान में सिद्धांतों के सृजन में सहायता करती है। वही उपकल्पना व्यावहारिक एवं उपयोगी होती है जो मुख्य विज्ञान तथा सिद्धांत से जुड़ी होती है। उपकल्पना का निर्माण साधारणतः किसी पूर्व स्थापित सिद्धांत के आधार पर होता है। शोध का अंतिम चरण इस उपकल्पना की तथ्यों के आधार पर जांच करना होता है। यदि उपकल्पना सत्य साबित होती है तो उसे सिद्धांत का रूप दे दिया जाता है। असत्य साबित होने पर उस उपकल्पना का त्याग कर नव सिद्धांत की स्थापना की जाती है। कभी–कभी उपकल्पना में थोड़ा सा परिवर्तन अथवा संशोधन कर फिर से सिद्धांत के रूप में स्थापित कर दिया जाता है। उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि अनुसंधान को प्रारंभ से लेकर अंत तक उपकल्पना का विशेष योगदान रहता है। शोध के प्रत्येक चरण में उपकल्पना अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। राजनीति

विज्ञान हो या कोई भी विषय, इनसे संबंधित शोध–कार्य उपकल्पना के इर्द–गिर्द ही घूमते हैं।

3.11 समाज विज्ञानों में सिद्धान्त निर्माण – राजनीति विज्ञान के विशेष सन्दर्भ में

(Theory Building in Social Science with Special Reference to Political Science)

कार्य–उद्देश्य की दृष्टि से सिद्धांत को हम सामान्यीकरणों की वह व्यवस्था कहते हैं जो 'आनुभवाश्रित खोजों' पर आधारित हो या जो व्यावहारिक रूप से परीक्षण के योग्य हो। सिद्धान्त व्यवहार पर आधारित है या उसे आधारित किया जा सकता है। सिद्धान्त इस बात की व्याख्या करता है कि वास्तव में क्या घटित होता है न कि क्या घटित होना चाहिए। कथनों के समूह को सिद्धान्त के योग्य गिना जा सकता है। यदि वे सिद्धान्त परीक्षण के योग्य हों।

मर्टन के अनुसार, ''एक वैज्ञानिक द्वारा अपने निरीक्षणों के आधार पर तर्क वाक्यों के रूप में सुझाई गई तार्किक रूप से परस्पर सम्बन्धित अवधारणाएं ही एक सिद्धान्त का निर्माण करती हैं।''

स्टीफेन एल. वेसबी लिखते हैं कि सिद्धान्त, ''कथनों के उस समूह को कहते हैं जिन्हें या तो नियम या तर्क वाक्य कहा गया है, जो एक दूसरे से सम्बन्धित हैं और व्यवस्था की बदलती अवस्थाओं के अन्तर्गत विभिन्न चरों के मध्य व्यक्त करते हैं।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि :

1. सिद्धान्त का निर्माण तथ्यों से होता है।
2. सिद्धान्त तथ्यों पर आधारित सामान्यीकरण होता है।
3. सिद्धान्त में उपकल्पना एवं कथनों के समूह का सम्मिश्रण भी हो सकता है।
4. सिद्धान्त में विभिन्न चरों के सम्बन्ध को भी व्यक्त किया जा सकता है।
5. सिद्धान्त का निर्माण अनुभवों एवं अनुसंधानों के आधार पर किया जाता है।

तथ्यों और सिद्धान्त का घनिष्ठ सम्बन्ध है। हालाँकि तथ्य उपकल्पनाओं के ही परिणाम हैं, परन्तु कोरी कल्पना पर उनका निर्माण नहीं किया जाता । उपकल्पनाओं के परीक्षण के बाद किसी तथ्य की सत्यता या असत्यता प्रकट होती है। तथ्य सिद्धान्त के

निर्माण, पुनर्निर्माण, उनके स्पष्टीकरण में अत्यधिक सहायक हैं। नए सिद्धान्तों की खोज के लिए मार्गदर्शन का काम करते हैं। तथ्यों का महत्त्व भी इसी में है कि कोई सामाजिक वैज्ञानिक या अनुसंधानकर्त्ता उनका उपयोग करके नए सिद्धान्तों का निर्माण करे एवं पुराने सिद्धान्तों की सत्यापनशीलता का पता लगाए। सामाजिक सिद्धान्त का लाभ यह है कि इसके द्वारा विभिन्न घटनाओं का वर्गीकरण किया जा सकता है, उनमें पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है एवं समानताओं और असमानताओं को प्रकट किया जा सकता है। तथ्यों की स्पष्ट व्याख्या सिद्धान्त द्वारा सुगमतापूर्वक की जा सकती है। सिद्धान्त के आधार पर महत्वपूर्ण भविष्यवाणियाँ की जा सकती हैं।

सिद्धान्त के महत्त्व के बारे में कोई सन्देह नहीं है, लेकिन प्रश्न यह उठता है कि सामाजिक विज्ञानों में सिद्धान्त का निर्माण कैसे किया जा सकता है ? आदर्श रूप में सिद्धान्त कानून या नियमों का बना होता है। सामाजिक विज्ञानों में ऐसे कानून या नियम बहुत कम हैं, हालाँकि उनके विकास के लिए निरन्तर प्रयत्न एव शोध–कार्य किया जा रहा है। सामाजिक सिद्धान्तों में हम जिस सत्य को सिद्ध करते हैं वह सामान्यीकरण के छोटे स्तर पर करते हैं, लेकिन उच्च कोटि के कथनों एवं जटिल सामान्यताओं की सत्यापनशीलता को आसानी से सिद्ध नहीं किया जा सकता। जो सिद्धान्त केवल नियमों पर आधारित है, वह स्थायी होगा, यदि सिद्धान्त में ऐसे नियम भी विद्यमान हैं तो भी हमें अतिरिक्त कठिनाइयों का सामना तो करना पड़ेगा। कारण यह है कि सामाजिक विज्ञानों में सामान्यीकरण करना बहुत कठिन होता है। सामाजिक विज्ञानों का सम्बन्ध मनुष्य की भावनाओं, आवेगों, मनोवृत्तियों, व्यवहारों, आदतों एवं विभिन्न वातावरण से है, अतः हमें सामान्यीकरण की ओर बढ़ने में बड़ी कठिनाई आती है।

नियमों के अभाव में सामाजिक सिद्धान्तों में मुख्यतः तर्क वाक्यों को सम्मिलित किया जाता है। सामाजिक विज्ञानों में सिद्धान्त के विकास के लिए तर्क वाक्यों की सूची तैयार करना लाभप्रद है। इस सूची को देखकर यह पता लगाया जा सकता है कि विषय या सिद्धान्त के कौन से क्षेत्रों का सिद्धान्त निर्माण के पूर्व, परीक्षण करना आवश्यक है। इन तर्क वाक्यों या प्रस्ताव को हम सिद्धान्त की श्रेणी में नहीं रख सकते क्योंकि ये तर्क वाक्य एक दूसरे से सम्बन्धित नहीं हैं।

सामाजिक विज्ञानों के सिद्धान्तों में पूर्व कल्पनाएँ भी होती हैं जिन्हें अस्थाई रूप से प्रमाणित माना जाता है। इन्हें अस्थाई रूप से तभी प्रमाणित स्वीकार करेंगे जब ये स्पष्ट हों। इन पूर्वकल्पनाओं की भी सीमाएँ होती हैं। कोई भी सिद्धान्त कुछ सीमित पूर्व–कल्पनाओं पर निर्भर होता है। ये पूर्वकल्पनाएँ सिद्धान्त के निर्माण में वैसे ही सहायक होती हैं जैसे कि गणित में कुछ स्वयंसिद्ध सिद्धान्त। इनका निर्णय इनके परिणामों से ही किया जाता है। सामाजिक वैज्ञानिकों में स्वयंसिद्ध पूर्वकल्पनाओं के बारे में काफी विवाद है। कुछ का मत है कि बिना प्रयोग–सिद्ध आधार के स्वयंसिद्ध पूर्व – कल्पनाओं को स्वीकार नहीं किया जा सकता। उनका मत है कि वे उन्हीं पूर्व कल्पनाओं को स्वीकार करेंगे जिन्हें आगमनात्मक रूप से स्थापित किया गया है। इस मत को भी यदि हम स्वीकार कर लें तो भी समस्या यह बनी रहेगी कि आगमनात्मक तर्क विचार के बिना, पूर्वकल्पनाओं को किस प्रकार आगे बढ़ाएँगे, अर्थात् पूर्व–कल्पनाओं की आगमनात्मक तर्क विचार में आवश्यकता रहेगी। तथ्यों के संकलन के पहले भी कुछ सीमा तक सिद्धान्त का निर्माण संभव है। सामाजिक वैज्ञानिकों में काफी मतभेद और विवाद के बावजूद भी सिद्धान्त निर्माण में कुछ महत्त्वपूर्ण प्रक्रियाओं के उपयोग के सम्बन्ध में पर्याप्त एकता है। प्रायः सभी सामाजिक विज्ञानों के सिद्धान्तों में वैज्ञानिक प्रणाली का प्रयोग किया जाने लगा है। अतः समाज विज्ञानों ने अपने अध्ययन में दार्शनिक सामान्यीकरणों के स्थान पर वैज्ञानिक तर्क प्रणाली पर बल देना शुरू कर दिया है। वैज्ञानिक अध्ययन प्रणाली में एक निश्चित प्रणाली को अपनाया जाता है। वैज्ञानिक प्रणाली के विभिन्न तत्त्व हैं। वे ये हैं–अवलोकन, आगमनात्मक, सामान्यीकरण, स्पष्टीकरण, निगमनात्मक प्रक्रिया, जाँच एवं शुद्धीकरण।

3.11.1 राजनीति विज्ञान के सन्दर्भ में सिद्धान्त–निर्माण

(Theory Building with Reference to Political Science)

1. अवधारणा–निर्माण (Concept Formation) : प्राकृतिक और सामाजिक दोनों प्रकार के विज्ञानों में अवधारणा का प्रयोग किया जाता है। यह सिद्धान्त–निर्माण का प्रथम और सबसे महत्त्वपूर्ण भाग है। तथ्यों का निर्माण भी अवधारणाओं द्वारा किया जाता है। तथ्य और अवधारणा एक दूसरे से भिन्न हैं। अवधारणा तथ्यों पर आधारित होती हैं जो किसी घटना क्रम को प्रकट करती है। अवधारणा सिद्धान्त का एक अनिवार्य भाग है। प्रयोग में लाई गई अवधारणाओं से ही सिद्धान्त का निर्माण होता है। यद्यपि सिद्धान्त पर्याप्त विकसित

अवधारणाओं पर आधारित होने चाहिएँ फिर भी अवधारणाओं का विकास एवं उनकी परिभाषा सदैव के लिए एक समान नहीं रहती। अवधारणाओं का विकास होता रहता है। उनकी प्रकृति एवं विशेषताओं में परिवर्तन आ सकता है। इसके अतिरिक्त अनुसंधानकर्त्ता जिनका वर्णन या विश्लेषण करना चाहता हैं वे सभी बातें अवधारणा में आनी असंभव हैं फिर भी अवधारणाओं और परिभाषाओं को इस अर्थ में स्थिर किया जाना चाहिए कि वे सिद्धान्त में अचलन और निश्चित रहें।

अवधारणाओं का एक ही अर्थ नहीं लगाया जाता। विभिन्न विद्वान उनकी व्याख्या विभिन्न अर्थों में करते हैं। इनका कारण यह है कि वे किसी परिभाषा या परिभाषाओं के समूह में अपरिभाषित हैं, लेकिन उस अवधारणा को अच्छा समझा जाता है जिसमें एकतरफा निर्णय और विषय–सम्बद्धता दोनों का सम्मिश्रण हो, सामाजिक विज्ञानों में अनुसन्धान कार्यों के लिए नई अवधारणाओं का विकास नहीं किया गया है। हाइनमेन ने यह आरोप लगाया है कि साधारण अनिच्छा के कारण नवीन शब्दों का प्रयोग समाज विज्ञानों में नहीं किया जाता है। नई शब्दावली को विकसित करने की अनिच्छुकता के कारण, अवधारणाएँ दिन–प्रतिदिन के राजनीतिक संसार से उधार ली जाती हैं। अवधारणाओं द्वारा इस तरह से प्राप्त अर्थों के कारण वे उच्चकोटि के अनुसन्धान कार्य में बाधा पहुँचाते हैं।

स्टीफेन एल. वेसबी इसको स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि हम जो शब्द दिन–प्रतिदिन के राजनीतिक संसार से ग्रहण करते हैं, उसके कारण कई समस्याएँ पैदा हो जाती हैं। उदाहरण के लिए हम 'दबाव समूह' का प्रयोग अधिक करते हैं जो प्रजातन्त्रीय व्यवस्था में उचित नहीं है क्योंकि व्यवस्थापन निर्माताओं से यह आशा की जाती है कि बिना दबाव या डर के निर्णय लेंगे। इसी प्रकार 'हित समूह' शब्द के साथ वही समस्या है क्योंकि 'हित' का अर्थ कई लोग 'आत्म हित' से लगाते हैं। राबर्ट ए. डहाल का कथन है कि शक्ति, प्रभाव और सत्ता आदि अवधारणाओं के संबंध में गलत अर्थ लगाए जाते हैं।

उपर्युक्त कठिनाइयों ने अवधारणाओं के स्पष्टीकरण की आवश्यकताओं को और भी बढ़ा दिया है। अतः सिद्धांत निर्माण में इनके सही एवं उपयुक्त अर्थ के लिए अवधारणाओं के ढांचे में और किसी प्रणाली को काम में लाना होगा।

2. संक्रियाकरण (Operationalization) : अवधारणाओं की आवश्यकता, आनुभवाश्रित अनुसन्धानों में रहती है, अतः इनके विकास के लिए जिस विधि को अपनाया जाता है उसे

संक्रियाकरण की विधि कहते हैं। हम अवधारणाओं को कहां तक काम में ला सकते हैं यह इस बात पर निर्भर है कि वे कहां तक ठोस हैं अर्थात् संक्रियाकरण विधि द्वारा अवधारणाओं को कार्य या क्षेत्र के रूप में परिभाषित किया जाता है कि जिससे उनमें ठोसपन आ सके। किसी दी हुई धारणा का संक्रियाकरण करने के लिए कई तरीके हो सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि हम अवधारणाओं का अधिक स्पष्टीकरण कर सकते हैं, उनके क्षेत्र को भली भांति समझ सकते हैं तथा उनके उद्देश्यों के बारे में कोई सन्देह नहीं रहता। इसके अतिरिक्त हम 'व्यक्ति प्रधानतावाद' की दूषित बीमारी से मुक्ति पा सकते हैं।

संक्रियाकरण की प्रक्रिया के दौरान यह समस्या आती है कि क्या हमारी अवधारणा अर्थपूर्ण एवं अव्यावसायिक हैं। अतः प्रमाणिकता की समस्या अवधारणाओं की वास्तविक समस्या है। इसका कारण यह है कि हम अवधारणा में न अधिक शामिल करना चाहते हैं न कम जितना कि हम समझते हैं। इसके फलस्वरूप हम अवधारणा का क्षेत्र सीमित कर देते हैं। उदाहरण के लिए शक्ति एक सम्बन्धी अवधारणा है न कि व्यक्तिगत विशेषता। इसका प्रयोग दूसरों के सम्बन्ध में किया जाता है। शक्ति सम्बन्धी होने के साथ स्थितीय भी है। कुछ लोग शक्ति का प्रयोग अधिक करते हैं तो कुछ कम। इसीलिए हम कुछ को शक्तिशाली प्रशासक कहते हैं तो कुछ को कमजोर प्रशासक कहते हैं। यदि हम कहें कि शक्ति 'स्थितीय' और 'सम्बन्धी' है तो इससे भी अवधारणा की प्रत्यक्ष परिभाषा नहीं होती। लासवेल और केपलान शक्ति को निर्णय लेने के मामलों में 'प्रभावशाली हिस्सेदारी' समझते हैं। यदि हिस्सेदारी प्रभावशील नहीं है तो हम इसे 'शक्ति के प्रति चेष्टा' कहेंगे।

(3) चर (Variables) : अवधारणाओं में चरों की चर्चा होती है। किसी दिए गए एक विमा के अन्तर्गत एक विभिन्न चर में कम से कम दो माप होते हैं। मुख्यतः चर दो प्रकार के होते हैं–(1) सतत् चर जिन्हे छोटे से छोटे रूप में उपविभाजित किया जा सकता है जैसे ऊँचाई, तापमान को दशमलव तक, (2) खण्डित चर जिनके अन्तर्गत बारीकी के साथ उपविभाजन संभव नहीं है अर्थात् पूरी इकाई ही उपयुक्त रहती है जैसे व्यक्ति। चरों का हम स्वतंत्र, निर्भर एवं बाधक के रूप में वर्गीकरण कर सकते हैं। कोई चर एक समय में निर्भर हो सकता है तो दूसरी बार स्वतंत्र। स्वतन्त्र चर वह है जो दूसरे पर निर्भर चर को प्रभावित करता है। मतदान व्यवहार अध्ययन में उदाहरण के लिए मतदान आवृत्ति पर निर्भर चर है और शिक्षा, आय व पेशा स्वतंत्र है। इन दो चरों–निर्भर और स्वतंत्र, के बीच सम्बन्ध

को बाधक चर प्रभावित कर सकता है। उदाहरणार्थ शिक्षा और मत में राजनीतिक विचार–विमर्श की मात्रा एक बाधक चर हो सकती है। शिक्षा का स्तर मतदान की आवृत्ति से सम्बन्धित है। अतः उच्च शिक्षित जिन्हें राजनीति में अधिक दिलचस्पी है, कम पढ़े–लिखे लोगों की तुलना में अधिक मत व्यक्त करते हैं। अब हम थोड़ी देर के लिए एक चर को नियंत्रित कर स्थिर कर दें, जो संभवतया अटपटा लग सकता है, तो दूसरे चरों के बीच सम्बन्ध स्थापित कर उनका निरीक्षण कर सकते हैं। उदाहरण के लिए आय, जिसे हमने बाधक चर माना है, को स्थिर कर हम शिक्षा और मत के बीच सम्बन्ध का परीक्षण कर सकते हैं। इस प्रकार चरों के द्वारा हम किसी व्यक्ति की राजनीति में अभिरुचि का पता लगा सकते हैं कि उसमें कितनी तीव्रता है या निष्क्रियता।

(4) प्रकार–विज्ञान (Typologies) : अवधारणाओं का प्रयोग समूहों में किया जाता है। इनका विकास शब्दों की परिभाषा से हो सकता है। इन पदों या शब्दों के अधिकाधिक विकसित समूहों को हम प्रकार–विज्ञान की संज्ञा देते हैं। प्रकार–विज्ञान कोई सिद्धान्त नहीं है, परन्तु इसके द्वार प्रदत्त श्रेणी–समूह सिद्धान्तों के विकास का सहायक प्रदाय है जो बड़ी श्रेणियों के समूहों द्वारा अनुसन्धान के कार्य को आगे बढ़ाते हैं। प्रकार–विज्ञान यह नहीं बतलाता है कि संसार में क्या घटित हो रहा है बल्कि यह तार्किक रचना है जो यह बतलाती है कि किस प्रकार श्रेणियों के समूह अस्तित्व में हैं।

प्रकार विज्ञान के निर्माण के नियम (Rules for constructing Typologies) :

(क) प्रत्येक श्रेणी आन्तरिक रूप से सजातीय होनी चाहिए।

(ख) वे एक दूसरे से पृथक् होनी चाहिएँ।

(ग) श्रेणियों के पूर्ण समूह में वे पद आ जाने चाहिएँ जिनका अध्ययन किया जाना है।

उदाहरण के लिए उदारवादी और अनुदारवादी को चार श्रेणियों के प्रकार में बाँटा जा सकता है जिसमें रेडिकल और प्रतिक्रियावादी को सम्मिलित किया जाता है। अब हमारे पास उदारवादी, अनुदारवादी, रेडिकल और प्रतिक्रियावादी चार श्रेणियाँ हो गई। एक उदारवादी सरकार की चालू नीतियों से सन्तुष्ट है, परन्तु सरकार की नीतियों में परिवर्तन की आवश्यकता में भी विकास करता है। अनुदारवादी भी सरकार की चालू नीतियों से सन्तुष्ट है,परन्तु वह उन नीतियों में परिवर्तन के लिए अनिच्छुक है। रेडिकल और

प्रतिक्रियावादी इस प्रणाली से छुटकारा चाहते हैं, लेकिन अन्तर यह है कि दोनों अब कैसी व्यवस्था चाहते हैं। रेडिकल उस व्यवस्था को पसन्द करता है जिसका पहले अनुभव न हुआ हो जबकि प्रतिक्रियावादी वास्तविक या पूर्व कल्पित व्यवस्था को चाहता है। इस प्रकार हम इन चार दलों की मनोवृत्तियों को परिवर्तन या नवीनता के बारे में जान सकते हैं।

5. उपकल्पनाएँ (Hypothesis) : अवधारणाओं के विकास के पश्चात् सिद्धान्त–निर्माण में उपकल्पनाओं का विकास किया जाता है। उपकल्पना एक ऐसा विचार है जिसकी सत्यता आँकने के लिए उसको परीक्षण हेतु रखा जाता है। उपकल्पनाओं को प्रायः किसी सिद्धान्त या प्रतिरूप से निगमनात्मक पद्धति द्वारा प्राप्त किया जाता है। इन्हें विद्यमान अनुसंधान अध्ययनों से भी लिया जा सकता है। उपकल्पनाओं के सोत महान् दार्शनिकों के ग्रन्थ, सामान्य संस्कृति, सादृश्य, व्यक्तिगत अनुभव एवं वैज्ञानिक सिद्धान्त हो सकते हैं। जो उपकल्पनाएँ 'परम्परागत बुद्धि, स्वीकृत सामान्यीकरणों' पर निर्भर हैं वे प्रायः लाभप्रद खोजों को प्रदान करती हैं । रॉबर्ट एगर, स्टेन्ले पर्ल और मार्शल गोल्डनस्टीन के मतानुसार यह पाया गया है कि उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति कम पढ़े–लिखे लोगों की अपेक्षा राजनीति के बारे में कम चिड़चिड़े स्वभाव वाले होते हैं। एक ऐसी मान्यता है कि उपकल्पनाओं द्वारा अनुसन्धान को शुरू किया जाना चाहिए और यह विचार भी प्रचलित है कि अवधारणाएँ तथ्यों के संकलन में मार्गदर्शन करती है। स्टीफेन एल. वेसबी का मत है कि अनुसन्धान को विशेषतः अन्वेषणात्मक अवस्था में बिना सिद्धान्त और उपकल्पनाओं के संचालित किया जा सकता है। जब प्रारम्भ में ही अनुसन्धान बिना उपकल्पनाओं के संचालित किया जाता है तो यह आशा की जाती है कि उनका विकास बाद में किया जाएगा ताकि उनका परीक्षण भी उनके विकास के पश्चात किया जा सके।

उपकल्पनाओं को किसी भी अवस्था में विकसित किया जाए, परन्तु उनका एक साथ ही परीक्षण नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार कोई अनुसन्धान शुरू करता है तो कुछ तत्त्वों को अनुसंधानकर्त्ता स्वीकार करता है और कुछ को अस्वीकार करता है, उसी प्रकार कुछ उपकल्पनाओं द्वारा अनुसन्धान का संचालन होता है और कुछ ऐसी प्रकृति की होती हैं कि जिन्हें स्थान नहीं दिया जा सकता। प्रारम्भिक उपकल्पनाओं को इसलिए चुना जाता है कि वे अन्य प्राप्यों की अपेक्षा अधिक अर्थपूर्ण और उपयोगी हैं। उपकल्पना की परीक्षा विविध शर्तों के अन्तर्गत नहीं की जा सकती अर्थात् व्यवस्था की समस्त दशाओं में इसका

परीक्षण करना संभव नहीं है। कारण यह है कि सभी अवस्थाओं या शर्तों को नियंत्रित नहीं किया जा सकता। सभी अवस्थाओं के लिए सामान्यीकरण का विकास भी संभव नहीं है।

अनुसन्धानों में उपकल्पनाओं के विभिन्न प्रकारों को काम में लाया जाता है। मुख्यतः दो भागों में ही इनका विभाजन किया गया है––वर्णनात्मक उपकल्पना जिसके अन्तर्गत चर के प्रसार या घटित से सम्बन्धित प्रश्न रखे जाते हैं और सम्बन्धात्मक उपकल्पनाओं के कार्य और कारण के सम्बन्ध की ओर संकेत किया जाता है। कई बार निषेधात्मक या ऋणात्मक आधार पर उपकल्पना का निर्माण किया जाता है। जो उपकल्पना धनात्मक तर्क के विरुद्ध है उसे 'निराकरणीय उपकल्पना' कहते हैं।

6. निगमन और आगमन (Deduction and Induction) : निगमन और आगमन सिद्धान्त–निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। निगमन, सिद्धान्त से उपकल्पना–परीक्षण के लिए प्रेरित करने के अतिरिक्त यह भी बतलाता है कि सिद्धान्त के भाग आन्तरिक रूप से एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं अथवा नहीं। सिद्धान्त की प्रमाणिकता के लिए तर्क वाक्यों का आनुभवाश्रित परीक्षण होता है और तर्क वाक्यों की अनुरूपता के लिंए 'तार्किक परीक्षण' होता है। लेकिन आनुभवाश्रित परीक्षण पर्याप्त नहीं है। निगमन से एक कठिनाई अवश्य उत्पन्न होती है और वह यह कि जिस तर्क का इसमें प्रयोग होता है उसका अर्थ निश्चितवाद या निर्धारण हो सकता है, लेकिन यह कठिनाई सभी सिद्धान्तों के लिए सामान्य है। निगमन–के अतिरिक्त आगमन का सिद्धान्त–निर्माण में मुख्य कार्य यह है कि सामान्यीकरणों का, जो उपकल्पना–परीक्षण पर आधारित है, तथ्यों के द्वारा समर्थन करना। इस प्रकार आगमन और निगमन सिद्धान्त–निर्माण में घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं। इनके द्वारा सिद्धान्त का निर्माण, सिद्धान्त का.परीक्षण और सिद्धान्त में संशोधन किया जा सकता है।

सिद्धान्त के गुण (Qualities of Theory) : एक सिद्धान्त के गुण के समान्यतया दो मापदण्ड हैं – सिद्धान्त का सौन्दर्य और सिद्धान्त में मितव्ययता अर्थात् सिद्धान्त के आकार एवं पूर्णता के संबंध में। दूसरे मापदण्ड के अनुसार सिद्धान्त अच्छा है जिसमें कम सामान्यीकरण हो। इसके अतिरिक्त सिद्धान्त संक्षिप्त और स्पष्ट भाषा में होना चाहिए ताकि समझने और उपयोग में कोई कठिनाई न हो। सिद्धान्त के भाग एक दूसरे से अच्छी तरह से जुड़े होने

चाहिएँ। इन गुणों के अलावा सिद्धान्त का सबसे बड़ा गुण भविष्यवाणी करने की क्षमता होनी चाहिए।

प्रतिरूप (Models) : अपरीक्षित सिद्धान्तों को प्रतिरूप कहा जाता है। प्रतिरूप किसी वस्तु का सांकेतिक प्रतिनिधित्व है जिसका उद्देश्य उस वस्तु के गुणों को या विशेषताओं को दर्शाना है। प्रतिरूप अवधारणाओं की तरह स्वेच्छाचारी नहीं हो सकता। सिद्धान्त और प्रतिरूप में यह अन्तर है कि सिद्धान्त में भविष्यवाणी एवं विवेचना करने की क्षमता है जबकि प्रतिरूप केवल भविष्यवाणी कर सकता है। प्रतिरूप हमें नई सामग्री प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है जिसको अभी तक ढूँढा नहीं गया है एवं अन्य संबंधों की खोज में सहायता देता है।

सामाजिक वैज्ञानिकों द्वारा प्रतिरूपों के विकास के लिए बहुत प्रयत्न किया गया है। इन प्रतिरूपों की सिद्धान्त–निर्माण की प्रक्रिया में उपस्थिति हाल ही की घटना है। राजनीतिक वैज्ञानिक औपचारिक प्रतिरूपों का निगमनात्मक तरीके से विकास कर रहे हैं।

अतः स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि समाज विज्ञानों विशेषकर राजनीति विज्ञान में सिद्धान्त निर्माण में अवधारणा, संक्रियाकरण, चर, प्रकार–विज्ञान, उपकल्पनाएं, निगमन व आगमन इत्यादि महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

3.12 अपनी प्रगति जांचिए :

(क) उपकल्पना को परिभाषित कीजिए।

(ख) उपकल्पना के मुख्य प्रकार बताइए।

(ग) उपकल्पना की प्रकृति का वर्णन कीजिए।

(घ) मान्यताओं व उपकल्पना में अंतर बताइए।

(ड़) एक श्रेष्ठ उपकल्पना की कोई तीन विशेषताएँ बताओ।

(च) उपकल्पना निर्माण में आने वाली कठिनाईयों का वर्णन कीजिए।

(छ) राजनीति विज्ञान अनुसंधान में उपकल्पना क्यों महत्त्वपूर्ण है?

(ज) सिद्धांत किसे कहते हैं।

(झ) अवधारणा निर्माण को परिभाषित कीजिए।

(ञ) चर को परिभाषित करते हुए इसके प्रकार बताइए।

(ट) सिद्धांत के गुणों का वर्णन कीजिए।

(ठ) सामाजिक विज्ञानों में सिद्धांत निर्माण की भूमिका का वर्णन कीजिए।

3.13 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर :

(क) उपकल्पना एक समस्या का संभावित उत्तर है। यह वह प्रस्तावना है जिसकी उपयुक्तता की परीक्षा की जा सकती है।

(ख) आमतौर पर वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित उपकल्पना चार प्रकार की होती है :

–प्रश्नसूचक उपकल्पना

–निर्देश सूचक उपकल्पना

–अनिर्देशात्मक उपकल्पना

–घोषणात्मक उपकल्पना

(ग) उपकल्पना की प्रकृति :

–स्पष्ट व विशिष्ट होती है।

–उपलब्ध प्रविधियों से संबंधित होती है।

(घ) मान्यताएँ : किसी विशेष परिस्थिति में मान ली गई स्थितियाँ होती है जो हमारे तर्कपूर्ण वैज्ञानिक निष्कर्षों को प्राप्त करने में सहायक हैं।

उपकल्पना : यह भविष्य की ओर उन्मुख एक तर्कपूर्ण वाक्य है जिसकी वैधता की परीक्षा की जा सकती है। यह सत्य भी सिद्ध हो सकती है और असत्य भी।

(ड़) उपकल्पना की विशेषताएँ :

–स्पष्ट निश्चित व जाँच योग्य

–तथ्यों की उपलब्धता पर आधारित

–सिद्धांतों से संबधित

(च) उपकल्पना निर्माण में कठिनाईयाँ

–सैद्धांतिक संदर्भ की अनुपस्थिति

–सैद्धांतिक संदर्भ के आवश्यक ज्ञान का अभाव

–उपलब्ध शोध विधियों के साथ पर्याप्त जानकारी का अभाव

(छ) राजनीति विज्ञान में अनुसंधान की महत्ता :

–अध्ययन की दिशा का निर्धारण

–प्रासंगिक तथ्यों के संकलन में सहायक

–तर्कसंगत निष्कर्षों में सहायक

(ज) सिद्धांत एक विश्लेषणात्मक व्यवस्था है। यह अंतः संबधित प्राक्कथनों की एक संयोजना प्रस्तुत करता है।

(झ) तथ्यों का निर्माण अवधाणाओं द्वारा किया जाता है, ये वे शब्द या संकेत होते हैं जो सिद्धांत को शब्दावली प्रदान करते हुए उनकी विषय–वस्तु बतलाते हैं।

(ञ) चर वह गुण है, जिसके विभिन्न मूल्य हो सकते हैं। यह किसी घटना, क्रिया–प्रक्रिया को, जिसका अध्ययन किया जा रहा है, प्रभावित करता है मुख्यतः चर दो प्रकार के होते हैः

(1) सतत् चर

(2) खण्डित चर

(ट) सिद्धांतों के गुणों के मापदण्ड :

–सिद्धांतों का सौन्दर्य

–सिद्धान्त की पूर्णता के संबंध में मितव्ययता

(ठ) सामाजिक विज्ञानों विशेषतः राजनीति विज्ञान के संदर्भ में सिद्धांत निर्माण की प्रक्रिया में अवधारणा निर्माण, संक्रियाकरण, चर, प्रकार विज्ञान उपकल्पनाएं व आगमन–निगमन की प्रक्रिया निहित होती है।

3.14 सारांश :

अतः स्पष्ट तौर पर कहा जा सकता है कि किसी भी सामाजिक शोध के यथार्थ व वैज्ञानिक अध्ययन में शोधकर्त्ता उपकल्पना के निर्माण के बिना आगे नहीं बढ़ सकता। चूँकि, उपकल्पना शोध की समस्या के लिए सुझाया गया वह उत्तर है जिसका शोध के दौरान परीक्षण किया जाता है। सिद्धान्त व उपकल्पना का आपस में घनिष्ठ संबंध होता है। उपकल्पनाओं का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत सिद्धान्त है। प्रत्येक सिद्धान्त के निगमन से अनेक उपकल्पनाएं बनती हैं जिनका सत्यापन करना होता है जो उपकल्पनाएं सत्य सिद्ध होती हैं वे सिद्धान्त का रूप ले लेती हैं। राजनीति विज्ञान के अनुसंधान में भी उपकल्पनाओं का निर्माण अध्ययन क्षेत्र को सीमित कर उसे नियंत्रण योग्य बना देता है। उपकल्पना सिद्धान्त के सृजन का शोध प्रक्रिया में शुरू से लेकर अंत तक महत्वपूर्ण आधार होता है।

3.15 मुख्य शब्दावली :

- **उपकल्पना :** यह दो शब्दों Hypo+thesis का सम्मिलित रूप है। Hypo का अर्थ है संभावित व Thesis का अर्थ है कथन। अतः Hypothesis वह संभावित कथन है जो समस्या का समाधान सुझाता है।
- **सामान्य संस्कृति :** यह सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, सांस्कृतिक चिहन् व सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन का सम्मिलित रूप है।
- **सैद्धान्तिक आधार** : किसी विषय वस्तु तथा तथ्य को प्रमाणिकता के आधार पर सिद्ध करना ही सैद्धांतिक आधार है।
- **संक्रियाकरण :** अवधारणाओं की आवश्यकता, आनुभाविक अनुसंधानों में रहती है, अतः इनके विकास के लिए जिस विधि को अपनाया जाता है, उसे संक्रियाकरण कहते हैं।
- **प्रकार विज्ञान :** पदों या शब्दों के अधिकाधिक विकसित समूहों को प्रकार विज्ञान कहा जाता है।

3.16 अभ्यास हेतु प्रश्न :

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर दीजिए :

(1) शोध में उपकल्पना की आवश्यकता क्यों हैं ?

(2) उपकल्पना की विशेषताओं का वर्णन करो।

(3) उपकल्पना की प्रकृति के मुख्य कारकों को समझाओ।

(4) मान्यताएं किसे कहते हैं?

(5) उपकल्पना के स्रोतों का वर्णन करो।

(6) तथ्य व सिद्धांत में संबंध बताओ।

(7) संक्रियाकरण को परिभाषित करो।

(8) प्रकार–विज्ञान के निर्माण के नियम बताओ।

(9) निगमन–आगमन तर्क की सिद्धांत निर्माण में भूमिका का वर्णन करो।

(10) प्रतिरूप को परिभाषित करो।

(11) सिद्धांत निर्माण की अवस्थाओं का वर्णन करो।

(12) सामाजिक विज्ञान में सिद्धांत की भूमिका का वर्णन करो।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तारपूर्वक उत्तर दीजिए :

(1) उपकल्पना को परिमाणित करते हुए इसकी प्रकृति का विस्तारपूर्वक वर्णन करो।

(2) एक श्रेष्ठ उपकल्पना की विशेषताओं का वर्णन करो।

(3) उपकल्पना के विभिन्न स्रोतों का वर्णन करते हुए इसका सामाजिक शोध में महत्व का वर्णन करो।

(4) राजनीति अनुसंधान में उपकल्पना की भूमिका का विस्तारपूर्वक वर्णन करो।

(5) सिद्धांत निर्माण की प्रक्रिया का विस्तारपूर्वक वर्णन करो।

(6) सामाजिक विज्ञानों विशेषतः राजनीति विज्ञान में सिद्धांत निर्माण की भूमिका का वर्णन करो।

3.17. आप ये भी पढ़ सकते हैं :

- अर्ल बैबी, ''द प्रक्टिस ऑफ सोशल रिसर्च'', (थ्रटियथ एडिशन), वैड्सवर्थ पब्लिशिंग कम्पनी, न्यूयार्क, 2012
- डी.के. भट्टाचार्य, ''रिसर्च मैथ्डोलॉजी'', एक्सल बुक्स, न्यू दिल्ली, 2005
- सी.आर. कोठारी, ''रिसर्च मैथ्डोलॉजी : मैथड्स एण्ड टैक्निक्स'', (सैकिण्ड रिवाइज्ड एडिसन), न्यू एज इंटरनेशनल पब्लिशर्स (पी. लिमिटेड), न्यू दिल्ली, 2004
- राबर्ट बी.बर्नस, ''इंट्रोडूक्सन टू रिसर्च मैथड्स'', (फोर्थ एडिसन), सेज पब्लिकेशन्स, लंदन, 2000
- एस. सरनताकोस, ''सोशल रिसर्च'', (सैकिण्ड एडिसन), मैकमिलन प्रेस, लंदन, 1998
- एच.एल. मैनहिम, ''सोशलोजिकल रिसर्च'', दा डोरसे प्रेस, इलिनोइस, 1977
- रसेल एल. एकॉफ, ''डिजाइन ऑफ सोशल रिसर्च'', यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो, 1960
- राम आहूजा, ''सामाजिक अनुसंधान'', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2010

***

इकाई–4 शोध समस्या, शोध प्रारूप व वैयक्तिक अध्ययन

इकाई की रूपरेखा :

4.0 परिचय

4.1 अधिगमन उद्देश्य

4.2 संरचना

4.3 शोध समस्या

- 4.3.1 शोध समस्या का चयन
- 4.3.2 शोध समस्या के महत्त्वपूर्ण तत्त्व
- 4.3.3 शोध समस्या चयन के आधार
- 4.3.4 शोध समस्या के स्रोत
- 4.3.5 अपनी प्रगति जांचिए
- 4.3.6 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

4.4 शोध प्रारूप अर्थात् अनुसंधान अभिकल्प

- 4.4.1. अनुसंधान अभिकल्प : अर्थ एवं परिभाषा
- 4.4.2. शोध अभिकल्प की विशेषताएँ
- 4.4.3. शोध–प्रारूप का महत्त्व या आवश्यकता
- 4.4.4. एक अच्छे अनुसंधान अभिकल्प की विशेषताएँ
- 4.4.5. शोध–प्ररचना के प्रकार
- 4.4.6. अन्वेषणात्मक अथवा निरूपणात्मक शोध प्ररचना
- 4.4.7. वर्णनात्मक अनुसंधान प्ररचना
- 4.4.8. निदानात्मक शोध प्ररचना
- 4.4.9. प्रयोगात्मक अनुसंधान प्ररचना
- 4.4.10. शोध–अभिकल्प का निर्माण
- 4.4.11. शोध–अभिकल्प की विषय–वस्तु
- 4.4.12. अपनी प्रगति जांचिए
- 4.4.13. अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

4.5 वैयक्तिक अध्ययन

4.5.1. वैयक्तिक अध्ययन की विशेषताएँ और सिद्धान्त

4.5.2. वैयक्तिक अध्ययन के उद्देश्य

4.5.3. वैयक्तिक अध्ययनों के प्रकार

4.5.4. वैयक्तिक अध्ययन के लिए आधार सामग्री संग्रह करने के स्रोत

4.5.5. वैयक्तिक अध्ययन का नियोजन

4.5.6. वैयक्तिक अध्ययन के लाभ

4.5.7. वैयक्तिक अध्ययनों की आलोचनाएँ

4.5.8. अपनी प्रगति जांचिए

4.5.9. अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

4.6 सारांश

4.7 मुख्य शब्दावली

4.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

4.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

4.0. परिचय :

सामाजिक विज्ञान में अनेक प्रकार की अनुसंधान समस्याओं की भरमार होती है। इसलिए शोधकर्त्ता के लिए उपयुक्त शोध समस्या का चयन एवं उसका प्रतिपादन अनुसंधान के सफल संचालन के लिए आवश्यक है। इसके लिए शोधकर्त्ता को अनुसंधान समस्या की संपूर्ण चरण विधि का पता होना जरूरी है। जब तक शोधकर्त्ता सही समस्या का चुनाव नहीं कर लेता तब तक वह इस बात से अनजान रहता है कि उसे क्या करना है और किन प्रश्नों को खोजना है। अनुसंधान अर्थात् शोध को क्रमबद्ध एवं प्रभावपूर्ण ढंग से समय, कार्य एवं लागत के न्यूनतम प्रयासों के साथ संचालित करने के लिए अनुसंधान अभिकल्प का निर्माण करना भी अति आवश्यक होता है। अनुसंधान अभिकल्प शोधकर्त्ता को पूरे अध्ययन के विस्तृत चित्रण से अवगत करवाने के साथ–साथ शोध अध्ययन मार्ग से हटने से बचाता है। वैयक्तिक अध्ययन भी एक तरह से एक अनुसंधान अभिकल्प ही है जिसमें आमतौर पर आधार सामग्री का स्रोत चयन करने के लिए गुणात्मक विधि का प्रयोग होता है। यह सम्पूर्ण विवरण प्रस्तुत करता है जो अध्ययन के अन्तर्गत मामले में अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है। जब मामले को विकसित करने में ध्यान केंद्रित किया जाता है तब इसे व्यक्ति वृत्त कहा जाता है। इस इकाई के अन्तर्गत शोध समस्या का चयन एवं निरूपण अनुसंधान अभिकल्प व वैयक्तिक अध्ययन का विस्तृत वर्णन किया गया है।

4.1. अधिगमन उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप निम्नलिखित उद्देश्यों को समझ पाएँगे :

- शोध समस्या का चयन
- शोध समस्या का निरूपण
- अनुसंधान अभिकल्प का अर्थ व विशेषताएँ
- अनुसंधान अभिकल्प का महत्व
- अनुसंधान अभिकल्प की शोध में भूमिका
- अनुसंधान अभिकल्प के प्रकार
- वैयक्तिक अध्ययन के बारे में जान पाएंगे।

4.2. संरचना :

प्रस्तुत इकाई में अनुसंधान के तीन पहलुओं से संबंधित विषय–वस्तु हैं। इस इकाई को वैज्ञानिक अनुसंधान के आधार पर संगठित रूप प्रदान करने हेतु तीनों विषय–वस्तुओं का अलग–अलग संगठित ढांचा प्रस्तुत किया गया है।

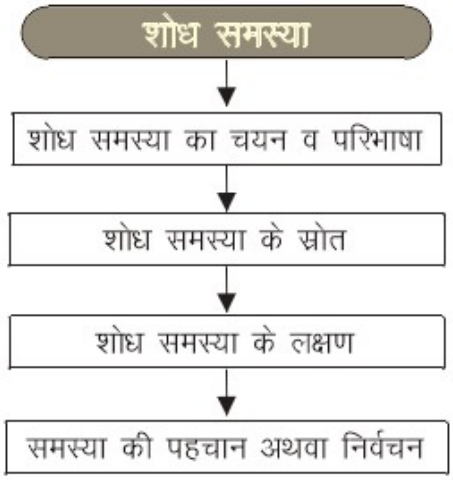

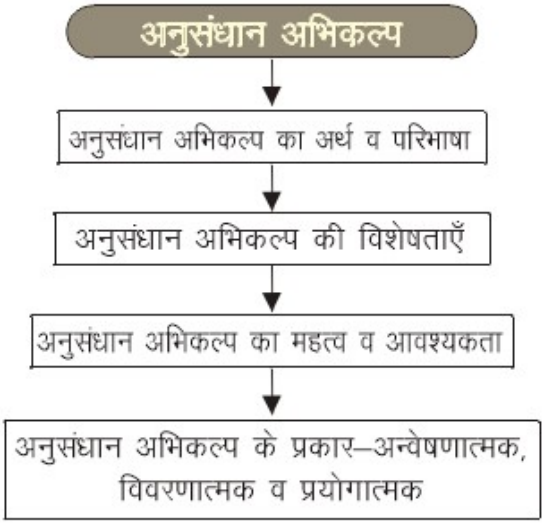

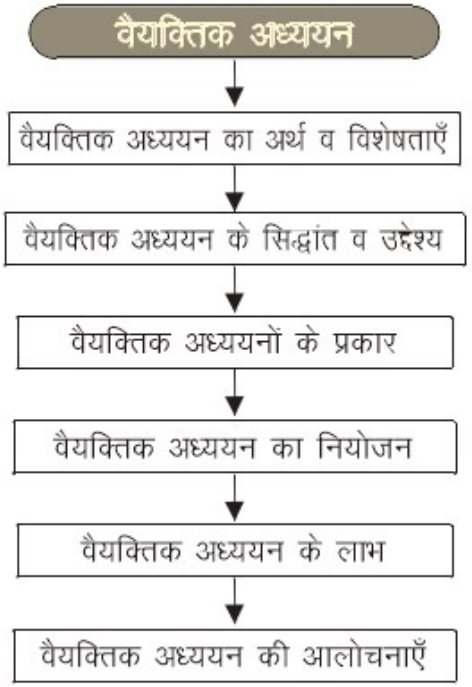

4.3 शोध समस्या

प्रत्येक प्रकार के सामाजिक शोध में शोध समस्या का चयन करना, उसका प्रतिपादन अथवा निर्धारण या पहचान करना सामाजिक शोध के सफल संचालन के लिए अत्यंत आवश्यक है। ए.आइंसटीन तथा एन.इनफैल्ड ने लिखा है कि, ''समस्या का निर्धारण प्रायः इसके समाधान से अधिक आवश्यक है।'' सामाजिक अनुसंधान अथवा शोध की प्रक्रिया में शोध समस्या के रूप में विषय का निर्धारण वैज्ञानिक शोध का महत्वपूर्ण प्रथम चरण है। समस्या के निर्धारण के अंतर्गत समस्या का स्पष्टीकरण करते समय उसे भली भांति परिभाषित करना आवश्यक होता है। शोध समस्या का स्पष्ट निर्धारण शोधकर्त्ता के उद्देश्य को स्पष्ट रूप देने के साथ ही इन उद्देश्यों को अवधारणाओं के रूप में परिभाषित भी करना है।

4.3.1 शोध समस्या का चयन :

शोध समस्या का चुनाव किसी न किसी सीमा तक शोध या शोधकर्त्ता के व्यक्तित्त्व संबंधी पृष्ठभूमि द्वारा प्रभावित होता है या फिर शोध समस्या को सामान्य अभिरूचि का विषय बनाने की दिशा में भी चेतन एवं संगठित रूप से प्रयास करना पड़ता है तथा एक सामान्य पृष्ठभूमि की खोज करनी पड़ती है क्योंकि इस सामान्य पृष्ठभूमि की पूर्ण अनुपस्थिति में किया गया शोध इतना अधिक व्यक्तिवादी हो सकता है कि इससे समाज के किसी भी प्रकार से लाभान्वित होने की कोई संभावना नहीं रह जाती है। अतः आवश्यक है कि शोधकर्त्ता को समाज कल्याण के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर ही शोध समस्या का चुनाव करना चाहिए।

एक शोधकर्त्ता को शोध समस्या के चयन से पूर्व निम्न बातों का ध्यान होना चाहिए :

1. शोध शीर्षक पर कोई कार्य पहले भी किया जा चुका है या नहीं। यदि हो चुका है तो इस कार्य का लिखित स्वरूप शोधकर्त्ता की पहुंच के अंतर्गत होना चाहिए।
2. शोध शीर्षक शोधकर्त्ता की व्यक्तिगत अभिरूचियों, इच्छाओं, मूल्यों एवं मान्यताओं के अनुकूल होना चाहिए।

3. शोध शीर्षक समाज के लिए उपयोगी होना चाहिए। इसके अतिरिक्त शोध के परिणामों से शोधकर्त्ता को भी व्यक्तिगत एवं वस्तुनिष्ठ लाभ होना आवश्यक होता है।
4. शोध शीर्षक समाज विरोधी या विपरीत विचारों से ग्रस्त नहीं होना चाहिए।
5. शोध शीर्षक प्रायोगिक होना चाहिए अर्थात् शीर्षक पर शोध कार्य करने के लिए जिस प्रकार के तथ्यों की आवश्यकता हो, वे तथ्य उपलब्ध होने चाहिएँ।
6. इसके पश्चात् भी शोधकर्त्ता का यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि कोई भी ऐसा सुस्पष्ट विषय नहीं है जो एक दिए गए शोध क्षेत्र के विषय में उपरोक्त सावधानियों के निर्धारण में शोधकर्त्ता का पथ प्रदर्शित कर पाए। विभिन्न मूल्यों से युक्त सामाजिक विज्ञान में शोधकर्त्ता के लिए चुनी गई समस्या यदि शोधकर्त्ता की व्यक्तित्त्व संबंधी विशेषताओं के अनुकूल हो तो यह अधिक उपयुक्त माना जाता है।

एक सामाजिक शोध के विषय में विषय का निर्धारण शोधकर्त्ता के लिए महत्वपूर्ण है। क्योंकि सामाजिक शोध के अंतर्गत अनेक प्रकार की शोध समस्याओं का बाहुल्य होता है। अतः आवश्यक है कि शोधकर्त्ता समस्या की संपूर्ण चयन विधि से पूर्णत : परिचित हो। अतः शोध समस्या के चयन के लिए व्यक्ति के प्रशिक्षण और योग्यता का प्रमुख महत्व है :

1. शोध समस्या के रूप में विषय का निर्धारण : शोध के लिए समस्या का चयन करने के लिए सामान्यत : वैज्ञानिक तर्कों का सहारा लिया जाता है, क्योंकि शोध समस्या के रूप में विषय का निर्धारण वैज्ञानिक खोज का प्रथम चरण है। अतः शोधकर्त्ता के लिए यह आवश्यक है कि समस्या के चुनाव के लिए पूरी तरह सतर्कता बरतने के अतिरिक्त इसे वैज्ञानिक कार्य प्रणालियों की आवश्यकता द्वारा प्रभावित भी होना चाहिए। इससे शोध के लिए चुना गया विषय पूर्णत : तार्किक होगा। वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति के फलस्वरूप उत्पन्न समस्याएँ भी इसी स्तर की हैं क्योंकि आज का युग विज्ञान एवं तकनीकी का युग है। इसका प्रभाव शिक्षा जगत पर न पड़े, यह नहीं हो सकता। शिक्षा जगत में शिक्षा के उत्थान व उन्नयन के लिए नवीन साधन सुविधाओं का उपयोग किस प्रकार किया जाए यह एक महत्वपूर्ण शोध का क्षेत्र हो सकता है। शिक्षा में अध्ययन की किन शिक्षा प्रविधियों, पद्धतियों आदि का आविष्कार टेलीविजन, प्रोजेक्टर, टेप रिकार्डर, चलचित्र, इंटरनेट आदि का प्रयोग इस बात का प्रमाण है कि शिक्षा जगत को विज्ञान एवं तकनीकी की सहायता से

उन्नत किया जा सकता है, अर्थात् विज्ञान एवं तकनीकी प्रगति शिक्षा जगत को प्रभावित किए बिना नहीं रह सकती।

2. पूर्व सिद्धांत से उत्पन्न समस्याएं : शोध कार्य में समस्याओं का अध्ययन कर उसका संभव हल दिया जाता है। यदि यह संभव हल संबंधित समस्या से इतर भी समस्याओं का समाधान करने में सहायक हो तो यह सिद्धांत का रूप ले लेता है। इन पूर्व सिद्धांतों को परखने के लिए भी नये शोध कार्य संचालित कर सकते हैं। अतः सिद्धांतों को परखना भी शोध समस्याओं का महत्वपूर्ण स्रोत है। यदि कोई सिद्धांत किसी नई घटना को समझने में असफल रहता है तो शोध के आधार पर नया सिद्धांत प्रतिपादित किया जाता है। या उसी को पूर्ण सिद्धांत में परिवर्तित किया जा सकता है।

4.3.2 शोध समस्या चयन के महत्वपूर्ण तत्त्व :

शोध समस्या के निर्धारण में निम्नलिखित तत्त्व महत्वपूर्ण हैं :

1. शोध उपभोक्ता : शोध समस्या के निर्धारण में शोध उपभोक्ता के अंतर्गत उन सभी व्यक्तियों को सम्मिलित किया जाता है जो प्रत्यक्ष रूप से अथवा अप्रत्यक्ष रूप से शोध कार्य से प्रभावित होंगे। वास्तव में सामाजिक विज्ञान में शोध समस्या किसी व्यक्ति अथवा समूह से संबंधित होती है। बहुत सी शोध समस्याओं में कुछ अन्य व्यक्ति भी सम्मिलित हो सकते हैं। अतः शोध समस्या के निर्धारण में शोध उपभोक्ता को शोध का प्रथम तत्त्व माना जा सकता है।

2. शोध उपभोक्ता के उद्देश्य : शोध उपभोक्ता के उद्देश्यों के आधार पर भी शोध समस्या का चयन होता है। विशुद्ध, व्यावहारिक अथवा क्रियात्मक तथ्यों को शोध की समस्या के रूप में देखा जा सकता है। वास्तव में शोध उपभोक्ता के अपने कुछ विशिष्ट उद्देश्य होते हैं, जिन्हें वह प्राप्त करना चाहता है। ये उद्देश्य शोधकर्त्ताओं, शोध उपभोक्ताओं अथवा शोध से प्रभावित होने वाले अन्य व्यक्तियों से संबंधित हो सकते हैं। यदि उद्देश्य स्पष्ट हो तो समस्या का समाधान खोजने में सहायता प्राप्त होती है।

3. उद्देश्य प्राप्ति के वैकल्पिक साधन : हर समस्या के समाधान के एक से अधिक विकल्प होते हैं। शोध उपभोक्ता को चाहिए कि उद्देश्य प्राप्ति के लिए उपलब्ध वैकल्पिक साधनों का ध्यान अवश्य रखें। शोधकर्त्ता उपयुक्त साधन का प्रयोग अपनी समस्या के समाधान के

लिए करता है। यदि शोधकर्त्ता के पास विकल्पीय साधन नहीं हैं तो वह उद्देश्य प्राप्ति में किसी भी प्रकार सफल नहीं हो सकता। शोधकर्त्ता को चाहिए कि वह विकल्पीय साधन की सूची तैयार करे तथा इन विकल्पीय साधनों की कुशलता के आधार पर तुलना करते हुए सबसे अधिक कुशल साधन का चुनाव कर शोध समस्या का हल प्रस्तुत करे।

4. पर्यावरण : शोध समस्या के निर्धारण में पर्यारण से तात्पर्य उस परिस्थिति से है जिसके अंतर्गत हम समस्या का अध्ययन करना चाहते हैं। इसमें होने वाले परिवर्तन शोध समस्या की प्रकृति तथा इसके स्वरूप को प्रभावित करते हैं अर्थात् ये शोध उपभोक्ता, उनके उद्देश्यों तथा शोध की प्राप्ति के साधनों आदि में परिवर्तन ला सकते हैं। पर्यावरण के अंतर्गत समस्या के प्रतिपादन में चुने गए शीर्षक के अंतर्गत समस्या का उचित प्रत्यक्षीकरण एवं इसकी सुस्पष्ट पहचान की जानी चाहिए। समस्या के अनुरूप शोध प्रकृति की जानकारी प्राप्त करते हुए इसका स्पष्टीकरण किया जाना चाहिए। शोध समस्या के क्षेत्र का आकलन तथा इसे निदर्शन द्वारा सीमित किया जाना चाहिए। समस्या से संबंधित विभिन्न मान्यताओं एवं परिकल्पनाओं अथवा उपकल्पनाओं का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

5. एकाधिक समग्र की अनिवार्यता :एकाधिक समग्र से तात्पर्य है कि शोध समस्या का अध्ययन एक से अधिक समग्र के अंतर्गत सुविधापूर्वक किया जा सके। इसके अंतर्गत यदि समस्या से संबंधित एक समग्र की प्रकृति दूसरे की तुलना में कुछ विभिन्न हो तो अध्ययन समस्या में भी उसी प्रकार परिवर्तन किया जा सकता है। शोध समस्या के निर्धारण में एक शोधकर्त्ता के लिए यह आवश्यक है कि वह शोध के लिए समस्या का चुनाव इस प्रकार करे जिसमें समग्र के जिस माध्यम को वह सबसे अधिक प्रभावशाली मानता है। वह इसी समग्र के अन्य माध्यम से ज्यादा अंतर न रखता हो। इसके पश्चात् यह संदेह इस आधार पर दूर किया जा सकता है कि विभिन्न समग्रों के विस्तार तथा इनकी प्रकृति में सामान्य अंतर होना साधारण बात है।

अतः कहा जा सकता है कि उपरोक्त विभिन्न तत्त्वों के सामंजस्य से समस्या निर्धारण अधिक व्यवस्थित रूप से किया जा सकता है।

4.3.3 शोध समस्या चयन के आधार : एक शोधकर्त्ता शोध समस्या के चुनाव के लिए निम्न स्तरों का चुनाव करता है :

– शोधकर्त्ता शोध समस्या में किन तथ्यों को ज्ञात करना चाहता है?

– शोध समस्या के जिन तथ्यों को ज्ञात करना चाहता है उनका उद्देश्य अथवा

– कारण क्या है?

– जिन तथ्यों को प्राप्त किया जाना है, वे सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक दृष्टिकोण से कितने महत्वपूर्ण हैं?

शोध समस्या के चयन के आधार व स्तर निम्न हैं :

1. शोध समस्या का मूल प्रश्न : शोधकर्त्ता के लिए शोध समस्या के चुनाव में प्रथम महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि जिन तथ्यों या विशेषताओं की खोज अथवा अध्ययन करना है, क्या उन्हें वास्तविक आधार पर सामाजिक तथ्य की श्रेणी में रखा जा सकता है? अर्थात् शोध समस्या किन यथार्थ तथ्य अथवा तथ्यों का प्रतिनिधित्व करती है। ये समाज में घटित होने वाले विभिन्न तथ्य होते हैं। कुछ तथ्य विवरण के रूप में होते हैं जबकि कुछ आनुभविक अध्ययनों पर आधारित होते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ तथ्य सामाजिक संगठनों के प्रतिमान को स्पष्ट करते हैं, तो कुछ तथ्य किसी विशेष दशा के कारणों को स्पष्ट करने वाले होते हैं। अतः स्पष्ट है कि शोधकर्त्ता को अध्ययन समस्या का निर्धारण करने के लिए समस्या के विषय में जिन तथ्यों को ज्ञात करना है उनकी तार्किकता व स्पष्टता से आश्वस्त हो जाना चाहिए।

2. शोध समस्या का आधार : शोध समस्या का निर्धारण करने में मूल प्रश्नों को ज्ञात करने के बाद शोधकर्त्ता के समक्ष यह पूरी तरह स्पष्ट होना आवश्यक है कि शोधकर्त्ता जिन विशिष्ट तथ्यों को ज्ञात करना चाहता है उनके उद्देश्य अथवा उन्हें ज्ञात करने का आधार क्या है? अर्थात उन तथ्यों को ज्ञात करने के बाद विषय से संबंधित वर्तमान ज्ञान किस प्रकार उपयोगी या प्रभावित हो सकते हैं। इस संबंध में थोबाल्ड का विचार है कि कोई अध्ययन या शोध समस्या इसलिए महत्वपूर्ण होती है कि उनका समुचित परीक्षण हो जाने से विषय–वस्तु अथवा विज्ञान का अवधारणात्मक ढांचा बदलने लगता है। पी.एच. मान के अनुसार सामाजिक अंत :क्रिया में शोधकर्त्ता के लिए देखना और सुनना दो प्रमुख कार्य हैं। अतः प्रत्यक्ष प्राथमिक स्रोत को भी दो प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है – अवलोकन व साक्षात्कार या मौखिक छानबीन।

4.3.4 शोध समस्या के स्रोत : सामाजिक विज्ञान के अंतर्गत अनुसंधान के लिए अनेक प्रकार की अनुसंधान अथवा शोध समस्याओं का बाहुल्य होता है। इन समस्याओं के विभिन्न स्रोत निम्न हैं :

1. संबंधित विषय/साहित्य का अध्ययन : शोध के लिए शोधकर्त्ता को अपने क्षेत्र के साहित्य का गहन अध्ययन करना समस्याओं के चयन हेतु उपयुक्त होता है। क्योंकि ऐसा करने से उस क्षेत्र की प्रमुख समस्याओं एवं आवश्यकताओं का आभास हो जाता है। साथ ही संबंधित विषय पर कितना शोध कार्य हो चुका है इस बात की भी जानकारी होती है और इसके कौन–से आयामों पर अभी कार्य किया जा सकता है यह पता लग सकता है। इसके अलावा जो कार्य हो चुका है उसमें अन्य शोधकर्त्ता ने किस विधि को अपनाया है तथा इस कार्य को अन्य विधि से करके उसके परिणामों की सत्यता की जांच भी की जा सकती है।

2. शोध से उद्भूत नवीन समस्याएं : शोध कार्य निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। एक अनुसंधान अथवा शोध अनेक समस्याओं को जन्म देता है। प्रत्येक शोध के दौरान नये प्रश्न एवं समस्याएं उपस्थित हो जाती हैं, जिन पर पुन : शोध कार्य किया जा सकता है। इस प्रकार समस्याएं शोध नई समस्याएं और फिर शोध, यह एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। अतः शोधकर्त्ता को पूर्व में किए गए शोधकार्य को पढ़ने से नई शोध समस्या दिखाई दे सकती है। यहाँ तक कि स्वयं शोधकर्त्ता द्वारा किए गए कार्य के बीच में से ही तथ्य दृष्टिगोचर होते हैं। जिसके फलस्वरूप बिल्कुल नये शोध सामने आ सकते हैं। वेक्वीरेल जब रेडियम का अध्ययन कर रहे थे तो उन्होंने शरीर के उत्तकों पर पड़ने वाले प्रभाव का भी अनुभव किया तथा रेडियम का कैंसर के उपचार में प्रयोग किया जाने लगा। सामाजिक संरचना संबंधी शोध अथवा किसी विशिष्ट समस्या के अध्ययन का ऐसा आधार होता है जो उस समस्या के लिए चुना जा सकता है।

3. शोध समस्या का विशिष्ट बोध : शोध समस्या के निर्धारण में मूल प्रश्न तथा उनके आधार अथवा उद्देश्यों को ज्ञात कर लेने के पश्चात अध्ययन समस्या के विशिष्ट बोध को अंतिम स्तर माना जा सकता है। इसके अंतर्गत शोधकर्त्ता मूल प्रश्न को लेकर उसके सभी संबंधित हल अथवा विकल्पों को चुनता है तथा उसके विभिन्न पहलुओं पर दृष्टिपात करता है। अर्थात् वास्तविक शोध समस्या के निर्धारण के लिए उसे उसके नियमों, प्रतिमानों,

व्यवस्थाओं को समझना आवश्यक होता है जो उस समस्या को प्रभावित करते हैं। ये कारक अध्ययन समस्या को प्रभावित करते हैं इसलिए इन्हें 'सामाजिक निर्धारक' कह सकते हैं। इन निर्धारकों के कारण ही एक सामान्य प्रतीत होने वाली घटना, अध्ययन समस्या अथवा शोध के लिए एक महत्त्वपूर्ण अध्ययन समस्या बन जाती है। कोहन तथा नेगेल ने कहा है कि, ''जिस स्थिति को सामान्य लोग केवल एक संदेह मानकर छोड़ देते हैं, वैज्ञानिक दृष्टि से व्यक्ति के लिए वही एक संवेदनशील कठिनाई प्रतीत होती है। वह उसके बारे में तरह–तरह के प्रश्न करके उसके व्यापक पक्षों को देखना प्रारंभ कर देता है। यही प्रवृत्ति वैज्ञानिक बौद्धिकता है।'' इसलिए जरूरी है कि शोधकर्त्ता को शोध समस्या का निर्धारण करने से पहले आरंभ में ही मूल प्रश्न से संबंधित सभी प्रश्नों, विकल्पों का गहन तथा व्यापक अध्ययन कर लेना चाहिए।

इस समस्त अध्ययन के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि शोधकर्त्ता को शोध समस्या से संबंधित प्राथमिक अवलोकन द्वारा समस्या की विषय–वस्तु के संबंध में व्यवस्थित जानकारी प्राप्त करने के साथ–साथ प्रासंगिक साहित्य का अध्ययन, महत्वपूर्ण सिद्धान्तों, प्रतिवेदनों व अभिलेखों की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। उसे समस्या का व्यावहारिक अनुभव रखने वाले व्यक्तियों से विचार–विमर्श कर समस्या के सभी पहलुओं की गहराई के साथ जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

4.3.5 अपनी प्रगति जांचिए :

(क) समस्या को परिभाषित कीजिए।

(ख) अनुसंधान समस्या क्या है?

(ग) शोध समस्या निर्धारण के तत्त्व बताओ।

(घ) शोध समस्या के प्रमुख स्तरों को बताइए।

(ड़) शोध समस्या के सामाजिक निर्धारकों को परिभाषित करें।

4.3.6 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर :

(क) इच्छित कार्यों में बाधा ही समस्या है।

(ख) अनुसंधान कार्य में किसी भी स्तर पर किसी भी प्रकार की कठिनाई की अनुभूति अनुसंधान समस्या कहलाती है।

(ग) शोध समस्या निर्धारण के प्रमुख तत्त्व :

- शोध उपभोक्ता
- शोध उपभोक्ता के उद्देश्य
- पर्यावरण
- उद्देश्य प्राप्ति के वैकल्पिक साधन

(घ) शोध समस्या के स्तर :

- समस्या का उचित प्रत्यक्षीकरण
- समस्या की अन्वेक्षणात्मक पद्धति
- क्षेत्र का परिसीमन
- परिकल्पनाओं का विवरण
- समस्या के पहलुओं का विवरण

(ड़) शोध समस्या से संबंधित प्राथमिक अवलोकन, शोध समस्या के बारे में संबंधित साहित्य का अध्ययन, महत्वपूर्ण सिद्धान्तों, प्रतिवेदनों व अभिलेखों की विस्तृत जानकारी व अध्ययन समस्या का व्यावहारिक अनुभव रखने वाले व्यक्तियों से विचार–विमर्श को शोध समस्या के सामाजिक निर्धारकों के रूप में परिभाषित किया जाता है।

4.4 अनुसन्धान अभिकल्प

(Research Design)

अनुसन्धान समस्या का चयन करने और फिर उसे परिभाषित करने के उपरान्त अनुसन्धानकर्त्ता के समक्ष जो सबसे प्रमुख कार्य होता है वह है अनुसन्धान करने के लिए एक अभिकल्प या प्रारूप तैयार करना जिसे हम 'अनुसन्धान अभिकल्प' के नाम से जानते हैं। जिस प्रकार किसी भी कार्य के करने से पूर्व उसके बारे में विस्तृत योजना तैयार की जाती है, जिस प्रकार एक मकान बनाने से पूर्व आर्किटैक्ट उस मकान का ढाँचा तैयार

करता है, जिस प्रकार सेना कोई भी सैनिक कार्यवाही करने से पूर्व उस कार्यवाही के बारे में विस्तृत रणनीति (Strategy) तैयार करती है ठीक उसी प्रकार अनुसन्धानकर्त्ता भी अध्ययन कार्य वास्तव में आरम्भ करने से पहले अनुसन्धान अभिकल्प तैयार करता है। यह अभिकल्प अनुसन्धानकर्त्ता को पूरे अध्ययन के विस्तृत चित्रण से अवगत करवाता है तथा भविष्य में अध्ययन कार्य को वास्तव में लागू करते समय अध्ययन कार्य को मार्ग से हटने से बचाता है। इसके साथ ही अनुसन्धान अभिकल्प शोधकर्त्ता का समय, धन, श्रम आदि के अनावश्यक अपव्यय से भी बचाता है। शोध अभिकल्प तथ्यों के संकलन एवं विश्लेषण से सम्बंधित दशाओं को इस तरह आयोजित करता है कि वे कार्यविधि में बचत करती हुई शोध के प्रयोजन के साथ संगतिपूर्ण हो सकें।

वास्तव में अनुसन्धान अभिकल्प या प्रारूप अध्ययन से सम्बन्धित एक अवधारणात्मक ढाँचा है जिसकी परिधि में रहकर अध्ययन कार्य पूरा किया जाता है तथा जिसके अन्तर्गत आँकड़ों का संकलन उनके मापने की विधियाँ और उनके विश्लेषण को सम्मिलित किया जाता है।

4.4.1 अनुसन्धान अभिकल्प : अर्थ एवं परिभाषा :

अन्वेषण कार्य प्रारम्भ करने से पहले अनुसन्धानकर्त्ता अन्वेषण या अध्ययन के सम्बन्ध में जो कार्ययोजना तैयार करता है उसे अनुसन्धान अभिकल्प या प्रारूप कहते हैं। अनुसन्धान अभिकल्प अन्वेषण कार्य के सम्बन्ध में कुछ आधारभूत प्रश्नों जैसे क्या, कब, कैसे, कहाँ, कितने संसाधनों द्वारा आदि के निर्णय या उत्तर प्रदान करता है। अनुसन्धान अभिकल्प वह निर्णयन–प्रक्रिया है, जिसमें अन्वेषण सम्बन्धी निर्णय अध्ययन सम्बन्धी उन परिस्थितियों से पूर्व लिए जाते हैं जिनमें ये निर्णय कार्यरूप में लाए जाते हैं। उदाहरणार्थ, अध्ययन के सम्बन्ध में निदर्शन–पद्धति, निदर्शन–आकार, आँकड़ों के संकलन की विधि तथा उनके विश्लेषण की पद्धति आदि के विषय में निर्णय अनुसन्धान प्रारूप के स्तर पर ही ले लिए जाते हैं जबकि इन निर्णयों को लागू करने की परिस्थितियाँ वास्तव में जब अध्ययन या अन्वेषण कार्य कार्यान्वित किया जाता है तब पैदा होती हैं।

अनुसन्धान प्रारूप या प्ररचना को अनेक सामाजिक वैज्ञानिकों ने परिभाषित किया है। इनमें से कुछ प्रमुख के द्वारा दी गई परिभाषाएं नीचे दी जा रही हैं :

सेलिज, जहोदा, ड्यूश एवं कुक ने अपनी पुस्तक 'रिसर्च मेथड्स इन सोशल रिलेशनस' में अनुसन्धान प्ररचना को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, "एक अनुसन्धान प्ररचना आँकड़ों के एकत्रीकरण एवं विश्लेषण के लिए उन दशाओं का प्रबन्ध करती है जो अनुसन्धान के उद्देश्यों की संगतता को कार्यरीतियों मे आर्थिक नियन्त्रण के साथ सम्मिलित करने का उद्देश्य रखती है।"

आर. एल. एकॉफ ने अपनी पुस्तक का नाम 'दि डिजाइन ऑफ सोशल रिसर्च' रखा है। ऐकॉफ के अनुसार, "प्ररचित करना नियोजित करना है, अर्थात् प्ररचना (Design) उस परिस्थिति के उत्पन्न होने से पूर्व निर्णय लेने की प्रक्रिया है जिसमें निर्णय को लागू किया जाना है। यह एक सम्भावित स्थिति को नियन्त्रण में लाने की दिशा में एक पूर्व आशा (Anticipation) की प्रक्रिया है।"

सेनफोर्ड लेबोबिज एवं रॉबर्ट हैगडार्न ने भी 'इन्ट्रोडक्शन टू सोशल रिसर्च' में इसे परिभाषित करते हुए लिखा है कि "एक अनुसन्धान प्ररचना उस तार्किक ढंग को प्रस्तुत करती है, जिसमें व्यक्तियों एवं अन्य इकाईयों की तुलना एवं विश्लेषण किया जाता है। यह आँकड़ों के लिए विवेचन का आधार है। प्ररचना का उद्देश्य ऐसी तुलना का आश्वासन दिलाना है, जो विकल्पीय विवेचनों से प्रभावित न हो।"

आल्फेड जे. काह ने भी इसकी विवेचना करते हुए 'दि डिजाइन ऑफ रिसर्च' के नाम से लिखे एक लेख में लिखा है कि "अनुसंधान प्ररचना की सर्वात्तम परिभाषा अध्ययन की तार्किक युक्ति के रूप में की जाती है। यह एक प्रश्न का उत्तर देने, परिस्थिति का वर्णन करने, अथवा एक परिकल्पना का परीक्षण करने से सम्बन्धित है। दूसरे शब्दों में, यह उस तर्कयुक्तता से सम्बन्धित है जिसके द्वारा कार्यविधियों (Procedures), जिनमें आँकड़ों का संग्रह एवं विश्लेषण दोनों सम्मिलित हैं के एक विशिष्ट समूह से एक अध्ययन की विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति की आशा की जाती है।"

एफ. एन. कर्लिजर ने भी 'फाउन्डेशनस ऑफ बिहैवरीयल रिसर्च' में लिखा है कि "अनुसन्धान प्ररचना अन्वेषण की योजना, संरचना (Structure) एवं एक रणनीति (Strategy) है जिसकी रचना इस प्रकार की जाती है कि अनुसंधान प्रश्नों के उत्तर प्राप्त हो सकें तथा विविधताओं (Variance) को नियन्त्रित किया जा सके। यह प्ररचना या योजना अनुसन्धान की सम्पूर्ण रूपरेखा अथवा कार्यक्रम है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक चीज की रूपरेखा सम्मिलित

होती है जो अनुसन्धानकर्त्ता उपकल्पनाओं के निर्माण एवं उनके परिचालनात्मक अभिप्रायों से लेकर आँकड़ों के अंतिम विश्लेषण तक करता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि अनुसंधान के उद्देश्यों के आधार पर अध्ययन विषय के विभिन्न पक्षों को उद्‌घटित करने के लिए पहले से ही बनाई गई योजना की रूपरेखा को शोध अभिकल्प कहते हैं। शोध अभिकल्प एक विशिष्ट कार्य प्रणाली है जिसमें संकलन एवं विश्लेषण के माध्यम से अध्ययन की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति की आशा की जाती है। अतः ऐसी योजना जो विषय वस्तु के विभिन्न अंगों का अन्वेषण करके संशोधन के पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कार्यान्वित की जाती है, अनुसंधान प्रारूप या अभिकल्प कहलाती है।

अनुसंधान प्रारूप, मुख्य रूप से, निम्न प्रश्नों के उत्तर प्रदान करता है :

(i) अध्ययन किस विषय से सम्बन्धित है?

(ii) अध्ययन की क्या अवश्यकता है?

(iii) अध्ययन किस स्थान पर कार्यान्वित किया जाएगा?

(iv) अध्ययन के लिए किस प्रकार के आँकड़ों की आवश्यकता होगी?

(v) अध्ययन के लिए आवश्यक आँकड़े कहाँ से प्राप्त होंगे?

(vi) अध्ययन किस समयावधि से सम्बन्धित होगा?

(vii) निदर्शन या प्रतिदर्शन प्रारूप क्या होगा?

(viii) आँकड़े एकत्रित करने के लिए कौन सी पद्धति का प्रयोग किया जाएगा?

(xi) आँकड़ों का विश्लेषण किस प्रकार किया जाएगा?

(x) अध्ययन की रिपोर्ट किस प्रकार तैयार की जाएगी अर्थात उसका प्रारूप क्या होगा?

शोध प्रारूप पूरे अध्ययन से सम्बन्धित होता है और उसमे अध्ययन के सभी पक्षों की विस्तृत योजना की रूपरेखा का समावेश किया जाता है। अतः शोध–प्रारूप के अर्न्तगत कुछ उप–शोध प्रारूप भी तैयार किए जाते हैं जो शोध के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित होते हैं। सामान्यत : शोध–प्रारूप के निम्नलिखित भाग या उप–शोध प्रारूप होते हैं :

(a) निदर्शन प्रारूप : यह प्रारूप अध्ययन के लिए विभिन्न इकाईयों के चयन की पद्धति से सम्बन्धित होता है।

(b) अवलोकन प्रारूप : यह प्रारूप उन शर्तों का उल्लेख करता है जिनके अन्तर्गत अध्ययन सम्बन्धी अवलोकन किए जाएंगे।

(c) सांख्यिकीय प्रारूप : इस प्रारूप में इस बात का उल्लेख किया जाता है कि शोध के अन्तर्गत कितनी इकाईयों का अध्ययन किया जाएगा और संकलित आँकड़ों के विश्लेषण के लिए कौन–सी पद्धति प्रयोग में लाई जाएगी।

(d) कार्यात्मक प्रारूप : कार्यात्मक प्रारूप उन तकनीकों से सम्बन्धित है जिनके द्वारा निर्देशन, अवलोकन और सांख्यिकीय प्रारूपों के अन्तर्गत दर्शायी गई पद्धतियों को लागू किया जाएगा।

4.4.2 शोध अभिकल्प की विशेषताएँ :

शोध अभिकल्प के अर्थ को समझने एवं उसे परिभाषित करने के बाद हम इसकी कुछ आधार– भूत विशेषताओं का वर्णन कर सकते हैं। अनुसंधान प्ररचना की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं :

1. अनुसन्धान प्ररचना का सम्बन्ध सामाजिक अनुसन्धान से होता है।

2. अनुसन्धान प्ररचना अनुसन्धानकर्त्ता को अनुसन्धान की एक निश्चित दिशा का बोध कराती है। इस अर्थ में अनुसन्धान प्ररचनाएँ एक प्रकार की दिग्दर्शक हैं।

3. अनुसन्धान प्ररचना की मुख्य विशेषता सामाजिक घटनाओं की जटिल प्रकृति को सरल रूप में प्रस्तुत करना है।

4. अनुसन्धान प्ररचना अनुसन्धान की वह रूपरेखा है जिसकी रचना अनुसन्धान कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व की जाती है।

5. अनुसन्धान प्ररचना की एक और विशेषता अनुसन्धान प्रक्रिया के दौरान आने वाली परिस्थितियों को नियन्त्रित करना एवं अनुसन्धान कार्य को सरल बनाना है।

6. अनुसन्धान प्ररचना न केवल मानवीय श्रम को कम करती है बल्कि वह समय एवं लागत को भी कम करती है।

7. अनुसन्धान प्ररचना अनुसन्धान के दौरान आने वाली कठिनाइयों को भी कम करने में अनुसन्धानकर्त्ता की सहायता करती है।

8. अनुसन्धान प्ररचना की एक और विशेषता यह है कि यह अनुसन्धान के अधिकतम उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता करती है।

9. अनुसन्धान प्ररचना का चयन सामाजिक अनुसन्धान की समस्या एवं उपकल्पना की प्रकृति के आधार पर किया जाता है।

10. अनुसन्धान प्ररचना समस्या की प्रतिस्थापना से लेकर अनुसन्धान प्रतिवेदन के अन्तिम चरण तक के विषय में सभी उपलब्ध विकल्पों के बारे में व्यवस्थित रूप में श्रेष्ठ निर्णय लेने में सहायता करती है।

4.4.3 शोध–प्रारूप का महत्त्व या आवश्यकता :

शोध प्रारूप विभिन्न शोध क्रियाओं को सुचारू रूप से संचालित करने में सहायक होता है। शोध–अभिकल्प तैयार करके शोधकर्त्ता शोधकार्य को अधिकाधिक कुशलतापूर्वक इस प्रकार सम्पन्न कर सकता है कि अध्ययन से अधिकाधिक ज्ञान का प्रसार कम से कम धन, समय तथा श्रम के निवेश से सम्भव हो सके। जिस प्रकार एक अच्छे, आकर्षक तथा कम खर्चीले मकान का निर्माण करने के लिए हमें सदैव एक नक्शे (Map) की आवश्यकता होती है ठीक उसी प्रकार शोध–कार्य को भली प्रकार से पूरा करने के लिए हमें सदैव ही एक शोध–प्रारूप की आवश्यकता होती है। शोध–प्रारूप शोध के उद्देश्यों एवं समय, धन और शोध कार्मिकों की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए आवश्यक आँकड़ों के संकलन और उनके विश्लेषण की तकनीकों के सम्बन्ध में योजना बनाकर भविष्य में अध्ययन कार्य को मार्ग से हटने से रोकता है। वास्तव में शोध प्रारूप पूरे शोध कार्य की नींव है तथा यह शोध के निष्कर्षों को भी प्रभावित करता है। यही कारण है कि अनुसन्धान अभिकल्प या प्रारूप तैयार करते समय पूरी सावधानी बरती जानी चाहिए क्योंकि शोध प्रारूप की कोई भी त्रुटि पूरे शोध कार्य को प्रभावित करती है। परन्तु खेद का विषय यह है कि सामान्यत : शोधकर्त्ताओं द्वारा शोध–प्रारूप के महत्त्व को नहीं समझा जाता और उसे पूरी गंभीरता के साथ तैयार नहीं किया जाता। फलस्वरूप, ऐसे अध्ययन जिन्हें आरम्भ करने से पहले सुविचारित अनुसन्धान प्रारूप तैयार नहीं किए गए, न केवल वांछित परिणाम नहीं दे पाते

अपितु अनेकों बार भ्रामक परिणाम भी देते हैं जिससे कि पूरा शोध कार्य, व्यर्थ हो जाता है और धन, समय और श्रम की हानि होती है इसीलिए यह नितान्त आवश्यक हो जाता है कि प्रत्येक शोध–कार्य को आरम्भ करने से पहले एक सुविचारित शोध प्रारूप तैयार किया जाए। इतना ही नहीं शोधकर्त्ता को यह भी चाहिए कि वह उस शोध–अभिकल्प के बारे में किसी विशेषज्ञ की टिप्पणी भी ले तथा उसके द्वारा बताई गई कमियों को ध्यान में रखते हुए शोध–प्रारूप को पुन : तैयार करे या उसमें वांछित फेरबदल करे।

4.4.4 एक अच्छे अनुसन्धान अभिकल्प की विशेषताएँ :

सामान्यत : एक अच्छे अनुसन्धान प्रारूप में निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं :

1. लोचपूर्णता (Flexibility) : शोध प्रारूप की प्रकृति में अनेक तत्त्वों का समावेश रहता है, सभी तत्त्व परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। इसलिए प्रारूप में भी इन परिवर्तनों का समावेश किया जाना आवश्यक है। इससे शोध प्रारूप में लोचपूर्णता का गुण आवश्यक है। अनेक बार अध्ययन में कुछ समय नये तथ्यों का समावेश करना आवश्यक होता है तथा कुछ समय पश्चात् इनको हटाना पड़ता है क्योंकि ये अनावश्यक एवं अनुपयुक्त प्रतीत होते हैं। ऐसी स्थिति में तथ्यों का समावेश एवं उनको निकालने के लिए प्रारूप में लोचपूर्णता का गुण आवश्यक है।

2. सत्यता (Accuracy) : शोध प्रारूप सत्यता पर आधारित होना चाहिये। "सत्यता प्रारूप की आत्मा है" (Accuarcy is the soul of design) प्रारूप का निर्माण करते समय अत्यधिक सावधानी की आवश्यकता रहती है। इसमें किसी भी प्रकार की कमी शोध की सत्यता पर ऊँगली उठा देगी। जहाँ तक हो सके इसमें कमी को कम से कम किया जाने का प्रयास किया जाना चाहिए।

3. विश्वसनीयता (Reliability) : सामाजिक विज्ञान का उपयोग अध्ययन में किया जाता है। तथ्य सामग्री एवं सांख्यिकीय जानकारी के आधार पर ही शोध का कार्य प्रभावी हो पाता है। इस सामग्री एवं सांख्यिकीय जानकारी की प्रमाणिकता एवं विश्वसनीयता की जाँच करना भी आवश्यक है। शोधकर्त्ता द्वारा निकाले गये निष्कर्ष शोध के प्रयोजन के समरूप हैं अथवा नहीं, की जाँच करना भी आवश्यक है। यदि शोध के प्रयोजन के अनुरूप निष्कर्ष

निकाले गये हैं तो इससे अनुसंधान की विश्वसनीयता और बढ़ जाती है और इससे आगे और अनुसन्धान को गति मिलती है।

4. पुस्तकालय का उपयोग (Use of Library) : पुस्तकालय की सहायता से अनुसन्धानकर्त्ता अपने शोध के लिए बहुमूल्य सामग्री प्राप्त कर सकता है। शोधकर्त्ता यदि अपने शोध प्रारूप को विशेष स्थान देने की इच्छा रखता है तो इसके लिए उसे शोध पत्रिकाओं में आये अपने विषय से संबंधित लेखों का उपयोग करना चाहिये। प्रारूप को 'विशेष स्थान प्रदान' करने पर अनुसन्धानकर्त्ता के शोध के मूल्य में वृद्धि होगी।

सामाजिक विज्ञान में अनुसन्धानकर्त्ता अपने विषय की शोध पत्रिकाओं का अध्ययन करता है। यदि उसे सामाजिक विज्ञान की शोध पत्रिकाओं को पढ़ने की रूचि है तो यह उसकी विशेषता होगी जिससे उसके ज्ञान में वृद्धि होगी और वह इस ज्ञान का उपयोग अपने शोध कार्य में कर सकेगा।

5. सारगर्भित अवधारणाओं के चयन में सावधानी (Carefullness in Selecting Partinent Concepts) : प्रारूप के निर्माण के समय और अपने अनुसन्धान के लिए सारगर्भित अवधारणाओं का चयन करते समय विशेष सावधानी रखनी आवश्यक है। प्रारूप के निर्माण में परीक्षित ज्ञान और सारगर्भित अवधारणाओं का उपयोग किया जाना चाहिये। किसी भी अध्ययन के लिए ऐसी कल्पना का चुनाव किया जाना चाहिए जो स्पष्ट हो अन्यथा बार–बार उसमें संशोधन करना पड़ेगा।

6. चरों की परिभाषा और मूल्य कथन (Defining Variables and Mentioning Their Values) : अनुसंधान प्रारूप के स्तर पर अध्ययन से सम्बन्धित चर, घटकों और उद्देश्यों आदि की परिभाषा की जाती है। इन परिभाषाओं से संशोधन का मार्ग प्रशस्त होता है। शोध के स्वरूप के अनुसार चरों के स्थिर अथवा परिवर्तनशील मूल्यों का स्पष्टीकरण करना भी आवश्यक है। चरों का स्वरूप स्थिर रहता है अथवा बदलता है, यह शोध की समस्या से संबंधित स्थिति पर भी निर्भर करता है।

4.4.5 शोध–प्ररचना के प्रकार :

सभी शोध अध्ययनों का एक ही आधारभूत उद्देश्य होता है और वह है ज्ञान की प्राप्ति। परन्तु इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए साधन या मार्ग अलग–अलग हैं। इसी कारण

शोध–प्ररचनाएँ भी अलग–अलग प्रकार की होती हैं। सामान्यत : शोध–प्ररचना या प्रारूप निम्न चार प्रकार की होती हैं :

1. अन्वेषणात्मक अथवा निरूपणात्मक शोध–प्ररचना,

2. विवरणात्मक अथवा वर्णनात्मक शोध–प्ररचना,

3. निदानात्मक शोध प्ररचना,

4. प्रयोगात्मक शोध प्ररचना।

कुछ विद्वान विवरणात्मक तथा निदानात्मक शोध प्ररचनाओं में भेद नहीं करते और शोध प्ररचनाओं के केवल तीन प्रकार या भेद ही बताते हैं। इन विद्वानों के अनुसार अन्वेषणात्मक, विवरणात्मक/निदानात्मक तथा प्रयोगात्मक ज्ञान अथवा खोज की तीन सीढ़ियाँ हैं। अन्वेषणात्मक अध्ययन किसी विषय में खोज की प्रारम्भिक अवस्था होती है। इस प्रकार के अध्ययन के द्वारा विषय से परिचय प्राप्त किया जाता है तथा नवीन अवधारणाओं एवं उपकल्पनाओं का निर्माण किया जाता है। इस खोज की अगली सीढ़ी है वर्णनात्मक अध्ययन। इन अध्ययनों के द्वारा किसी घटना परिस्थिति, संगठन आदि के लक्षणों का विशुद्ध अध्ययन किया जाता है। यह भी कहा जा सकता है कि इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वर्णनात्मक उपकल्पनाओं का परीक्षण किया जाता है। खोज की अन्तिम सीढ़ी प्रयोगात्मक अध्ययनों की है। इसे 'कार्य – कारण सम्बन्धी अध्ययन' भी कहा जाता है। इसके द्वारा किसी कार्य (जैसे मनोबल की कमी) के कारणों का पता लगाने का प्रयास किया जाता है और इस उद्देश्य से बनाई गई उपकल्पनाओं का परीक्षण किया जाता है।

अब हम यहाँ उपरोक्त चारों शोध–प्ररचनओं के बारे में विस्तारपूर्वक पढ़ेंगे।

4.4.6 अन्वेषणात्मक अथवा निरुपणात्मक शोध प्ररचना :

जब किसी शोध–कार्य का उद्देश्य किसी सामाजिक घटना में अन्तर्निहित कारणों को ढूँढ निकालना होता है तो उससे सम्बद्ध रूपरेखा को अन्वेषणात्मक शोध–प्ररचना कहते हैं। इस प्रकार की शोध–प्ररचना में शोध–कार्य की रूपरेखा इस ढंग से प्रस्तुत की जाती है कि घटना की प्रकृति व धाराप्रवाहों की वास्तविकताओं की खोज की जा सके। समस्या या विषय के चुनाव के पश्चात् प्राक्कल्पना का सफलतापूर्वक निर्माण करने के लिए इस प्रकार की प्ररचना का बहुत महत्त्व है क्योंकि इसकी सहायता से हमारे लिये विषय का

कार्य–कारण सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। मान लीजिए हमें किसी विशेष सामाजिक परिस्थिति में तलाक–प्राप्त (divorced) व्यक्तियों में व्याप्त यौन–व्यभिचार के विषय में अध्ययन करना है तो उसके लिए सबसे पहले उन कारकों का ज्ञान आवश्यक है जो कि उस प्रकार के व्यभिचार को उत्पन्न करते हैं। अन्वेषणात्मक शोध–प्ररचना इन्हीं कारकों के खोज निकालने की एक योजना बन सकती है। इसी प्रकार कभी–कभी समस्या के चुनाव और शोध–कार्य के लिए उसकी उपयुक्तता के सम्बन्ध में हमें अन्य किसी स्रोत से कुछ ज्ञान प्राप्त नहीं हो पाता है। उस अवस्था में अन्वेषणात्मक शोध–प्ररचना की सहायता से हमें पर्याप्त सहायता मिल सकती है।

अन्वेषणात्मक अभिकल्प की अनिवार्यताएँ :

अन्वेषणात्मक अभिकल्प के निर्माण की सर्वप्रथम अनिवार्यता अनुसंधानकर्त्ता की योग्यता व अनुभव है। इसके साथ–साथ इस अभिकल्प की कुछ अन्य अनिवार्यताएँ भी हैं जिनका वर्णन आगे किया जा रहा है :

1. संबंधित साहित्य का अध्ययन (Study of the Pertient Literature) : सामाजिक अनुसंधान में मितव्ययिता के लिए, दूसरे अनुसंधानकर्त्ताओं द्वारा संपादित अध्ययन कार्यों का सिंहावलोकन आवश्यक है। अन्वेषणात्मक अभिकल्प में इस सिंहावलोकन को उपकल्पनाओं की खोज पर केंद्रित किया जाता है। फलस्वरूप सर्वेक्षण का कार्य सरल हो जाता है। अनेक समस्याओं के संबंध में अन्य उपकल्पनाएं भी प्राप्त होती हैं। अतः ऐसे अवसरों पर अन्वेषण पद्धति द्वारा कार्य करने वाला अनुसन्धानकर्त्ता उन समस्त उपलब्ध उपकल्पनाओं को संकलित कर, आगामी अध्ययन के आधार के लिए उनकी उपयोगिता का मूल्यांकन करता है। इसके विपरीत उन क्षेत्रों में जहां पूर्व प्रतिस्थापित उपकल्पना उपलब्ध नहीं है वहां अनुसंधानकर्त्ता उपलब्ध साहित्य का अनुशीलन करता है और प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर उपकल्पना का निरूपण करता है।

2. अनुभवपूर्ण सर्वेक्षण (Experience Survey) : समाज में अनेक ऐसे व्यक्ति होते हैं, जो अपने व्यावहारिक अनुभव द्वारा मानवीय संबंधों में उत्पन्न प्रतिक्रियाओं को समझने में समर्थ होते हैं, किंतु व्यस्त जीवन के कारण अपने अनुभव एवं ज्ञान का लिखित प्रतिपादन नहीं कर सकते। उदाहरण के लिए किसी सांस्कृतिक संस्था का व्यवस्थापक अथवा किसी व्यवसायी संघ का जनसंपर्क अधिकारी अनेक दैनिक कार्यों द्वारा सामाजिक जीवन की

अनेक समस्याओं से भलीभांति अवगत होता है। इस प्रकार के व्यक्तियों का ज्ञान व अनुभव, अनुसन्धानकर्त्ता के लिए उपयोगी होता है। इन समस्त अनुभवों के आधार पर, अनुसन्धानकर्त्ता प्रभावकारी तत्त्वों को समझने में समर्थ होता है जो अध्ययन की समस्या में गतिशील रहते हैं। इसलिए इन अनुभवी व्यक्तियों के ज्ञान से लाभ उठाने के लिए अनुसंधानकर्त्ता का उनके साथ संपर्क स्थापित करना एवं समस्या से संबंधित प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करना आवश्यक है। यह कार्य अनुभवपूर्ण सर्वेक्षण द्वारा संपन्न होता है।

3. सूचनादाताओं का चयन (Selection of Respondents) : अन्वेषणात्मक अभिकल्प में अनुभवी सूचनादाताओं को निर्वाचित करना आवश्यक है। इस प्रकार के निर्वाचन का मुख्य उद्देश्य, समस्या की वस्तुस्थिति का ज्ञान प्राप्त करना है। अतएव सूचनादाताओं का निर्वाचन उनके अनुभव को दृष्टि में रखकर होना चाहिए। दूसरे शब्दों में सूचना–प्राप्ति के लिए केवल उसी सूचनादाता का चुनाव वांछनीय है, जो समस्या की वास्तविकता के ऊपर प्रकाश डालने में समर्थ हो। अतएव एक अनुभवपूर्ण सर्वेक्षण (Experience Survey) में उन व्यक्तियों से साक्षात्कार करना निरर्थक है जो समस्या के संबंध में विवरण प्रदान करने के लिए उपयुक्त नहीं हैं या जिनका ज्ञान सीमित है अथवा जिन्हें केवल ज्ञान है किंतु उसे अभिव्यक्त करने में समर्थ नहीं है। इसलिए सूचनादाताओं के निर्वाचन की सबसे प्रत्यक्ष पद्धति यह है कि केवल उन व्यक्तियों को सूचना प्रदान करने के लिए चुना जाये, जो समस्या से संबंधित क्षेत्र में किसी महत्त्वपूर्ण पद पर कार्य कर रहे हों। साथ ही जिनमें सामाजिक समस्याओं के प्रति विश्लेषण की अभिरुचि हो।

4. सूचनादाताओं से प्रश्न (Questioning of Respondents) : समस्या के संबंध में ज्ञान एवं अनुभव की प्राप्ति के लिए सूचनाओं के निर्वाचन के बाद उनके समक्ष वांछनीय प्रश्नों को पेश करना आवश्यक है। इन प्रश्नों के निरूपण से पूर्व समस्या से संबंधित प्राथमिक धारणाओं (Concepts) का ज्ञान होना आवश्यक है। इन धारणाओं की प्राप्ति का प्रधान स्रोत विवरणात्मक सर्वेक्षण (Bibillographical Survey) है। इस प्रकार के सर्वेक्षक द्वारा प्राप्त सूचनाओं के अनुपूरक के लिए उन व्यक्तियों का साक्षात्कार करना आवश्यक है, जिन्हें अध्ययन के क्षेत्र का अनुभव एवं ज्ञान है। किंतु इस संबंध में कितने व्यक्तियों का साक्षात्कार किया जाये, इसके लिए निश्चित नियम नहीं है।

5. अनुभवपूर्ण सर्वेक्षण का उपयोग (Use of Experience Survey) : अन्वेषणात्मक अभिकल्प में अनुभवपूर्ण सर्वेक्षण अनेक दृष्टि से उपयोगी है। अध्ययन की प्रारंभिक प्रक्रिया की दृष्टि से अनुभवपूर्ण सर्वेक्षण समस्या से संबंधित उपकल्पनाओं को प्रदान करते हैं, जिन पर आगामी चरण आधारित होते हैं। इसके अतिरिक्त इस प्रकार के सर्वेक्षण सूचनाएं प्रदान करते हैं। जिनके आधार पर अनुसन्धान के लिए उस पद्धति को अपनाया जाता है जिसका समस्या के संदर्भ में व्यावहारिक उपयोग संभव है।

6. प्रेरक घटनाओं का विश्लेषण (Analysis of Insight Stimulating Cases) : निरीक्षण–प्रेरक घटनाओं का विश्लेषण, अन्वेषणात्मक अभिकल्प का तृतीय आधार है। इसका तात्पर्य उन घटनाओं के विश्लेषण एवं अनुशीलन से है जो अनुसन्धानकर्त्ता को प्रेरित करती हैं तथा उप–कल्पनाओं की प्रतिस्थापना के लिए उपयोगी विचारों को विस्तृत करती हैं। इनमें वैयक्तिक विषय अध्ययन प्रमुख हैं। वैयक्तिक विषय अध्ययन अनुसन्धानकर्त्ता के प्रोत्साहन का प्रधान स्रोत है। इसके अंदर निम्नलिखित तथ्य हैं :

(क) सर्वेक्षक का दृष्टिकोण (Attitude of Investigator) : वैयक्तिक विषय के अध्ययन में सर्वेक्षक का दृष्टिकोण महत्त्वपूर्ण होता है, जिसके फलस्वरूप वह उपलब्ध उप–कल्पनाओं के परीक्षण में केंद्रित नहीं होता बल्कि अध्ययन वस्तु की विशिष्टताओं से प्रभावित होता है।

(ख) वैयक्तिक अध्ययन की गहनता (Intensity of Case Study) : वैयक्तिक अध्ययन की दूसरी विशेषता, इसके अध्ययन स्तर की गहनता है। वैयक्तिक का तात्पर्य केवल किसी व्यक्ति विशेष में नहीं। समूह, समुदाय इत्यादि को एक इकाई मानकर वैयक्तिक अध्ययन की संज्ञा दी गई। वैयक्तिक अध्ययन में विषय का सर्वांगीण अध्ययन किया जाता है।

(ग) सर्वेक्षक की संगठित शक्तियां (Integrative Powers of Investigator) : वैयक्तिक अध्ययन की तृतीय प्रोत्साहक विशेषता, सर्वेक्षण की वह शक्ति है जिसके अनुसार, वह विषय से संबंधित सूक्ष्म–से–सूक्ष्म सूचना को भी संकलित करता है।

(घ) सर्वेक्षक के लिए प्रेरक घटनाएं (Motivating Events for Surveyor) : निरीक्षण प्रेरक घटनाओं के चयन के लिए कोई पूर्व निश्चित नियम नहीं होता। सामान्य रूप से निम्न प्रकार की घटनाएं अनुसंधानकर्त्ता को प्रेरित करती हैं :

(i) अपरिचितों की प्रतिक्रियायें (Reactions of Strangers) : किसी समुदाय की विशेषताओं के अध्ययन के लिए, अपरिचित व्यक्तियों द्वारा प्रकट की गई प्रतिक्रियाएं महत्त्वपूर्ण होती हैं। अतः अपरिचित व्यक्ति की प्रतिक्रियाएं भी सामुदायिक जीवन की विशेषताओं की ओर, ध्यान आकर्षित करती हैं। इन प्रक्रियाओं को यात्रियों के वृतांतों में देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए प्राचीनकाल में फाहयान, मेगास्थानीज इत्यादि विदेशी यात्री भारत आये। अपने संस्मरणों में, उन्होंने भारतीय समाज का जो चित्रण किया है, उसे दूसरे शब्दों में, भारत की तत्कालीन स्थिति के प्रति उनकी प्रतिक्रिया की कह सकते हैं। ऐसे वृतांत सर्वेक्षण प्रेरणा के स्रोत रहे हैं।

(ii) सीमांत व्यक्तियों द्वारा वर्णन (Description by Marginal Individuals) : सीमांत व्यक्तियों से तात्पर्य उन व्यक्तियों से है जो न किसी समुदाय में सम्मिलित हैं और न पूर्णतया समुदाय से पृथक हैं। अर्थात् वे व्यक्ति जो एक सांस्कृतिक समुदाय से दूसरे सांस्कृतिक समुदाय में आते रहते हैं। इनकी स्थिति समुदायों के मध्यम की स्थिति है। अतएव इस तरह के व्यक्ति प्रत्येक समुदाय के प्रभावों को स्पष्ट रूप से प्रकट कर सकते हैं।

(iii) संक्रमणकालील समस्याएं (Transitional Cases) : सर्वेक्षक की प्रेरणा के लिए ऐसी समस्याएं भी महत्त्वपूर्ण होती हैं जिनमें विकासक्रम जारी रहता है। अर्थात् ये घटनाएं एक स्तर से दूसरे स्तर में अग्रसर होती रहती हैं। उदाहरण के लिए बच्चे को अबोध अवस्था से विकसित होकर, एक पूर्ण वयस्क के रूप में बदल जाना। बच्चे का यह विकास, भिन्न प्रक्रमों तथा सामाजिक व मनोवैज्ञानिक लक्षणों को दर्शाता है।

(iv) व्याधिशास्त्र समस्याएं (Pathological Cases) : व्याधिशास्त्रीय समस्याएं भी सर्वेक्षक को अध्ययन के लिए प्रेरित करती हैं। इनसे सामाजिक विघटन होता है। अतः इनका स्वरूप संगठनात्मक शक्तियों से भिन्न होता है।

(v) स्पष्ट समस्याएं (Uncomplicated Cases) : स्पष्ट समस्याओं का तात्पर्य उन समस्याओं से है जिनका स्पष्टीकरण जटिल नहीं है और जिनका अध्ययन सरलतापूर्वक किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि मानसिक बीमारियों तथा सामाजिक वातावरण के संबंधों का अध्ययन करना है तो विभिन्न मानसिक अवस्थाओं के ऊपर विचार करना आवश्यक है। समस्या की सरलता उसके स्पष्टीकरण में सहायक होती है। साथ ही सर्वेक्षक को प्रोत्साहित भी करती है।

(vi) व्यक्तियों की विशेषताएं (Characteristics of Individuals) : प्रत्येक व्यक्ति की कुछ पृथक् विशेषताएं होती हैं। व्यक्ति की विशेषताएं जिस सामाजिक स्थिति के लिए अनुकूल होती हैं, उसके लिए दूसरे व्यक्ति की विशेषताएं अनुकूल नहीं होती। इन विशेषताओं की पारस्परिक भिन्नता से परिस्थिति के ऊपर प्रकाश पड़ता है।

7. सामाजिक संरचना में विभिन्न स्थितियां (Different Positions in Social Structure) : अध्ययन के लिये, सामाजिक संरचना की प्रत्येक स्थिति का प्रतिनिधित्व करने वाली समस्याएं स्थिति के संबंध में एक स्वस्थ दृष्टिकोण प्रदान करती हैं। अधिकांश सामाजिक समूहों में व्यक्तियों के सामाजिक स्तर और कार्यों के बीच भिन्नता पाई जाती है। इस प्रकार व्यक्ति अपने विभिन्न स्तरों से स्थिति का पर्यावलोकन करता है। यदि उनके दृष्टिकोणों से समस्या का अवलोकन किया जाये तो समस्या से संबंधित अनुभव की वृद्धि होती है। परिणामस्वरूप सर्वेक्षण को प्रोत्साहन मिलता है। इस प्रकार उपर्युक्त समस्यायें अन्वेषणात्मक अभिकल्प में, अनुसन्धानकर्त्ता को प्रेरित करती हैं। यह प्रेरणा अनुसन्धानकर्त्ता के लिये, अनुसंधानकर्त्ता की प्राथमिक प्रक्रियाओं को पूरा करने के लिए, विशेष रूप से उपयोगी है। इन्हीं विशेषताओं के कारण अन्वेषणात्मक या निरूपणात्मक अभिकल्प सामाजिक अनुसंधान के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है – क्योंकि यह निरीक्षण एक गहन अध्ययन पर आधारित है।

अन्वेषणात्मक अभिकल्प का महत्त्व :

अन्वेषणात्मक अभिकल्प का सामाजिक अनुसन्धानों में निम्नलिखित महत्त्व है :

1. तात्कालिक स्थिति संबंधी सूचना : कार्य की दृष्टि से अन्वेषणात्मक अथवा निरूपणात्मक अभिकल्प, समस्या की तात्कालिक स्थितियों के संबंध में सूचनाएं प्रदान करता है, जिनके आधार पर पूर्व प्रतिस्थापित उपकल्पना का परीक्षण किया जाता है। साथ ही यह विभिन्न प्रकार की अध्ययन प्रणालियों को प्रयोग में लाने की व्यावहारिक संभावनाओं को स्पष्ट करता है।

2. महत्त्वपूर्ण समस्याओं को प्रस्तुत करना : अन्वेषणात्मक अथवा निरूपणात्मक अभिकल्प का द्वितीय कार्य सामाजिक महत्त्व की समस्याओं को प्रस्तुत करना है। इसका तात्पर्य उन समस्याओं की ओर अनुसंधानकर्त्ता को प्रेरित करना है जो अत्यंत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि

महत्त्पूर्ण समस्याओं के अभिकल्प की सामाजिक उपयोगिता, उन समस्याओं के अध्ययन से अधिक हैं जिनका सामाजिक महत्त्व अधिक नहीं है।

3. अपरिचित क्षेत्र का अध्ययन : अन्वेषणात्मक अभिकल्प अनुसन्धान की दीर्घकालीन आयोजनों की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। दीर्घकालीन अनुसंधान के लिये सिद्धांत (Theory) तथा उपकल्पना का व्यवस्थित आधार आवश्यक है लेकिन एक अपरिचित क्षेत्र के अध्ययन में ये आधार उपलब्ध नहीं होते हैं। अतएव इनकी प्राप्ति के लिए अन्वेषणात्मक अभिकल्प समस्या के विविध पक्षों के संबंध में जानकारी प्रदान करता है।

4. अनुसन्धान का प्रारंभ : उपयुक्त कार्यों के अतिरिक्त, अनुसंधान कार्य को प्रारंभ करने की दृष्टि से भी अन्वेषणात्मक अभिकल्प महत्त्वपूर्ण है। जहोडा और कुक के अनुसार, "प्रयोग में, किसी भी अध्ययन का सबसे जटिल भाग उसको आरंभ करने का है। अध्ययन के अनुवर्ती स्तरों पर सतर्क पद्धतियों की बहुत कम उपयोगिता है यदि उसका प्रारंभ गलत एवं असंगत हुआ है।" ('In practice, the most difficult portion of any enquiry is its initiation. The most careful methods during the letter stages of an investigation are of little value if an incorrect or irrelevant start has been made")

इसलिए अन्वेषणात्मक अभिकल्प का प्रमुख कार्य, अध्ययन के आरंभ में उपयोगी उपकल्पना के निर्धारण में आवश्यक सूचनाओं को एकत्रित करना है। यदि उपकल्पना यथार्थ है और उसका आधार सैद्धांतिक है, तो अनुसंधान कार्य सफल एवं उपयोगी होता है।

5. सैद्धांतिक महत्त्व : इनके अतिरिक्त समाज–विज्ञान की अनेक शाखाओं के अंतर्गत अन्वेषणात्मक अभिकल्प को अधिक महत्त्व नहीं दिया गया और अभिकल्प के उसी अंश को वैज्ञानिक अध्ययन स्वीकार किया गया, जिसका आधार परीक्षणात्मक था। किंतु परीक्षणात्मक अभिकल्प के लिए, सामाजिक तथा सैद्धांतिक महत्त्व का होना अत्यंत आवश्यक है। विशेषकर समाज–विज्ञान में अभिकल्प को केवल परीक्षण की विषय–वस्तु तक ही सीमित न होकर, व्यापक समस्याओं तक विस्तृत होना चाहिए। यह केवल अन्वेषणात्मक पद्धति द्वारा ही संभव होता है। इस प्रकार अन्वेषण अभिकल्प, विज्ञान को परंपरागत सीमाओं में युक्त कर, उसके अध्ययन–क्षेत्र का विकास करता है।

6. अनिश्चित समस्याओं का निर्धारण : अन्वेषणात्मक अभिकल्प का एक महत्त्वपूर्ण कार्य अनिश्चित समस्याओं के अध्ययन को निश्चित करना है। इसमें नवीन खोज पर बल दिया जाता है। अतः समस्या के प्रारंभिक रूप को अध्ययन की प्रक्रिया आरंभ करने के बाद अंतिम रूप दिया जाता है। साथ ही निरीक्षण द्वारा समस्या के केंद्रीय स्वरूप का ध्यान एकाग्र किया जाता है। इस प्रकार अन्वेषणात्मक अभिकल्प द्वारा समस्या को निश्चित स्वरूप दिया जाता है और उसके पक्ष विशेष पर अध्ययन को केंद्रित किया जाता है।

अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना के उद्देश्य

(Objects of Exploratory Research Design)

अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना के अनेक उद्देश्य, प्रकार्य या प्रयोजन हो सकते हैं। प्रमुख रूप से एक अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना के चार उद्देश्य हो सकते हैं जो निम्नॉकित हैं :

1. अनुसन्धान विषय की जानकारी करना : अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना का एक मुख्य उद्देश्य या प्रकार्य (Function) यह हो सकता है कि यदि हम किसी ऐसे विषय के बारे में अनुसन्धान करना चाहते हैं जिस पर पहले अनुसन्धान नहीं हुआ है तो उस विषय या समस्या का परिचय या जानकारी प्राप्त करनी होगी। उदाहरण के लिए, जैसे हम किसी संस्था का अध्ययन करना चाहें तो पहले हमें यह पता लगाना पड़ेगा कि यह संस्था कब, किसने व क्यों स्थापित की? इसकी स्थापना के पीछे कौन से कारण थे? इसका आय–व्यय क्या है? आदि। इस प्रकार हमें सबसे पहले अनुसन्धान विषय की जानकारी करनी होती है।

2. अनुसन्धान की सम्भावनाओं एवं क्षेत्र का निर्णय : अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना का दूसरा उद्देश्य है अनुसन्धान की सम्भावनाओं का पता लगाना। इस प्रकार का अध्ययन वर्णनात्मक अनुसन्धान प्ररचना का मार्ग प्रशस्त करता है। बड़े एवं अधिक धन वाले अध्ययनों से पहले हमें इस बात की जानकारी प्राप्त की जानी चाहिए कि हमारा मार्ग सही है। अन्यथा हो सकता है, हम व्यर्थ ही समय एवं धन को व्यर्थ व्यय कर बैठें? इसी प्रकार सामाजिक अनुसन्धान में हम अन्वेषणात्मक प्ररचना से यह पता लगाते हैं कि किसी विषय–विशेष में अनुसन्धान की क्या वास्तविक सम्भावनाएँ हैं। जैसे यदि हम किसी

सरकारी संगठन का अध्ययन करना चाहते हैं तो सम्भव है वहाँ यह कठिनाई हो कि उसके तथ्य एवं आँकड़े सरकार गोपनीय मानती हो। यदि हम अन्वेषणात्मक अध्ययन करें तो यह बात हमें पहले ही ज्ञात हो जाएगी कि सरकार से उनकी अनुमति प्राप्त हो जाएगी तो हम विषय को छोड़ देंगे। इसी प्रकार अन्वेषणात्मक प्ररचना से हम विषय का क्षेत्र निर्धारण भी ठीक प्रकार कर सकेंगे।

3. अवधारणाओं का स्पष्टीकरण एवं नवीन अवधारणाओं की खोज : अन्वेषणात्मक अनसुन्धान प्ररचनाओं का एक और उद्देश्य हो सकता है अवधारणाओं का स्पष्टीकरण एवं नवीन अवधारणाओं की खोज। वस्तुत : किसी भी वैज्ञानिक अध्ययन में यदि हमारी अवधारणाएँ स्पष्ट न हों तो हमारे अनुसन्धान कार्य का मूल्य बहुत कम हो जाने की सम्भावना है। दूसरे शब्दों, सें, यह कहा जा सकता है कि हम यह भी नहीं जानते कि हम किसका अध्ययन कर रहे हैं। जैसे यदि हम किसी संस्था की कार्यकुशलता का अध्ययन कर रहे हैं तो हमारा अध्ययन तब तक पूर्ण नहीं होगा जब तक कि हम यह भी 'न' जानें कि 'कार्यकुशलता' की अवधारणा क्या है? एवं यह किस प्रकार 'लाभ' व अन्य समानार्थक अवधारणाओं से भिन्न है?

इसके अलावा अवधारणाएँ सैद्धान्तिक संरचना (Theoretical Structure) की आधार होती है इसलिए नई सैद्धान्तिक संरचना के लिए कभी–कभी नवीन अवधारणाओं की रचना की जाती है। मार्क्स का 'वर्ग–संघर्ष', वेबर का 'आदर्श प्रारूप' (Ideal Type) आदि इसी प्रकार की नवीन अवधारणाएँ हैं। यहाँ अनुसन्धानकर्त्ता किसी पुरानी अवधारणा की नवीन परिभाषा भी कर सकता है, जैसे कार्ल मार्क्स ने 'वर्ग' (Class) के सन्दर्भ में की। इस प्रकार दोनों ही आधारों में अवधारणाओं का उपयोग अन्वेषणात्मक प्ररचना से बढ़ जाता है।

4. उपकल्पनाओं का निर्माण : अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना का एक और उद्देश्य उपकल्पनाओं का निर्माण है। ये उपकल्पनाएँ अनुसन्धान में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती हैं', वर्णनात्मक अध्ययनों में भी इन उपकल्पनाओं का अत्यन्त महत्त्व होता है। किसी भी वैज्ञानिक अध्ययन का उद्देश्य होता है सिद्धान्तों का परीक्षण। सिद्धान्त उपकल्पनाओं के तन्त्र होते हैं इसलिए क्रियात्मक दृष्टिकोण से हमारा उद्देश्य उपकल्पनाओं का परीक्षण हो जाता है। इस प्रकार उपकल्पनाएँ वैज्ञानिक अध्ययन को दिशा देती हैं। ये बताती हैं कि हमें किन लक्षणों एवं सम्बन्धों का अध्ययन करना है। इस प्रकार विषय का समस्या से

परिचय प्राप्त करके, उसका निरूपण करके, इन मुख्य उद्देश्यों या प्रकार्यों के अतिरिक्त अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना के कुछ उद्देश्य और बताए जा सकते हैं, जैसे –

1. अनुसन्धानकर्त्ता को प्रघटना के बारे में जागरूकता एवं समझ प्रदान करना।

2. भविष्य में आने वाले अनुसन्धान के विषय में प्रधानता या प्रमुखता (Priorities) की स्थापना करना।

3. सामाजिक महत्त्व की समस्याओं की ओर अनुसन्धानकर्त्ता को प्रेरित करना।

4. समस्या के किसी क्षेत्र में अध्ययन को केन्द्रित किया जाए, इसका निर्धारण करना।

5. विज्ञान को परम्परागत सीमाओं से मुक्त करके उसके अध्ययन–क्षेत्र का विकास करना।

अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना के लिए कुछ आवश्यकताओं या अनिवार्यताओं का होना भी आवश्यक होता है। वस्तुत : अन्वेषणात्मक प्ररचना में सबसे बड़ी कठिनाई समस्या का उपयुक्त चुनाव करने की है। सामान्यत : समस्या का चयन करते समय निम्न बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए –

1. समस्या का सामाजिक महत्त्व,

2. समस्या का व्यावहारिक परिप्रेक्ष्य, एवं

3. विश्वसनीय तथ्यों की प्राप्ति की सम्भावनाएँ।

अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना की विधियाँ

(Methods of Exploratory Research Designs)

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि अनुसन्धान का अन्वेषणात्मक प्रारूप प्राथमिक दिशाएँ प्रदान करता है। इसका महत्त्व इसलिए भी बढ़ जाता है; क्योंकि प्रारम्भिक दृष्टिकोण निश्चित करने में भी यह सहयोगी सिद्ध होता है। जब तक किसी अनुसन्धानकर्त्ता को समस्या की सुस्पष्ट व्याख्या व उसके सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्यों तथा प्रयोगात्मक पक्षों का ज्ञान नहीं होगा, तब तक वह अनुसन्धान करने में समर्थ नहीं हो पाएगा। अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना की कुछ विधियाँ/पद्धतियाँ होती हैं, जो प्रमुखत : निम्न हैं–

1. सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण एवं सिंहावलोकन।

2. आनुभविक व्यक्तियों से सर्वेक्षण।

3. एकल–विषय अध्ययन (Case-Studies)।

इस विधियों को हम थोड़ा विस्तार से देखेंगे –

1. सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण एवं सिंहावलोकन

किसी भी अनुसन्धान कार्य को प्रारम्भ करते समय उसकी समालोचना करते समय हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि हमें शून्य से प्रारम्भ नहीं करना है। आज शायद ही कोई ऐसा विषय हो जिस पर कुछ भी काम न हुआ हो। अतः अनुसन्धानकर्त्ता को सबसे पहले यह पता लगाना चाहिए कि उस विषय पर क्या ज्ञान हो चुका है। अतः हमें उस विषय पर उपलब्ध साहित्य का सर्वेक्षण एवं सिंहावलोकन करना चाहिए। इस सर्वेक्षण व सिंहावलोकन के परिणामस्वरूप उसे यह पता चल जाएगा कि उस विषय से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त कौन–कौन से हैं? इन सिद्धान्तों के प्रकाश में उसे बहुत–सी नवीन उपकल्पनाएँ भी सूझ जाएँगी। पिछली उपकल्पनाओं को एकत्र करके अनुसन्धान के सन्दर्भ में उनकी उपयोगिता को देखकर भी नवीन उपकल्पनाएँ बनाई जा सकती हैं।

इसी प्रकार सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण एवं सिंहावलोकन के लिए वर्तमान में अनेक उपकरण भी प्रचलित हैं, जैसे –

A) संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography),

B) लेखों के साराँश (Summary),

C) अनुक्रमणिका (Index).

वर्तमान में लगभग प्रत्येक विषय की विभिन्न शाखाओं–उपशाखाओं से सम्बन्धित साहित्य की सूचियाँ, अनुक्रमणिका, सन्दर्भ ग्रन्थ–सूचियाँ आदि पुस्तकालयों में उपलब्ध हो जाती हैं। अतः इसकी सहायता से अनुसन्धानकर्त्ता को अपने विषय के लगभग कुछ प्रकाशित साहित्य के विषय में पता लग जाता है। फिर टिप्पणियों (References) की सहायता से वह पढ़ने योग्य पुस्तकें और लेख इनमें से चुन सकता है। दूसरा सहायक उपकरण है साराँश। कुछ संस्थाएँ अनुसन्धान लेखों व अनुसन्धान ग्रन्थों के साराँश पत्रिकाओं के रूप में प्रकाशित करती हैं। इन्हें पढ़ने से अनुसन्धानकर्त्ता को साराँश का पता

लग जाता है और वह आवश्यकतानुसार अपने मतलब की अध्ययन सामग्री का चयन उसमें से कर सकता है। पुस्तकों को पूरी आद्योपाँत पढ़ने की भी आवश्यकता उसे नहीं है। यहाँ अनुक्रमणिका (Index) उसकी मदद करती है। इस प्रकार अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना में हम सबसे पहले सम्बन्धित अनुसन्धान साहित्य का सर्वेक्षण एवं सिंहावलोकन कर लेते हैं।

2. आनुभविक व्यक्तियों से संरक्षण :

समाज विज्ञान की प्रयोगशाला सम्पूर्ण समाज है और अनुभव के द्वारा इसे परिपुष्टता प्राप्त होती है। किसी भी विषय के साथ परिचय प्राप्त करने का सीधा ढंग है अनुभवी व्यक्तियों से बातचीत। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अनुभव द्वारा हमें ऐसी अनेक जानकारियाँ प्राप्त होती हैं जो न तो हमें ज्ञात थीं, न लिखित रूप में उपलब्ध थीं और न ही जिनके बारे में हम सोच भी सकते थे। इसलिए समस्याओं का जितना ज्ञान अनुभवी व्यक्तियों को होता है, दूसरों को नहीं। उनसे बातचीत करके हम सहज ही मूल्यवान उपकल्पनाएँ प्राप्त कर सकते हैं फिर चाहे ये उपकल्पनाएँ हमें सुझाएँ या वे हमें स्वयं सूझ जाएँ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुछ विशेष प्रकार के व्यक्ति समस्या के क्षेत्र पर अन्य व्यक्तियों की तुलना में अधिक सामग्री प्रदान कर सकते हैं और उपकल्पनाओं के निर्माण के लिए अधिक आवश्यक सूचना प्रदान कर सकते हैं। सेलिज, जहोदा एवं अन्य ने इन विशिष्ट व्यक्तियों की श्रेणी में निम्नाँकित को सम्मिलित किया है :

1. अजनबी एवं नवागन्तुक

2. सीमान्त व्यक्ति (Marginal Man) जो एक साँस्कृतिक समूह से दूसरे साँस्कृतिक समूह में आते–जाते रहते हैं तथा दोनों समूहों से अपने सम्पर्क बनाए रखते हैं।

3. वे व्यक्ति जो विकास की एक स्थिति से दूसरी स्थिति की ओर संक्रमण काल में हैं।

4. विचलनपूर्ण व्यक्ति, एकाकी व्यक्ति तथा समस्याग्रस्त व्यक्ति।

5. विशुद्ध, आदर्श अथवा जटिलताविहीन व्यक्ति।

6. अत्यधिक सामंजस्य की स्थिति में पाए जाने वाले व्यक्ति।

7. सामाजिक संरचना के अन्तर्गत विभिन्न स्थितियों का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्ति।

8. जाँच–पड़ताल करने वाले व्यक्तियों के अपने अनुभव का पुनरावलोकन तथा उसकी निजी प्रक्रियाओं की परीक्षा।

3. एकल–विषय अध्ययन :

अनुसन्धान प्ररचना के अन्वेषणात्मक प्रारूप की एक और महत्त्वपूर्ण पद्धति एकल–विषय अध्ययन (Case-Study) है। इसका साधारण आशय है किसी एक मामले (Case), समूह (Group), व्यक्ति (Individual), संस्था (Institution) या घटना का सर्वांगीण एवं गहन अध्ययन। इस प्रकार एकल–विषय अध्ययन मूल में किसी विशिष्ट इकाई का अध्ययन करता है।

इस प्रकार के अध्ययन अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना में महत्त्वपूर्ण होते हैं क्योंकि प्रथम तो यह अध्ययन सर्वांगीण होता है। इसमें हम सभी अंगों का अध्ययन करते हैं। दूसरा, एकल–विषय अध्ययन हमें इस इकाई का उसकी समग्रता में अध्ययन करते हैं। तीसरा, यह गहन (Deep) अध्ययन होता है। इस प्रकार यह मूल में ही एक प्रकार से अन्वेषणात्मक पद्धति है। इस प्रकार अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना की उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि यह मूलत : उन आधारों को प्रस्तुत करता है जो कि एक सफल अनुसन्धान कार्य के लिए महत्त्वपूर्ण होता है। सेलिज, ज्योदा एवं उनके सहयोगियों ने लिखा है कि "अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना उस अनुभव को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है जो कि अधिक निश्चित अनुसन्धान हेतु सम्बन्धित उपकल्पना के निरूपण में सहायक होगा।"

4.4.7 वर्णनात्मक अनुसन्धान प्ररचना :

विषय या समस्या के सम्बन्ध में वास्तविक तथ्यों के आधार पर वर्णनात्मक विवरण प्रस्तुत करना वर्णनात्मक शोध–प्ररचना का मुख्य उद्देश्य है। इसके लिए यह आवश्यक होता है कि विषय के सम्बन्ध में हमें यथार्थ तथा पूर्ण सूचनाएँ प्राप्त हो जाएँ, क्योंकि इनके बिना अध्ययन–विषय या समस्या के सम्बन्ध में हम जो कुछ भी वर्णनात्मक विवरण प्रस्तुत करेंगे वह वैज्ञानिक न होकर केवल दार्शनिक ही होगा। वैज्ञानिक वर्णन का आधार वास्तविक व विश्वसनीय तथ्य ही है। अतः यदि हमें किसी समुदाय की जातीय संरचना, शिक्षा स्तर,

आवास (Housing) अवस्था, आयु–समूह, परिवार के प्रकार आदि का वर्णनात्मक विवरण प्रस्तुत करना है तो हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम इनमें सम्बद्ध वास्तविक तथ्यों को किसी एक या एकाधिक वैज्ञानिक प्रविधि के द्वारा एकत्रित करें। इसके लिए आवश्यक यह है कि अपने उद्देश्य को सामने रखते हुए एक शोध–प्ररचना (Research Design) को विकसित किया जाए। जिस शोध प्ररचना का उद्देश्य वर्णनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करना होता है उसे वर्णनात्मक शोध–प्ररचना कहते हैं।

इस प्रकार की शोध–प्ररचना में तथ्यों का संकलन किसी भी वैज्ञानिक प्रविधि (Technique) के द्वारा किया जा सकता है। प्रायः साक्षात्कार (Interview), अनुसूची व प्रश्नावली (Schedule and questionnaire), प्रत्यक्ष निरीक्षण, सहभागी–निरीक्षण (Participant Observation), सामुदायिक रिकार्ड (Community record) का विश्लेषण आदि प्रविधियों को वर्णनात्मक शोध–प्ररचना में सम्मिलित किया जाता है।

वर्णनात्मक शोध– प्रारूप के आवश्यक तत्त्व :

वर्णनात्मक शोध–प्ररचना का निर्माण करते समय कुछ आवश्यक तत्त्वों को ध्यान में रखना आवश्यक है। ये तत्त्व निम्न प्रकार से हैं :

(अ) सर्वप्रथम तो अध्ययन–विषय के चुनाव में सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है क्योंकि शोध का विषय इस प्रकार का होना चाहिए जिससे सम्बद्ध आवश्यक व निर्भर योग्य तथ्य हमें प्राप्त हो सकें। वर्णनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करने की सर्वप्रथम शर्त यही है।

(ब) दूसरी बात यह है कि इन तथ्यों को जिन प्रविधियों (Techniques) के द्वारा सबसे अधिक उपयुक्त रूप में संकलित किया जा सके उनका चुनाव भी खूब सावधानी से होना चाहिए। किसी भी शोध–कार्य की यथार्थता प्रविधियों के उचित चुनाव पर निर्भर करती है। वर्णनात्मक शोध–कार्य में इस प्रकार के चुनाव का और भी अधिक महत्त्व इस कारण है कि यदि चुनाव ठीक ढंग से नहीं किया गया। तो शोध–कार्य में वैज्ञानिकता पनपने के स्थान पर उसमें दार्शनिक तत्त्वों का अधिक प्रवेश हो जाएगा।

(स) मिथ्या–झुकाव आदि से सुरक्षा इस दिशा में तीसरी महत्त्वपूर्ण ध्यान देने योग्य बात है। चूँकि इस प्रकार के शोध में विषय के वर्णनात्मक पक्ष पर बल दिया जाता है, अतः पक्षपात, मिथ्या–झुकाव (Bias), पूर्वधारणा आदि के वर्णनात्मक विवरण में प्रवेश कर जाने की

सम्भावना अधिक रहती है। अपने वर्णन को अधिक रोचक तथा आकर्षक बनाने का लोभ संभालना प्रायः बहुत कठिन हो सकता है और शोधकर्त्ता के वर्णन में अति–श्योक्ति या अतिरंजना का पुट सरलता से देखने को मिलता है। अतः हर प्रकार की स्थिति से बचने की आवश्यकता है।

(द) विशिष्ट व आकर्षक तथ्यों के सम्बन्ध में भी अति संतुलित दृष्टिकोण को अपनाने की आवश्यकता है। वर्णनात्मक विवरण को एक 'साधारण' रूप प्रदान करने के लिए प्रायः शोधकर्त्ता अपना ध्यान आकर्षक व विशिष्ट तथ्यों पर अधिक केन्द्रित कर सकते हैं। पर यह 'प्रवृत्ति' वैज्ञानिक प्रवृत्ति नहीं हो सकती।

(य) अन्त में शोध के व्यय में मितव्ययिता करने की भी आवश्यकता होती है। वर्णनात्मक शोध–कार्य प्रायः विस्तृत होते हैं; अतः यह जरूरी है कि शोध–प्रयत्न को सीमित किया जाए। अनावश्यक मदों (Items) पर न तो श्रम और न ही धन को बर्बाद करना उचित होता है।

वर्णनात्मक अनुसन्धान अभिकल्प के उद्देश्य :

वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प के भी कुछ महत्त्वपूर्ण उद्देश्य हैं। संक्षेप में इन उद्देश्यों को तीन वर्गों में प्रस्तुत किया जा सकता है :

1. समूह अथवा परिस्थिति के लक्षणों का परिशुद्ध वर्णन : वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प में हम किसी समूह जैसे कोई राजनीतिक दल (Political Party) अथवा किसी परिस्थिति जैसे हड़ताल या चुनाव (Election) आदि का परिशुद्ध वर्णन करते हैं एवं क्रमवार विस्तृत ज्ञान प्राप्त करते हैं। यह ज्ञान गुणात्मक (Qualitative) एवं संख्यात्मक (Quantitative) दोनों ही प्रकार का हो सकता है। जैसे गुणात्मक ज्ञान से हम यह पता लगाते हैं कि किस चुनाव के उम्मीदवार किस–किस राजनीतिक दल के थे अथवा वे किस–किस जाति के थे? संख्यात्मक ज्ञान संख्या पर आधारित होता है। यह सामान्यत : किसी चर की आवृत्ति होती है। जैसे किसी चुनाव में कितने लोगों ने भाग लिया।

2. किसी चर की आवृत्ति निश्चित करना : वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प के अध्ययन करते समय हमें विषय या समस्या का कुछ ज्ञान रहता है। यह ज्ञान पहले किए हुए अन्वेषणात्मक या दूसरे लोगों के अध्ययनों द्वारा प्राप्त होता है। इसलिए वर्णनात्मक अध्ययन

के उद्देश्य सुस्पष्ट होते हैं। जैसे यह निश्चित रहता है कि हमें किन लक्षणों का वर्णन करना है। समस्त लक्षणों का वर्णन किसी एक अध्ययन में नहीं होता है। जैसे किसी संस्था के विभिन्न भागों का आकार एक महत्त्वपूर्ण लक्षण हो सकता है किंतु यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक अध्ययन में इसका समावेश हो। इसी प्रकार किन चरों की आवृत्ति देखनी है यह तय होता है। किसी एक ही समूह का अध्ययन अलग–अलग दृष्टिकोणों से हो सकता है और प्रत्येक के लिए भिन्न चरों की आवृत्ति देखनी होती है।

3. चरों के साहचर्य (Association) के विषय में पता लगाना : वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प का एक और उद्देश्य यह है कि इसके द्वारा चरों के साहचर्य के विषय में पता लगाया जाता है। जैसे पिछड़े देशों में आय और शिक्षा मे धनात्मक साहचर्य (Positive Association) पाया जाता है अर्थात् अमीर व्यक्ति सामान्यत : अधिक शिक्षित होते हैं। वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प में हम इसी प्रकार विभिन्न चरों के साहचर्य का पता लगाते हैं, अर्थात् यह देखते हैं कि साहचर्य है या नहीं और यदि है तो किस प्रकार का। यहां यह ध्यान रखने योग्य बात है कि समस्त चरों का एक–दूसरे के साथ साहचर्य हम नहीं देखते। हम केवल उन चरों का साहचर्य देखते हैं जहां हम इनकी आशा करते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वर्णनात्मक अभिकल्प वर्णनात्मक उपकल्पनाओं की परीक्षा करता है।

इसके अतिरिक्त वर्णनात्मक अध्ययन कार्यकारण संबंधी उपकल्पनाओं के निर्माण में भी सहायक होता है। इस प्रकार की उपकल्पनाओं का परीक्षण एक अधिक विकसित अभिकल्प द्वारा होता है। वर्णनात्मक अध्ययन द्वारा केवल इन उपकल्पनाओं का निर्माण होता है। जैसे यदि हम किन्हीं चरों में बहुत अधिक साहचर्य पाएं तो हम यह उपकल्पना बना सकते हैं कि उनमें से एक कारण है और दूसरा कार्य। यहां यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि ऐसा संयोग से भी हो सकता है।

सामाजिक अनुसंधान, मूलरूप से दो प्रकार की समस्याओं से संबंधित होते हैं। प्रथम समस्या सामान्य नियमों के खोज की समस्या है और द्वितीय समस्या विशिष्ट परिस्थितियों के निदान से संबंधित है। इसलिए, एक स्वस्थ एवं विवेकशील सामाजिक क्रिया की यह विशेषता है कि यह अनुसंधान से संबंधित दोनों समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करती है। इसलिए क्रियाओं की एक उपर्युक्त कार्यविधि के चुनाव के लिए समस्या के विशिष्ट लक्षणों

का ज्ञान आवश्यक है। इस समस्या का समाधान वर्णनात्मक अभिकल्पों द्वारा होता है जो कि समस्या में निहित लक्षणों के विवेचन को विशेष महत्त्व देते हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से, सामाजिक अध्ययन में विवरणात्मक पक्ष को महत्त्व दिये जाने की परंपरा प्राचीन–काल से चली आई है। विभिन्न समयों पर राज्यों द्वारा मानवीय साधनों के मूल्यांकन किये जाने का उल्लेख इतिहास द्वारा प्राप्त होता है। किंतु इन वर्णनात्मक अभिकल्पों का मूल उद्देश्य केवल आर्थिक एवं प्रशासन की सुविधा प्राप्त करना था। समाज विज्ञान से विकास के साथ वर्णनात्मक अभिकल्प के प्रचलन में भी वृद्धि हुई है।

वर्णनात्मक अभिकल्पों का प्रधान लक्ष्य, चुनी हुई समस्या के संबंध में, पूर्ण जानकारी हासिल करना है। इसलिए अन्वेषणात्मक अभिकल्प की अपेक्षा, इसमें मानवीय अभिमति से बचाव के लिए अधिक ध्यान देने की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त, इन अध्ययनों में अधिकतम सामग्री को संग्रह करने के प्रयास किए जाते हैं। अतएव वर्णनात्मक अभिकल्प के लिए मानवीय अभिमति से बचाव की ओर ध्यान देना आवश्यक है।

वर्णनात्मक शोध अभिकल्प के विभिन्न चरण या स्तर :

वर्णनात्मक शोध अभिकल्प तैयार करते समय इसके विविध चरणों या स्तरों को ध्यान में रखना आवश्यक है। ये चरण या स्तर या सोपान निम्नलिखित हैं :

(क) शोध के उद्देश्यों का निरूपण (Formulation) वर्णनात्मक शोध का प्रथम चरण होता है जिसके अन्तर्गत शोध से सम्बद्ध मौलिक प्रश्नों का स्पष्टीकरण तथा लक्ष्यों को परिभाषित करना सम्मिलित होता है जिससे कि अनावश्यक व असम्बद्ध तथ्यों का संकलन न हो तथा श्रम व धन की बर्बादी से बचा जा सके।

(ख) उद्देश्यों को स्पष्ट करने के पश्चात् यह आवश्यक है कि तथ्य–संकलन की प्रविधियों का चुनाव (Selection of the techniques of data collection) उचित ढंग से कर लिया जाए क्योंकि यह चुनाव ठीक प्रकार से किए बिना विषय से सम्बद्ध निर्भर योग्य तथ्यों, आँकड़ों अथवा प्रमाणों को एकत्रित करने की कोई सम्भावना नहीं रहती है। भिन्न–भिन्न शोध–पद्धतियों के अपने–अपने गुण हैं। समस्या तथा उद्देश्य के अनुसार हम कितनी उपयुक्त पद्धति का चुनाव करने में सफल होते हैं, इस बात पर सम्पूर्ण शोध–कार्य की सफलता निर्भर करती है।

(ग) निदर्शनों का चुनाव (Selection of Samples) इस दिशा में तीसरा आवश्यक चरण है क्योंकि समूह के प्रत्येक सदस्य या विषय की प्रत्येक इकाई का अध्ययन करना अत्यन्त कठिन है। अतः निदर्शनों का चुनाव अर्थात् सम्पूर्ण जनसंख्या की कुछ प्रतिनिधि इकाइयों का अध्ययन उपयोगी सिद्ध हो सकता है क्योंकि इस प्रकार के अध्ययन के आधार पर सम्पूर्ण जनंसख्या के विषय में विश्वसनीय निष्कर्ष निकाला जा सकता है। इस प्रतिनिधि इकाइयों के चुनाव में भी मिथ्या–झुकाव (Bias) से बचने की आवश्यकता है।

(घ) आँकड़ों का संकलन तथा उनकी जाँच (Collection and scrutiny of data) इस दिशा में चौथा चरण माना जाता है। निदर्शनों के चुनाव के उपरान्त यह आवश्यक हो जाता है कि वैज्ञानिक प्रविधियों की सहायता से आवश्यक आँकड़ों का न केवल संकलन ही किया जाए अपितु उनकी जाँच भी उचित ढंग से हो ताकि वर्णनात्मक विवरण में अनावश्यक बातों का समावेश न हो सके। वास्तविकता तो यह है कि साक्षात्कारकर्त्ता (interviewer) अथवा निरीक्षणकर्त्ता की ईमानदारी तथा परिश्रम पर शुद्ध तथा यथार्थ सूचनाएँ एकत्र की जा सकती हैं। अतः सामग्री संकलन के समय भी कार्यकर्त्ताओं पर नियमित रूप से निगरानी रखनी चाहिए।

(ङ) परिणामों का विश्लेषण (Analysis of the results) इस दिशा में पंचम चरण है और इसका अर्थ है जिन आँकड़ों अथवा तथ्यों का संकलन किया गया है उनका समानता या भिन्नता के आधार पर विभिन्न समूहों में वर्गीकरण, सारणीयन तथा अन्य सांख्यिकीय विवेचना। शुद्धता तथा प्रशिक्षण इस कार्य में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आवश्यकताएँ हैं। अतः इस स्तर का अत्यन्त निगरानी रखने की आवश्यकता रहती है।

(च) अन्तिम स्तर पर रिपोर्ट का प्रस्तुतीकरण (Reporting) आता है जिसमें शोध–विषय के सम्बन्ध में तथ्ययुक्त (Factual) विवरण तथा सामान्य निष्कर्ष प्रस्तुत किया जाता है। इस स्तर पर भाषा के प्रयोग पर विशेष सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है क्योंकि अत्यधिक अलंकारयुक्त भाषा से विषय के विवरण में अतिरंजना पनप सकती है और उसका विभिन्न लोगों के द्वारा विभिन्न अर्थ लगाए जाने का भी डर रहता है। इन समस्त चरणों से सफलतापूर्णक गुजरने के पश्चात् ही वर्णनात्मक शोध–कार्य अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है।

4.4.8 निदानात्मक शोध प्ररचना :

शोध–कार्य का मूलभूत उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति तथा ज्ञान की वृद्धि है। पर यह भी हो सकता है कि शोध–कार्य का उद्देश्य किसी समस्या के कारणों के सम्बन्ध में वास्तविक ज्ञान प्राप्त करके उस समस्या के समाधानों को भी प्रस्तुत करना हो। इसी प्रकार की शोध–प्ररचना को निदानात्मक शोध–प्ररचना कहते हैं। अर्थात् विशिष्ट सामाजिक समस्या के निदान की खोज करने वाले शोध–कार्य को निदानात्मक शोध कहते हैं। इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट रूप से स्मरणीय है कि इस प्रकार से शोधकर्त्ता समस्या का हल प्रस्तुत करता है, न कि स्वयं उस समस्या को हल करने के प्रयास में जुट जाता है, समस्या को हल करना समाज–सुधारक, प्रशासक तथा नेताओं का काम होता है, शोधकर्त्ता केवल वैज्ञानिक पद्धतियों के द्वारा समस्या के कारणों को जान लेने के बाद उसका उचित समाधान किस ढंग से सर्वोत्तम रूप में हो सकता है इस बात की खोज करता है। इसीलिए निदानात्मक शोध–कार्य में समस्या का पूर्ण एवं विस्तृत अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से करके समस्या की गहराई में पहुँचने का प्रयास किया जाता है जिससे कि समस्या के प्रत्येक सम्भावित कारण का पता ठीक ढंग से लग सके। इस प्रकार समस्या के कारणों का ज्ञान सर्वप्रथम है, उसके निदानों की खोज उसके बाद की बात है। इस प्रकार की खोज इस कारण की जाती है क्योंकि समस्या–विशेष का हल तत्काल ही करने की आवश्यकता होती है। सम्भावित हल को ध्यान में रखते हुए इसलिए प्राक्कल्पना (Hypothesis) का निर्माण किया जाता है जिससे कि अध्ययनकार्य वैज्ञानिक ढंग से किया जा सके।

उपयुक्त विवेचना के आधार पर निदानात्मक शोध की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है :

1. निदानात्मक शोध–कार्य वैज्ञानिक पद्धति का निश्चित रूप से अनुसरण करता है जिसका कि प्रथम चरण प्राक्कल्पना का निर्माण और उसी के आधार पर अध्ययन का संचालन है।

2. निदानात्मक शोध–कार्य की आवश्यकता सामाजिक व्यवस्था व सामाजिक सम्बन्धों से उत्पन्न सामाजिक समस्याओं को तत्काल दूर करने का उपचार की खोज करने से सम्बद्ध होती है।

3. निदानात्मक शोध में सर्वप्रथम वैज्ञानिक ढंग से कारणों का सही रूप में पता करने का प्रयत्न किया जाता है क्योंकि यह माना जाता है कि वास्तविक कारणों के सम्बन्ध में उचित व पर्याप्त ज्ञान के बिना आवश्यक समाधान की खोज असम्भव है।

4. निदानात्मक शोध किसी विशिष्ट सामाजिक समस्या के निदान की खोज से सम्बद्ध होता है। अर्थात् केवल शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति करना ही इसका उद्देश्य नहीं होता, अपितु उसके हल को भी ढूँढ़ना इसका काम होता है।

5. निदानात्मक शोधकर्त्ता समस्या का समाधान ढूँढ़ता अवश्य है, पर उस समस्या को हल करना उसका काम नहीं होता। वह तो वैज्ञानिक तौर पर केवल रास्ता बता देता है, उस रास्ते पर चलकर समस्या को सुलझाना समाज–सुधारक, प्रशासक आदि का काम होता है।

विवरणात्मक या वर्णनात्मक तथा निदानात्मक शोध प्ररचनाओं में अन्तर या भिन्नता :

वर्णनात्मक तथा निदानात्मक दोनों ही शोध–प्ररचनाएँ किसी समस्या में प्रकट लक्षणों के विस्तृत अध्ययन पर अधिक बल देते हैं और इसी कारण अनेक विद्वान इन दोनों में कोई विशेष अन्तर नहीं करते अपितु दोनों को शोध–प्ररचना का एक ही रूप मानते हैं। किन्तु इस समानता के होते हुए भी ये दोनों अभिकल्प एक दूसरे से भिन्न हैं। इन दोनों प्ररचनाओं में मुख्यतः निम्न आधारों पर अन्तर किया जा सकता है :

1. विवरणात्मक अनुसन्धान प्ररचना समस्या से सम्बन्धित तथ्यों का वर्णन प्रस्तुत करती है, जबकि निदानात्मक अनुसन्धान प्ररचना समस्या का वास्तविक स्वरूप बताकर समस्या के निदान के उपाय या हल भी बताती है।

2. विवरणात्मक अनुसन्धान प्ररचना के अध्ययन उपकल्पनाओं द्वारा पूर्ण रूप से निर्देशित नहीं होते, जबकि निदानात्मक अनुसन्धान प्ररचना के अध्ययनों को उपकल्पनाएँ पूर्ण रूप से निर्देशित करती हैं।

3. विवरणात्मक अनुसन्धान प्ररचना का मुख्य उद्देश्य ज्ञान प्राप्ति ही होता है, जबकि निदानात्मक अनुसन्धान प्ररचना की प्रमुख उद्देश्य समाज में उपस्थित निवर्तमान (Contemporary) समस्याओं के कारणों का पता लगाकर समाधान प्रस्तुत करना होता है।

4. विवरणात्मक अध्ययन उस क्षेत्र में विकास पाता है, जहाँ समस्याओं के बारे में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं हो चुकी होती है, जबकि निदानात्मक अध्ययन उसी क्षेत्र में हो जाते हैं, जहाँ पर कि समस्याओं का स्वरूप स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आ जाता है।

5. विवरणात्मक अध्ययन प्रायः प्रारम्भिक स्तर के अध्ययन होते हैं जबकि निदानात्मक अध्ययन उच्चस्तरीय होते हैं।

इस प्रकार वर्णनात्मक या विवरणात्मक अनुसन्धान प्ररचना एवं निदानात्मक अनुसन्धान प्ररचना में अन्तर किया जा सकता है। लेकिन इन प्ररचनाओं के क्रियान्वयन के लिए अनुसन्धानकर्त्ता को अनुसन्धान प्रशिक्षण, समय, धन व कार्यक्षमता पर ध्यान देना चाहिए। इस प्रकार जब अन्वेषणात्मक ज्ञान की प्राप्ति हमारे अध्ययन का उद्देश्य होता है तो हम अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना का प्रयोग करते हैं, लेकिन जब किसी समूह, समुदाय या परिस्थितियों का वर्णन एवं विश्लेषण करना होता है तो हम 'विवरणात्मक अनुसन्धान प्ररचना' का प्रयोग करते हैं।

4.4.9 प्रयोगात्मक अनुसन्धान प्ररचना :

अनुसन्धान प्ररचना का चौथा प्रकार प्रयोगात्मक अनुसन्धान प्ररचना है। प्रयोगात्मक अनुसन्धान प्ररचना जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है 'प्रयोग (Experiment) की अवधारणा पर आश्रित है। प्रयोग मूलत : एक प्रकार का नियन्त्रित अन्वेषण (Controlled Inquiry) है। प्रयोगात्मक अनुसन्धान प्ररचना को विस्तार से समझने के लिए यह आवश्यक होगा कि हम 'प्रयोग' को समझ लें। आर. एल. एकॉफ ने लिखा है कि "प्रयोग एक क्रिया है और एक ऐसी क्रिया है जिसे हम अन्वेषण कहते हैं।''

ई. ग्रीनवुड के अनुसार, ''एक प्रयोग एक ऐसी उपकल्पना का प्रमाण है जो दो कारकों को ऐसी विरोधी परिस्थितियों के अध्ययन के माध्यम से कारणात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है, जिनमें केवल अभिरुचिपूर्ण कारण को छोड़कर अन्य सभी कारकों पर नियन्त्रण कर लिया जाता है, बाद वाले अभिरुचिपूर्ण कारक या तो उपकल्पनात्मक कारण या उपकल्पनात्मक प्रभाव होता है।"

सेलिज, जहोदा एवं अन्य के अनुसार, "अपने सबसे सामान्य अर्थ में एक प्रयोग को प्रमाण के संग्रह के संगठन के ऐसे ढंग के रूप में समझा जा सकता है, जिससे उपकल्पना की सत्यता के विषय में परिणाम निकालने की अनुमति मिल सके।"

इस प्रकार प्रयोग की मूलभूत रूपरेखा अत्यन्त सरल है। एक उदाहरण से इसे हम और स्पष्ट कर सकते हैं। मान लें, हम यह जानना चाहते हैं कि पढ़ाने में संगणकों (Computers) का उपयोग परम्परागत पढ़ाने के ढंग से अधिक लाभदायक है या नहीं।

इसके लिए हम दो समान समूह लेंगे – एक 'प्रयोगात्मक समूह' कहलाएगा एवं दूसरा 'यथास्थ समूह'। प्रयोगात्मक समूह पर हम स्वतन्त्र चर (या प्रयोगात्मक चर) का प्रभाव डालते हैं। यहाँ हमारा प्रयोगात्मक चर संगणक (Computer) है। अब हम किसी स्कूल की कक्षा के दो समूह बनाते हैं और एक समूह (प्रयोगात्मक) को संगणकों के माध्यम से पढ़ाते हैं व दूसरे को परम्परागत ढंग से। शिक्षा सत्र के अन्त में दोनों समूहों को एक ही परीक्षा में बिठाकर उनके परीक्षाफल की तुलना करते हैं। यदि हम पाते हैं कि संगणक द्वारा शिक्षित समूह का परीक्षाफल श्रेष्ठ है तो हम कह सकते हैं कि संगणकों द्वारा पढ़ाना अधिक लाभकारी है।

इस प्रकार प्रयोगात्मक अनुसन्धान प्ररचना 'प्रयोग' पर आधारित है। यह भी भौतिक विज्ञानों में प्रयोगों की भाँति होती है। इस प्रकार की प्ररचनाओं का निर्माण अत्यन्त सोच–समझकर किया जाता है। इस प्ररचना के आधार पर तार्किक निष्कर्षों को निकाला जाता है। 'जॉन स्टुअर्ट मिल' पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने प्रयोगात्मक विधि के आधार पर अनुसन्धान प्ररचनाओं के सम्बन्ध में सुधार किए।

प्रयोगात्मक अनुसन्धान प्ररचना में कारणत्व (Causility) की अवधारणा का विश्लेषण करना भी परमावश्यक हो जाता है। सामान्य शब्दों में, इसका आशय यह है कि एक घटना दूसरी घटना के कार्य का कारण होती है। इस प्रकार इसमें अधिकतर दो या दो से अधिक घटनाओं, कारकों या चरों के मध्य कार्य–कारण सम्बन्ध की अनेक परिस्थितियों का अध्ययन किया जाता है।

प्रयोगात्मक अनुसन्धान प्ररचना में कारणात्मक सम्बन्धों को व्यक्त करने वाली उपकल्पनाओं का परीक्षण करने के लिए प्ररचित किसी भी नियन्त्रित प्रयोग के अन्तर्गत निम्न तत्त्व पाए जाते हैं :

1. इसमें ऐसी दो परिस्थितियों या समूहों (एक प्रयोगात्मक समूह व दूसरा यथास्थ समूह) का परीक्षण किया जाता है, जो अन्य सभी महत्त्वपूर्ण पक्षों में समान होते हैं।

2. कारणात्मक समझे जाने वाले कारक को प्रयोगात्मक समूह में ढूँढ़ा जाता है अथवा उसमें इसका समावेश कराया जाता है।

3. भविष्यवाणी की जाने वाली घटना की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति पर्यवेक्षण प्रयोगात्मक एवं नियन्त्रित दोनों ही समूहों पर किया जाता है।

प्रयोगात्मक शोध–प्ररचना के विविध प्रकार :

सामाजिक विज्ञानों में सदा प्रयोग की समस्त शर्तों को पूरा करना सम्भव नहीं होता है। इसलिए आवश्यकता एवं सुविधा के अनुसार प्रयोग के ढंग में कुछ फेर–बदल कर लिया जाता है। इसलिए प्रयोगात्मक अनुसन्धान प्ररचना के अनेक प्रकार बन जाते हैं। इन्हें मुख्यतः दो वर्गों में रखा जाता है :

1. केवल पश्चात् परीक्षण (Only After Experiment),

2. पूर्व–पश्चात् परीक्षण (Before-After Experiment).

1. केवल 'पश्चात् माप' वाले प्रयोग (Only After Experiments) :

इस प्रकार के प्रयोग में प्रयोगात्मक और यथास्थ समूह ऊपर बताई गई प्रविधियों के अनुसार बनाए जाते हैं। प्रारम्भ में कोई भी चर नहीं मापे जाते। फिर प्रयोगात्मक समूह पर प्रयोगात्मक चर का प्रभाव डाला जाता है। यथास्थ समूह पर प्रयोगात्मक चर का प्रभाव नहीं डाला जाता। प्रयोग के दौरान या अन्त में परतन्त्र चर ख को दोनों समूहों में मापते हैं। दोनों समूहों में ख का अन्तर, क का प्रभाव माना जाता है।

इस अभिकल्प में यह सह–परिवर्तन का प्रमाण हमें इस प्रकार मिलता है कि प्रयोगात्मक समूह पर प्रयोगात्मक चर (कारण) का प्रभाव पड़ता है और यथास्थ समूह पर नहीं। इसलिए दोनों समूहों में परतन्त्र चर (कार्य) में पाया जाने वाला भेद प्रयोगात्मक चर

के प्रभाव के कारण ही हो सकता है। घटनाक्रम का प्रमाण इस प्रकार मिलता है कि दोनों समूह प्रारम्भ में समान थे और यथास्थ समूह पर प्रयोगात्मक चर का प्रभाव नहीं पड़ा। इसलिये यथास्थ समूह में ख का 'पश्चात्' माप (अर्थात् प्रयोग के पश्चात् का माप) प्रयोगात्मक समूह में ख के 'पूर्व' माप (अर्थात् प्रयोग के पूर्व का माप) के बराबर माना जा सकता है। इस प्रकार अन्त में दोनों समूहों में पाया हुआ भेद प्रयोगात्मक चर का प्रभाव पड़ने के बाद ही हो सकता है। अन्य सम्भव चरों के विलोपन का प्रमाण यथास्थ समूह के होने से मिलता है। अन्य चरों ने इसे भी प्रभावित किया होगा। इसलिये दोनों समूहों का भेद अन्य कारकों के प्रभाव को घटा कर आता है।

इस प्रयोग के एक अच्छे उदाहरण में अमरीका में द्वितीय महायुद्ध के समय एक फिल्म 'द बेटल ऑफ ब्रिटेन' का प्रभाव देखा गया था। इसमें सेना की टुकड़ियों को मिलाकर दो समूह बनाये गये थे। यह समूह शिक्षा, आयु, जन्म–क्षेत्र, परीक्षाफल, प्रशिक्षण–स्तर आदि के आधार पर समान थे। फिर सिक्का उछाल कर तय किया गया कि कौन सा प्रयोगात्मक समूह माना जाये। इस समूह को साधारण प्रशिक्षण के कार्यक्रम के अन्तर्गत यह फिल्म दिखाई गई दूसरे समूह को यथास्थ समूह माना गया, फिल्म नहीं दिखाई गई। लगभग एक सप्ताह के बाद दोनों समूहों से एक प्रश्नावली भरवाई गई। सैनिकों को यह पता नहीं था कि उन पर कोई प्रयोग हो रहा है या फिल्म के प्रभाव का अध्ययन हो रहा है। दोनों समूहों के उत्तरों के भेद के आधार पर फिल्म के प्रभाव का पता लगाया गया।

2. 'पूर्व और पश्चात् माप' वाले प्रयोग (Before/After Experiment) : इस अभिकल्प में प्रयोगात्मक समूह तो सदा होता है किन्तु यथास्थ समूह कभी होता है और कभी नहीं। कभी–कभी दो या अधिक यथास्थ समूह भी होते हैं। इसके छ : मुख्य प्रकार हैं :

(अ) एक समूह द्वारा पूर्व और पश्चात्' अध्ययन,

(ब) एक यथास्थ समूह वाला 'पूर्व और पश्चात्' अध्ययन,

(स) समूहों को अदल–बदल कर 'पूर्व और पश्चात्' अध्ययन,

(द) दो यथास्थ समूहों वाला 'पूर्व और पश्चात्' अध्ययन,

(य) तीन यथास्थ समूहों वाला 'पूर्व और पश्चात्' अध्ययन,

(र) दो या अधिक प्रयोगात्मक चरों के संयुक्त प्रभाव का अध्ययन।

(अ) एक समूह द्वारा 'पूर्व और पश्चात्' अध्ययन : इस प्रकार के अध्ययन की विशेष बात यह है कि इसमें यथास्थ समूह नहीं होता। एक ही समूह में प्रयोग के पहले और बाद के भेद को प्रयोगात्मक चर का प्रभाव मान लिया जाता है। साधारण जीवन में हम इस प्रकार के प्रयोग करते ही रहते हैं। जैसे किसी को कोई रोग है। वह एक दवा लेता है और उसका रोग कम हो जाता है। वह स्वास्थ्य लाभ को दवा का प्रभाव मान लेता है। वैज्ञानिक शोध से इस प्रकार के प्रयोग पर आधारित अनुमानों को पूर्ण रूप से प्रमाणिक नहीं माना जा सकता। केवल किसी विशेष स्थिति में ही, जहाँ यथास्थ समूह बनाना सम्भव न हो, इसका उपयोग किया जाता है। जैसे, यदि किसी भीषण रोग की चिकित्सा से संबंधित शोध करनी हो और इस चिकित्सा से शीघ्र लाभ की आशा हो तो सम्भव है अपने प्रयोग में सभी रोगियों की हम यही चिकित्सा करें, यथास्थ समूह न बनाएँ। यहाँ यथास्थ समूह बनाने का अर्थ होगा कुछ रोगियों को इस चिकित्सा से वंचित रखना। इसलिए ऐसे प्रयोग में यह समूह नहीं बनाया जाता। निष्कर्ष भी पूर्णतया मान्य या प्रमाणिक नहीं होता।

(ब) एक यथास्थ समूह वाला 'पूर्व और पश्चात्' अध्ययन : प्रयोगात्मक अभिकल्प का सबसे सरल और अधिक प्रयुक्त होने वाला रूप यही है। इसमें प्रयोगात्मक और यथास्थ दोनों प्रकार के समूह बनाये जाते हैं और दोनों में पूर्व और पश्चात् परतन्त्र चर का माप किया जाता है। प्रयोग के पश्चात् दोनों समूहों के माप का अन्तर प्रयोगात्मक चर का प्रभाव माना जाता है। पढ़ाने में टेलीविजन पुराने तरीके से अधिक लाभकर है या नहीं, यह पता लगाने के लिए किये जाने वाले प्रयोग में हम इस प्रकार के अध्ययन का विवेचन कर पाएँगे। इसमें दो लगभग एक जैसे समूह बनाकर दोनों को एक ही परीक्षा में बिठाते हैं। अब एक समूह के सब विद्यार्थियों के अंकों का औसत निकालते हैं। यह उस समूह का 'पूर्व' माप हुआ। इसी तरह दूसरे समूह का 'पूर्व' माप निकालते हैं। फिर सिक्का उछाल कर एक समूह को प्रयोगात्मक बना देते हैं अर्थात् इसे टेलीविजन की सहायता से पढ़ाते हैं। दूसरे समूह को यथास्थ कहते हैं, अर्थात् इसे पुराने तरीके से पढ़ाते हैं। शिक्षा–सत्र के अन्त में दोनों समूहों को फिर एक ही परीक्षा में बिठाते हैं। फिर दोनों समूहों का अलग–अलग 'पश्चात्' माप निकालते हैं। फिर प्रयोगात्मक समूह के 'पश्चात्' माप में से उसका 'पूर्व' माप घटाते हैं। इसे हम प्रयोगात्मक समूह में हुआ अन्तर कहेंगे। इसी तरह यथास्थ समूह में

हुआ अन्तर भी निकालते हैं। अब यह देखते हैं कि कौन सा अन्तर अधिक है – प्रयोगात्मक समूह वाला या यथास्थ समूह वाला। यदि प्रयोगात्मक समूह में यथास्थ समूह से अधिक अन्तर हुआ है तो कहेंगे कि टेलीविजन से पढ़ाना अधिक लाभकर है, अन्यथा नहीं।

(स) समूहों को अदल–बदल कर 'पूर्व और पश्चात्' अध्ययन : इस प्रकार के अध्ययन में, प्रयोगात्मक और यथास्थ दोनों समूह होते हैं। 'पूर्व माप केवल यथास्थ समूह में किया जाता है, प्रयोगात्मक समूह में नहीं किया जाता। प्रयोगात्मक चर का प्रभाव केवल प्रयोगात्मक समूह पर डाला जाता है। 'पश्चात्' माप केवल प्रयोगात्मक समूह में लिया जाता है। दोनों मापों का अन्तर प्रयोगात्मक चर का प्रभाव माना जाता है। जैसा कि स्पष्ट हो गया होगा इस प्रकार के प्रयोग की विशेष बात यह है कि इसमें दोनों समूहों में प्रयोग के पूर्व और पश्चात् माप नहीं लिया जाता। एक में 'पूर्व और दूसरे (प्रयोगात्मक समूह) में 'पश्चात्' माप लिया जाता है। इसका एक विशेष लाभ है। कभी–कभी पहला माप लेने से दूसरा माप प्रभावित हो जाता है जैसे यदि हम कुछ लोगों से दो बार साक्षात्कार करें तो सम्भव है वे दूसरी बार यह प्रयत्न करें कि उनके उत्तर पहली बार के उत्तरों से भिन्न न हों , चाहे फिर इस बीच उनके विचारों में परिवर्तन ही क्यों न आ गया हो। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'पूर्व' माप में 'पश्चात्' माप प्रभावित हो सकता है। इस समस्या का एक हल यह अभिकल्प है। इसमें हम जिन लोगों से पहली बार साक्षात्कार करते हैं उनसे दूसरी बार नहीं। इस प्रकार 'पूर्व' माप से 'पश्चात्' माप प्रभावित नहीं हो सकता। क्योंकि दोनों समूह प्रारम्भ में समान होते हैं, अतः यह मानना तर्कसंगत होगा कि प्रयोगात्मक समूह के लोगों से भी यदि पहले प्रश्न पूछे गये होते तो लगभग वही उत्तर मिलते तो यथास्थ समूह के लोगों से मिले थे। इसलिये दोनों मापों के अन्तर को प्रयोगात्मक चर का प्रभाव मान लेते हैं।

उदाहरण के लिए मान लें, मनोविज्ञान में सीखने के किसी प्रयोग में हम सिखाने की किसी पद्धति का प्रभाव मापना चाहते हैं। हमारी कठिनाई यह है कि हमारे पास परीक्षण करने का एक ही ढंग है। साथ ही किसी भी व्यक्ति का एक परीक्षण दो बार नहीं किया जा सकता क्योंकि पहली बार के परीक्षण से दूसरी बार के परीक्षण के प्रभावित हो जाने की सम्भावना है। ऐसी स्थिति में हम दो एक जैसे समूह बनाकर केवल एक समूह का परीक्षण पहले करते हैं। यह 'पूर्व' माप हुआ। इस समूह को यथास्थ समूह कहते हैं और

इसे नई पद्धति से नहीं सिखाते। दूसरे समूह को प्रयोगात्मक कहते हैं और नये ढंग से सिखाते हैं। अन्त में प्रयोगात्मक समूह का परीक्षण करते हैं। यह 'पश्चात्' माप हुआ। यहाँ हम यह मानकर चलते हैं कि दोनो समूहों के एक जैसे होने के कारण उनका 'पूर्व' माप लगभग एक जैसे ही था। इसलिए 'पश्चात्' और 'पूर्व' मापों का भेद प्रयोगात्मक चर का प्रभाव माना जा सकता है।

(द) दो यथास्थ समूहों वाला 'पूर्व और पश्चात्' अध्ययन : यह अभिकल्प एक दूसरी कठिन समस्या को हल करता है। यह पिछले दोनों अभिकल्पों के मिश्रण से बनता है। जैसे पिछले अभिकल्प में हमने देखा था कि कभी–कभी 'पूर्व' माप 'पश्चात्' माप को प्रभावित कर देता है, उसी प्रकार कभी–कभी 'पूर्व' माप प्रयोगात्मक चर को भी प्रभावित कर देता है। इस प्रकार प्रयोगात्मक चर का विशुद्ध प्रभाव हम नहीं जान पाते। प्रयोगात्मक चर के 'पूर्व' माप द्वारा इस प्रकार प्रभावित हो जाने को दोनों की अन्योन्य क्रिया कहते हैं। इस अभिकल्प द्वारा हम प्रयोगात्मक चर का प्रभाव और अन्योन्य क्रिया दोनों का पता लगा लेते हैं। इसमें दो यथास्थ समूह होते हैं। प्रयोगात्मक और दोनों यथास्थ समूह लगभम एक जैसे होते हैं। प्रयोगात्मक समूह में 'पूर्व' और 'पश्चात्' दोनों माप लिए जाते हैं। प्रथम यथास्थ समूह में भी 'पूर्व' और 'पश्चात्' माप लिये जाते है। प्रयोगात्मक समूह पर प्रयोगात्मक चर का प्रभाव डाला जाता है, किन्तु पहले यथास्थ समूह पर नहीं। द्वितीय यथास्थ समूह में 'पूर्व' माप नहीं लिया जाता, इस पर प्रयोगात्मक चर का प्रभाव डाला जाता है और 'पश्चात्' माप लिया जाता है।

यद्यपि द्वितीय यथास्थ समूह का 'पूर्व' माप नहीं लिया जाता, हम यह माप का अनुमान कर लेते हैं। हम यह मान लेते हैं कि तीनों समूहों में प्रयोग का 'पूर्व' माप लगभग एक जैसा था। इसलिए प्रयोगात्मक समूह और प्रथम यथास्थ समूह के 'पूर्व' मापों की औसत को हम द्वितीय यथास्थ समूह के 'पूर्व' माप के बराबर मान लेते हैं। इस प्रकार द्वितीय यथास्थ समूह के 'पूर्व' माप का हम अनुमान कर लेते हैं। इसके 'पश्चात्' माप हम स्वयं ले लेते हैं। इस पर प्रयोगात्मक चर का प्रभाव डाला जाता है किन्तु इनमें 'पूर्व' माप और प्रयोगात्मक चर के बीच अन्योन्य क्रिया की सम्भावना नहीं है, क्योंकि 'पूर्व' माप वास्तव में इसमें कभी नहीं लिया गया। साथ ही 'पूर्व' माप द्वारा 'पश्चात्' माप के प्रभावित होने की

सम्भावना भी नहीं है। इसलिए इस समूह के (अनुमानित) 'पूर्व' और 'पश्चात्' मापों का अन्तर प्रयोगात्मक चर का विशुद्ध प्रभाव बताता है।

प्रथम यथास्थ समूह पर प्रयोगात्मक चर का प्रभाव नहीं पड़ा इसलिए वहाँ भी अन्योन्य क्रिया नहीं हो सकती। इसलिए यदि यह मानना तर्कसंगत हो कि अन्य सम्भव चरों का प्रभाव नगण्य है, तो प्रथम यथास्थ समूह में 'पूर्व' और 'पश्चात्' मापों में यदि कोई अन्तर है तो वह 'पूर्व' माप के प्रभाव से हो सकता है।

प्रयोगात्मक समूह पर प्रयोगात्मक चर का प्रभाव पड़ा है, 'पूर्व' माप हुआ है और अन्योन्य क्रिया की सम्भावना भी है, इसलिए इस समूह में 'पूर्व' और 'पश्चात्' मापों का अन्तर इन तीनों प्रभावों का योग है। अपने अनुमानों को संक्षेप में हम इस प्रकार कह सकते हैं कि यदि यह मानना तर्कसंगत हो कि अन्य सम्भव चरों (जैसे समसामयिक घटनाओं और विकास की प्रक्रियाओं) का महत्त्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ा है तो :

1. प्रयोगात्मक समूह में 'पूर्व और 'पश्चात्' मापों का अन्तर (ख) = प्रयोगात्मक चर का प्रभाव + 'पूर्व' माप का 'पश्चात्' माप पर प्रभाव + अन्योन्य क्रिया;

2. प्रथम यथास्थ समूह में 'पूर्व' और 'पश्चात्' मापों का अन्तर (ख) = 'पूर्व' माप का 'पश्चात्' माप पर प्रभाव; और

3. द्वितीय यथास्थ समूह में (अनुमानित) 'पूर्व' और 'पश्चात्' मापों का अन्तर (ख) = प्रयोगात्मक चर का प्रभाव।

इस प्रकार द्वितीय यथास्थ समूह का 'पश्चात्' माप और 'अनुमानित' 'पूर्व' माप का अन्तर हमें प्रयोगात्मक चर का विशुद्ध प्रभाव बता देता है।

साथ ही हमें अन्योन्य क्रिया का भी अनुमान हो जाता है। ऊपर के समीकरणों से स्पष्ट है कि

$$\text{ख} - \text{अन्योन्य क्रिया} = \text{ख}_1 + \text{ख}_2$$

$$\text{अन्योन्य क्रिया} = \text{ख} - (\text{ख}_1 + \text{ख}_2)$$

(य) तीन यथास्थ समूहों वाला 'पूर्व और पश्चात्' अध्ययन : ऊपर के अन्तिम अभिकल्प में हमने यह मान लिया था कि समसामयिक घटनाओं और विकास की प्रक्रियाओं का प्रभाव

नगण्य है। किन्तु यह मानना तर्कसंगत न हो और यह सम्भावना भी हो कि अन्योन्य क्रिया हो रही है तो हम तीन यथास्थ समूहों वाले अभिकल्प का उपयोग करते हैं। इसमें जो नया, तृतीय यथास्थ समूह होता है उसका 'पूर्व' माप नहीं लिया जाता, उस पर प्रयोगात्मक चर का प्रभाव भी नहीं डाला जाता, केवल 'पश्चात्' माप लिया जाता है। इस प्रकार इस समूह का 'पश्चात्' माप पर समसामयिक और विकासात्मक आदि अन्य सम्भव चरों का प्रभाव तो होता है, 'पूर्व' माप और प्रयोगात्मक चर का प्रभाव नहीं होता। बाकी अभिकल्प ठीक वैसा ही रहता है जैसे दो यथास्थ समूहों वाला था।

इसके अनुमानों को हम इस प्रकार कह सकते हैं :

प्रयोगात्मक समूह में 'पूर्व' और पश्चात्' मापों का अन्तर

(ख) = प्रयोगात्मक चर का प्रभाव + अन्य सम्भव चरों का प्रभाव + 'पूर्व' माप का 'पश्चात्' माप पर प्रभाव + अन्योन्य क्रिया।

प्रथम यथास्थ समूह में 'पूर्व और 'पश्चात्' माप पर प्रभाव।

द्वितीय यथास्थ समूह में (अनुमानित) 'पूर्व' और 'पश्चात्' मापों का अन्तर

(ख) = प्रयोगात्मक चर का प्रभाव + अन्य सम्भव चरों का प्रभाव।

तृतीय यथास्थ समूह में (अनुमानित) 'पूर्व' और 'पश्चात्' मापों का अन्तर

(ख) = अन्य सम्भव चरों का प्रभाव।

ऊपर के समीकरणों से स्पष्ट है कि –

(1) प्रयोगात्मक चर का प्रभाव = $ख_2 - ख_3$

(2) अन्योन्य क्रिया = $ख - (ख_1 + ख_2 - ख_3)$

= $ख - (ख_1 + ख_2 - ख_3)$

इस प्रकार हम प्रयोगात्मक चर का विशुद्ध प्रभाव और अन्योन्य क्रिया दोनों को मापने में समर्थ हो जाते हैं।

(र) दो या अधिक प्रयोगात्मक चरों के संयुक्त प्रभाव का अध्ययन : ऊपर के अभिकल्पों में हमने केवल एक प्रयोगात्मक चर का प्रभाव जानने का प्रयत्न किया है। किन्तु कभी–कभी

दो या अधिक प्रयोगात्मक चर एक साथ सक्रिय होते हैं। इसके संयुक्त प्रभाव के अध्ययन के लिए हमें अधिक जटिल अभिकल्प बनाने होते हैं, जिनमें बहुत से समूह होते हैं। फिर अनुमान के लिए सांख्यिकी की विशेष प्रविधियों जैसे अन्तर्वर्ग विश्लेषण का उपयोग किया जाता है।

प्रयोगात्मक अभिकल्प की आलोचना

(Criticism of Experimental Design)

प्रयोगात्मक अभिकल्प का लाभ यह है कि इसके द्वारा हम विभिन्न कारकों के प्रभाव का वैज्ञानिक पद्धति से पता लगा सकते हैं, अर्थात् चरों के सम्बन्धों के विषय में अमूर्त परिकल्पनाओं का परीक्षण कर सकते हैं। यदि ये परिकल्पनाएँ सत्य सिद्ध हों तो हमारे सिद्धान्त को बल मिलेगा और अन्य परीक्षणों द्वारा हम नियमों की खोज की दिशा में प्रगति कर सकेंगे।

प्रयोग की पद्धति में कुछ हानियाँ भी हैं। इसकी एक आलोचना यह है कि केवल दो चरों के सम्बद्ध का अध्ययन करते समय यह अन्य चरों के प्रभाव को आँखों से ओझल कर देती है। दूसरे शब्दों में, प्रयोग की पद्धति चरों को एक–दूसरे से कृत्रिम ढंग से अलग कर देती है। वास्तव में, चर अलग–अलग संदर्भों में अलग–अलग प्रभाव डालते हैं। जैसे एक प्रकार की परिस्थिति में सत्तावादी नेतृत्व प्रभावशाली हो सकता है और दूसरे प्रकार की स्थिति में प्रभावहीन। इस आलोचना के अनुसार सामाजिक विज्ञान में शोध को प्रयोग के स्थान पर क्षेत्रीय अध्ययन का रूप लेना चाहिये जिसमें विभिन्न परिस्थितियों के प्रतिनिधि प्रतिदर्श का अध्ययन किया जायें। इसमें चरों के नियन्त्रण की प्रचलित पद्धति को छोड़ना होगा। जिन परिस्थितियों का अध्ययन किया जा रहा है उनमें जो अन्योन्य क्रिया मिलती है वह हम स्वीकार कर लेंगे। इस प्रकार के अध्ययनों के मुख्य उपकरण होते हैं साँख्यिकी की आँशिक सह–सम्बन्ध और बहु–सम्बन्ध की प्रविधियाँ। मनोविज्ञान के क्षेत्र में इस पद्धति का विशेष उपयोग हुआ है।

4.4.10 शोध–अभिकल्प का निर्माण :

अब तक हम यह जान चुके हैं कि शोध–अभिकल्प किसी भी अनुसन्धान के लिए कितना महत्त्व रखता है। इसके साथ ही हम शोध–अभिकल्प के विभिन्न प्रकारों से भी

अवगत हो चुके हैं। अब हमारे समक्ष अगला प्रश्न आता है शोध अभिकल्प के निर्माण का। सभी शोध–अभिकल्प के निर्माण की एक निश्चित प्रक्रिया है जो कि, सभी शोध–अभिकल्पों पर समान रूप से लागू होती है। इस प्रक्रिया में अनेक चरण हैं जिनका वर्णन हम नीचे कर रहे हैं :

1. अनुसन्धान प्ररचना में सर्वप्रथम अध्ययन समस्या (Study Problem) का प्रतिपादन किया जाना चाहिए।

2. वर्तमान में जो अनुसन्धान कार्य किया जा रहा है उसको अनुसन्धान समस्या से स्पष्ट रूप से सम्बन्धित करना अनुसन्धान प्ररचना का दूसरा मुख्य चरण है।

3. वर्तमान में हमें जो अनुसन्धान कार्य करना है उसकी सीमाओं (Boundries) को स्पष्ट रूप से निर्धारित करना।

4. अनुसन्धान प्ररचना का चौथा चरण अनुसंधान के विभिन्न क्षेत्रों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करने का है।

5. अनुसन्धान प्ररचना के इस चरण में हम अनुसन्धान परिणामों के प्रयोग के विषय में निर्णय लेते हैं।

6. इसके पश्चात् हमें अवलोकन, विवरण तथा परिमापन के लिए उपयुक्त चरों का चयन करना चाहिए तथा इन्हें स्पष्ट रूप से परिभाषित करना चाहिए।

7. तदुपरान्त अध्ययन क्षेत्र (Study Area) एवं समग्र (Universe) का उचित चयन एवं इनकी परिभाषा प्रस्तुत करनी चाहिए।

8. इसके बाद अध्ययन के प्रकार एवं विषय–क्षेत्र के विषय में विस्तृत निर्णय लेने चाहिएँ।

9. अनुसन्धान प्ररचना के आगामी चरण में हमें अपने अनुसन्धान के लिए उपयुक्त विधियों (Methods) एवं प्रविधियों (Techniques) का चयन करना चाहिए।

10. इसके बाद अध्ययन में निहित मान्यताओं (Assumptions) एवं उपकल्पनाओं (Mypothesis) का स्पष्ट उल्लेख करना चाहिए।

11. बाद में उपकल्पनाओं की परिचालनात्मक परिभाषा (Operational Definition) करते हुए उसे इस रूप में प्रस्तुत करना चाहिए कि वह परीक्षण के योग्य हो।

12. अनुसन्धान प्ररचना के आगामी चरण के रूप से हमें अनुसन्धान के दौरान प्रयुक्त किए जाने वाले प्रलेखों (Documents), रिपोर्टों (Reports) एवं अन्य प्रपत्रों का सिंहावलोकन करना चाहिए।

13. तदुपरान्त अध्ययन के प्रभावपूर्ण उपकरणों का चयन एवं इनका निर्माण करना तथा इनका व्यवस्थित पूर्व–परीक्षण (Pre-Testing) करना

14. आँकड़ों के एकत्रीकरण का सम्पादन (Editing) किस प्रकार किया जाएगा इसकी विस्तृत व्यवस्था का उल्लेख करना।

15. आँकड़ों के सम्पादन की व्यवस्था के उल्लेख के बाद उनके वर्गीकरण (Classification) हेतु उचित श्रेणियों (Categories) का चयन किया जाना एवं उनकी परिभाषा करना।

16. आँकड़ों के संकेतीकरण (Codification) के लिए समुचित व्यवस्था का विवरण तैयार करना।

17. आँकड़ों को प्रयोग योग्य बनाने हेतु सम्पूर्ण प्रक्रिया की समुचित व्यवस्था का विकास करना।

18. आँकड़ों के गुणात्मक (Qualitative) एवं संख्यात्मक (Quantitative) विश्लेषण के लिए विस्तृत रूपरेखा तैयार करना।

19. इसके पश्चात् अन्य उपलब्ध परिणामों की पृष्ठभूमि में समुचित विवेचन की कार्यविधियों का उल्लेख करना।

20. अनुसन्धान प्ररचना के इस चरण में हम अनुसन्धान प्रतिवेदन (Research Report) के प्रस्तुतीकरण के बारे में निर्णय लेते हैं।

21. अनुसन्धान प्ररचना का यह चरण सम्पूर्ण अनुसन्धान प्रक्रिया में लगने वाला समय, धन एवं मानवीय श्रम का अनुमान लगाने का है। इसी दौरान हम प्रशासकीय व्यवस्था की स्थापना एवं विकास का अनुमान भी लगाते हैं।

22. यदि आवश्यक हो तो पूर्व–परीक्षणों (Pre-Tests) एवं पूर्वगामी अध्ययनों (Pilot-Studies) का प्रावधान करना।

23. अनुसन्धान प्ररचना के इस चरण में हम कार्यविधियों (Proceducres) से सम्बन्धित सम्पूर्ण प्रक्रिया, नियमों, उपनियमों को विस्तारपूर्वक तैयार करते हैं।

24. अनुसन्धान के इस चरण में हम कर्मचारियों, अध्ययनकर्त्ताओं के प्रशिक्षण के ढंग एवं कार्य विधियों का उल्लेख करते हैं।

25. अनुसन्धान प्ररचना के इस अन्तिम चरण में हम यह प्रावधान करते हैं कि समस्त कर्मचारी एवं अध्ययन अनुसन्धानकर्त्ता एक सामंजस्य की स्थिति को बनाए रखते हुए कार्य के नियमों, कार्यविधियों की पालना करते हुए किस प्रकार सन्तोषप्रद ढंग से कार्य को पूर्ण करेंगे।

4.4.11 शोध–अभिकल्प की विषय–वस्तु :

शोध–प्ररचना के विभिन्न चरणों का अध्ययन करने के बाद यह भी आवश्यक हो जाता है कि हम यह जान लें कि शोध–अभिकल्प में किन–किन बातों का समावेश किया जाता है अर्थात शोध–अभिकल्प की विषय–वस्तु क्या होती है। सामान्यत : अनुसन्धान अभिकल्प मे निम्नलिखित विषयों का समावेश किया जाता है :

1. शोध का विषय (Topic of Research) : ऐसा करने से अध्ययन के विषय का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है तथा उसके क्षेत्र एवं सीमाओं का पता चल पाता है। उसके स्वरूप निर्धारण, खोज आदि के विषय में उपलब्ध साहित्य पत्र–पत्रिकाओं आदि का अध्ययन करना पड़ता है। अध्ययन के स्रोत सरकारी, गैर सरकारी, व्यक्तिगत, पुस्तकालयों या परिवेश सम्बन्धी हो सकते हैं।

2. अध्ययन की प्रकृति (Nature of Study) : इसमें शोध का प्रकार एवं स्वरूप निर्धारित करना पड़ता है। वह साँख्यिकीय, व्यक्तिगत, तुलनात्मक, प्रायोगिक, विश्लेषणात्मक, अन्वेषणात्मक या मिश्रित प्रकार का हो सकता है।

3. प्रस्तावना एवं पृष्ठभूमि (Introduction & Background) : इसमें उस विषय को चुनने की पृष्ठभूमि बतानी पड़ती है तथा उसकी शुरूआत करनी पड़ती है। इससे पता चल जाता है कि शोधक की उक्त विषय में रुचि किस प्रकार उत्पन्न हुई तथा समस्या का स्वरूप एवं स्थिति क्या थी। अब तक उस समस्या का किस–किस ने तथा किन परिणामों को प्राप्त

एवं अध्ययन किया? उनमें क्या कमियाँ एवं त्रुटियाँ रहीं? उनको अब दूर किया जाना किस प्रकार सम्भव एवं वाँछनीय है? आदि।

4. उद्देश्य (Objectives) : इसमें अनुसन्धानकर्त्ता या अन्वेषक अपना उद्देश्य बताता है। इसमें वह उप–उद्देश्य या लक्ष्य भी प्रकट करता है, अर्थात् प्रमुख एवं सहायक उद्देश्यों का उल्लेख करता है। ये प्रायः चार या पाँच वाक्यों में स्पष्ट किए जाते हैं।

5. अध्ययन का सामाजिक, साँस्कृतिक, राजनीतिक एवं भौगोलिक सन्दर्भ (Social, Cultural, Political & Geographical Context of Study) : इसमें शोधक स्पष्ट करता है कि वह किस प्रकार के समाज एवं संस्कृति के पर्यावरण में रह रहा है तथा उसके प्रमुख मूल्य, परम्पराएँ, मान्यताएँ आदि क्या हैं? इसमें स्थानीय मानक, रीति–रिवाज, परिपाटियाँ, आदि भी आ जाती हैं। इसके सन्दर्भ मे राजनीतिक व्यवस्था, व्यवहार एवं मूल्यों का उल्लेख कर दिया जाता है। भौगोलिक सन्दर्भ में मानव–व्यवहार को प्रभावित करने वाले तथ्य, स्थिति, जलवायु, प्राकृतिक बनावट, प्रकृति, उत्पादन आदि आते हैं। यदि सम्भव हो तो आर्थिक परिवेश का भी परिचय दे दिया जाना चाहिए। राजनीतिक शोध को सामाजिक, साँस्कृतिक, आर्थिक एवं औद्योगिक आयामों में समायोजित करना चाहिए।

6. अवधारणा, चर एवं प्राकल्पना (Concept,Variable & Hypothesis) : इस क्षेत्र में सबसे पहले यदि कोई सिद्धान्त या अवधारणात्मक रूपरेखा को आधार बनाया गया है, तो उसका उल्लेख किया जाना आवश्यक है। उसके सन्दर्भ में प्रमुख अवधारणाओं को स्पष्ट किया जाना चाहिएँ। उनको सुनिश्चित बनाने के लिए उनकी कार्यकारी परिभाषाएँ दी जानी चाहिए। जैसे यदि 'भ्रष्टाचार' की अवधारणा को प्रयुक्त किया गया है तो यह बताया जाना चाहिए कि उसे किन अर्थों में प्रयोग किया गया है। इसी तरह, यह बताया जा सकता है कि किन–किन चरों को केन्द्रीय विषय बनाया जा रहा है तथा उनसे सम्बन्धित कौन–कौन सी प्राकल्पनाओं का निर्माण किया गया है। जैसा कि पीछे बताया जा चुका है कि प्राकल्पनाओं का निर्माण अन्वेषण को सुनिश्चित बना देता है तथा उनसे शोध की दिशा, सीमा, क्षेत्र आदि निर्धारित हो जाते हैं।

कोहेन एवं नगेल ने बताया है कि हम समस्या की प्रस्तावित व्याख्याओं या समाधान के बिना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते। ये समस्या से सम्बद्ध विषय–सामग्री तथा शोधक के पूर्वज्ञान द्वारा सुझाए जाते हैं। जब इन सुझावों या व्याख्याओं को प्रस्तावनाओं

की तरह रखा जाता है, वे प्राकल्पनाएँ कहलाती हैं। ये प्राकल्पनाएँ तथ्यों में सुव्यवस्था लाकर शोध को निर्देशित कर देती हैं।

7. काल–निर्देश (Period-indication) : इसमें यह बताया जाता है कि शोध किस समय, काल या परिवेश से सम्बन्धित है। समय राजनीतिक अनुसन्धान में एक अतिशय महत्त्वपूर्ण कारक होता है।

8. तथ्य–सामग्री के चयन के आधार एवं संकलन प्रविधियाँ (Basis of Selection of Datas and Techniques of Collection) : इसमें तथ्य सामग्री के चयन के आधार बताए एवं निश्चित किए जाते हैं। यहाँ उनका औचित्य भी स्पष्ट किया जाना चाहिए। ये आधार प्रलेखीय, भौतिक अथवा वैचारिक प्रेक्षणीय आदि हो सकते हैं। तथ्य–संकलन की प्रविधियाँ मानवीय या मशीनी हो सकती हैं। अवलोकन, प्रश्नावली, साक्षात्कार, प्रेक्षपण आदि युक्तियों के द्वारा तथ्य एकत्र किए जा सकते हैं। इनकी उपयुक्तता पर ध्यान दिया जाना आवश्यक होता है।

9. विश्लेषण एवं निर्वचन (Analysis and interpretation) : सामग्री के एकत्रित होने के बाद उसके सारणीयन, वर्गीकरण एवं विश्लेषण प्रणालियों का संकेत दिया जा सकता है। उसके निर्वचन में कौन सी पद्धतियों का सहारा लिया जाएगा? अथवा उसकी सामान्यता या प्रामाणिकता की मात्रा क्या होगी? आदि बातों का उल्लेख न्यूनाधिक मात्रा में किया जा सकता है।

10. सर्वेक्षण–काल, समय एवं धन (Survey-Period, Time and Money) : इसमें यह भी संकेत दिया जाना चाहिए कि सर्वेक्षण कितने समय के भीतर सम्पन्न हो सकता है। उसे लगातार एक ही बार, या कई बार किया जाएगा? इसी प्रकार शोध में लगने वाले समय एवं धन का अनुमान भी बताया जाना चाहिए। यंग ने रोले के एक आदर्श–अनुसन्धान–अभिकल्प को प्रस्तुत किया है। उसमें कुल बारह बातें बताई गई हैं :

1. शोध–विषय की प्रकृति : व्यक्तिगत, दो या अधिक व्यक्तियों के समूह, उप–समूह, समाज या इनके मिश्रित समूह।

2. घटनाओं की संख्या : एक, कुछ चयनित घटनाएँ, या कई चुनी हुई घटनाएँ।

3. सामाजिक–भौतिक परिवेश : किसी एक समय में एक ही समाज से सम्बद्ध मामले, या कई समाजों के कई मामले।

4. घटनाओं को चुनने का प्राथमिक आधार : प्रतिनिधित्वपूर्ण, विश्लेषणात्मक या दोनों।

5. समय का तत्त्व : (एक ही समय में किया जाने वाला) स्थैतिक अध्ययन, (एक प्रक्रिया या लम्बे समय में घटित परिवर्तन वाला) गत्यात्मक अध्ययन।

6. अध्ययन के अन्तर्गत व्यवस्था के ऊपर शोधक के नियन्त्रण की सीमा : व्यवस्थित या अव्यवस्थित नियन्त्रण।

7. आधार–सामग्री के मूल स्रोत : प्रस्तुत उद्देश्य के लिए शोधक द्वारा नई आधार–सामग्री का संकलन (शोध–समस्या की आवश्यकता के अनुसार)।

8. आधार–सामग्री को एकत्र करने की पद्धति : अवलोकन, प्रश्न या दोनों अमिश्रित या अन्य कोई।

9. शोध में प्रयुक्त चरों या गुणों की संख्या : एक, कुछ या कई।

10. एक गुण का विश्लेषण करने की पद्धति : अव्यवस्थित वर्णन, चरों का मापन।

11. विभिन्न गुणों या चरों के मध्य सम्बन्धों के विश्लेषण की पद्धति : अव्यवस्थित वर्णन, व्यवस्थित विश्लेषण।

12. ऐकिक या सामूहिक रूप में व्यवस्था के गुणों का अध्ययन।

एक अच्छे अन्वेषण–रूपाँकन या प्ररचना में अनेक विशेषताएँ पाई जाती हैं। वह शोध–प्रक्रिया के दौरान आवश्यकतानुसार संशोधित एवं परिवर्तित किए जा सकने के कारण लचीला होता है। उसकी अवधारणाएँ स्पष्ट, सुनिश्चित एवं आनुभविक होती हैं। इससे शोध में परिशुद्धता आ जाती है। दूसरे शब्दों में, शोध को अभिनतियों तथा पूर्वाग्रहों से बचाने का पूर्व प्रबन्ध कर लिया जाता है। ऐसा करने से उसमें विश्वसनीयता बढ़ जाती है। शोध–प्ररचना सभी उपलब्ध सामग्री, साधनों एवं स्रोतों का अध्ययन करने के पश्चात् ही बनाई जाती है। उसको सभी सम्बद्ध पक्षों से जोड़ने का प्रयास भी किया जाता है। किन्तु ऐसा करते समय अन्य विषयों या अनुशासनों से सामग्री यथावत् ग्रहण नहीं की जाती। उसमें अवधारणाओं को प्रयोग करते समय राजनीतिक सन्दर्भ का ध्यान रखा जाता है। चरों

का स्वरूप स्पष्ट कर देने से शोधक अपने मूल्यों को पृथक रखने में सफल हो जाता है और अनुसन्धान मूल्य मुक्त बन जाता है। अनुसन्धान प्रकल्प की उपयुक्त सभी विशेषताएँ एवं अंश किन्हीं कठोर एवं निर्धारित मार्गों पर चलने को बाध्य नहीं हैं। नई स्थितियों, दशाओं एवं विशेषताओं के दृष्टिगोचर हो जाने पर उनमें स्पष्टीकरण देते हुए परिवर्तन कर लिया जाता है। वस्तुत : राजनीतिक–विषयक अनुसन्धान–प्रकल्प में ऐसा करना आवश्यक भी हो जाता है।

4.4.12. अपनी प्रगति जांचिए :

(च) अनुसंधान अभिकल्प से क्या अभिप्राय है?

(छ) एक आदर्श अनुसंधान विकल्प की दो विशेषताएँ बताओ।

(ज) शोध प्रारूप के कोई दो महत्त्व बताओ।

(झ) शोध प्रारूप के विभिन्न उप–शोध प्रारूप के नाम बताओ।

(ञ) अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप को परिभाषित करो।

(ट) अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप के दो महत्त्व बताओ।

(ठ) अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप की विधियों के नाम बताओ।

(ड) वर्णनात्मक अनुसंधान प्रारूप को परिभाषित करो।

(ढ) वर्णनात्मक अनुसंधान प्रारूप के उद्देश्यों के नाम बताओ।

(ण) प्रयोगात्मक शोध प्रारूप से क्या अभिप्राय है?

(त) प्रयोगात्मक शोध प्रारूप को किन दो वर्गों में रखा जाता है?

4.4.13. अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर :

(च) अन्वेषण कार्य प्रारम्भ करने से पहले अनुसंधान अन्वेषण या अध्ययन के आधारभूत प्रश्नों के संबंध में कार्ययोजना तैयार करना ही अनुसंधान अभिकल्प कहलाता है।

(छ) आदर्श अनुसंधान विकल्प की विशेषताएँ :

– विश्वनीयता व सत्यता

– चरों की परिभाषा व मूल्य कथन

(ज) शोध प्रारूप का महत्व :

– शोध को क्रमबद्ध व तार्किक बनाता है

– शोधकर्त्ता के विचारों को मजबूत आधार प्रदान करता है।

(झ) शोध प्रारूप के विभिन्न उप–शोध प्रारूप :

निदर्शन प्रारूप–इकाइयों की चयन पद्धति से संबंधित

अवलोकन प्रारूप – अध्ययन संबंधी अवलोकन

सांख्यिकीय प्रारूप – इकाइयों व आँकड़ों के विश्लेषण की पद्धति

कार्यात्मक प्रारूप – उपर्युक्त तीनों प्रारूपों के अंतर्गत दर्शाई पद्धति को लागू करना।

(ञ) अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप : शोध कार्य के अन्तर्गत सामाजिक घटना में अन्तर्निहित कारणों को ढूंढ निकालने से संबंधित रूपरेखा का निर्माण ही अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप है।

(ट) अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप का महत्व :

– तात्कालिक स्थिति संबंधी सूचना

– महत्वपूर्ण समस्याओं को प्रस्तुत करना

(ठ) अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप की विधियाँ :

– संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण

– आनुभाविक व्यक्तियों से सर्वेक्षण

– एकल–विषय अध्ययन

(ड) वर्णनात्मक अनुसंधान प्रारूप :

शोध समस्या के संबंध में वास्तविक तथ्यों के आधार पर वर्णनात्मक विवरण प्रस्तुत करना वर्णनात्मक शोध प्रारूप कहलाता है।

(ढ़) वर्णनात्मक अनुसंधान प्रारूप के उद्देश्य :

– समूह के लक्षणों का परिशुद्ध वर्णन

– किसी चर की आवृत्ति निश्चित करना

– चरों के साहचर्य के विषय में पता लगाना

(ण) प्रयोगात्मक शोध प्रारूप : प्रयोगात्मक प्रारूप को प्रमाण के संग्रह के ऐसे ढंग के रूप में समझा जा सकता है जिससे उपकल्पना की सत्यता के विषय में परिणाम निकालने की अनुमति मिल सके।

(त) प्रयोगात्मक शोध प्रारूप को मुख्य दो वर्गों में बांटा जाता है :

– केवल पश्चात् परीक्षण

– पूर्व–पश्चात् परीक्षण

4.5 वैयक्तिक अध्ययन

(Case Study)

वैयक्तिक अध्ययन किसी एकल मामले का गहन अध्ययन होता है जो एक व्यक्ति, संस्था, एक व्यवस्था, एक समुदाय, एक संगठन, एक घटना और यहाँ तक कि सम्पूर्ण संस्कृति का अध्ययन हो सकता है। वैयक्तिक अध्ययन आधार सामग्री संग्रह की एक विधि मात्र न होकर एक शोध की रणनीति है अथवा आनुभविक जांच है जो साक्ष्यों के अनेक स्रोतों का अन्वेषण करती है। वैयक्तिक अध्ययन एक प्रकार का अनुसंधान अभिकल्प है जिसमें आमतौर पर आधार सामग्री का स्रोत चयन करने के लिए गुणात्मक विधि का प्रयोग होता है। यह सम्पूर्ण विवरण प्रस्तुत करता है जो अध्ययन के अन्तर्गत मामले में अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है। जब मामले को विकसित करने में ध्यान केंद्रित किया जाता है तब इसे व्यक्ति वृत्त कहा जाता है।

यिन के अनुसार, ''एक आनुभविक जाँच जो एक तत्कालीन घटना की स्वयं के जीवन सन्दर्भ की सीमा में अन्वेषण करती है, जब घटना और संदर्भ के बीच की सीमाएँ स्पष्ट न हों और जिसमें साक्ष्य के अनेक स्रोतों का प्रयोग किया जाता है।''

क्रोमरे के अनुसार, ''वैयक्तिक अध्ययन में व्यक्तिगत मामलों का अध्ययन शामिल होता है जो प्रायः अपने प्राकृतिक वातावरण में और एक लम्बी समय अवधि के लिए किया जाता है।''

अतः स्पष्ट है कि वैयक्तिक अध्ययन किसी घटना या घटनाओं का श्रृंखला मात्र विवरण नहीं है, बल्कि यह उपयुक्त सैद्धान्तिक प्रारूप का विश्लेषण करता है अथवा सैद्धान्तिक निष्कर्षों का समर्थन करता है। वैयक्तिक अध्ययन सरल व विशिष्ट हो सकते हैं। जैसे – 'राम एक अपराधी लड़का', या जटिल व अमूर्त हो सकता है जैसे 'एक विश्वविद्यालय में निर्णय लेने की प्रक्रिया।' लेकिन वैयक्तिक अध्ययन होने के लिए चाहे विषय कोई भी हो यह एक सुनिशिचित व्यवस्था/इकाई हो या इसका स्वयं का एक अस्तित्त्व होना चाहिए। वैयक्तिक अध्ययन सामाजिक विज्ञानों के साथ–साथ चिकित्सा व सामाजिक कार्यों में भी प्रयोग में लाए जाते हैं।

4.5.1 वैयक्तिक अध्ययन की विशेषताएं और सिद्धांत
(Characteristics and Principles of Case Study)

विशेषताएं : हार्टफील्ड ने वैयक्तिक अध्ययन की निम्नलिखित विशेषताएं बताई हैं :

- यह सम्पूर्ण इकाई को उसकी समग्रता में अध्ययन करता है न कि इन इकाइयों के चुने हुए पहलुओं या चरों का।
- विकृतियों और त्रुटियों से बचने के लिए उसमें आधार सामग्री संग्रह की कई विधियों का प्रयोग किया जाता है।
- यह प्रायः एकल इकाई का अध्ययन करता है। एक इकाई एक अध्ययन होती है।
- यह उत्तरदाता को एक ज्ञानवान व्यक्ति समझता है, केवल आधार सामग्री के स्रोत मात्र रूप में नहीं देखता।
- यह प्रतीकात्मक मामलों का अध्ययन करता है।

सिद्धांत (Principles) :

वैयक्तिक अध्ययन में आधार सामग्री संग्रह के सिद्धांत इस प्रकार हैं :

1. बहु स्रोतों का प्रयोग : आधार सामग्री संग्रह के एक स्रोत का प्रयोग सामान्यीकरण के लिए पर्याप्त साक्ष्य नहीं देता। लेकिन अनेक स्रोतों से जानकारी प्राप्त करना, जैसे, साक्षात्कार, अवलोकन, दस्तावेजों का विश्लेषण, वैयक्तिक अध्ययन उपागम की बड़ी शक्ति मानी जाती है क्योंकि यह निष्कर्षों की विश्वसनीयता तथा वैधता को सुधारने में भी योगदान करता है।

2. साक्ष्यों की श्रृंखला बनाए रखना : वैयक्तिक अध्ययन में जिन साक्ष्यों से निष्कर्ष निकाले जाते हैं, वे न केवल बताए जाते हैं और विशेष मामलों में उद्धृत किये जाते हैं जैसे न्यायालय में किसी आपराधिक मामले की जांच पड़ताल में बल्कि उन्हें कुछ समय के लिए सुरक्षित भी रखना होता है ताकि मूल्यांकनकर्ता स्रोत और साक्ष्यों की पुष्टि करने में समर्थ हो सके।

3. आधार सामग्री का अभिलेखन : आधार सामग्री या तो अवलोकन और साक्षात्कार के दौरान संक्षेप में रिकार्ड की जा सकती है या फिर उसे छोटे–छोटे विवरणों सहित टेप रिकार्ड किया जा सकता है। यदि साक्षात्कार/अवलोकन के समय छुटपुट नोट्स लिये गये हैं तो बाद में जितनी जल्दी हो विस्तृत नोट्स का अभिलेख तैयार किया जाना चाहिए।

4.5.2 वैयक्तिक अध्ययन के उद्देश्य (Purposes of Case Study) :

वैयक्तिक अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य बताए हैं :

1. प्रारम्भिक जांच अन्वेषण के रूप में इसका प्रयोग करना क्योंकि यह उन चरों प्रक्रियाओं तथा सम्बन्धों को प्रकाश में ला सकता है जिनके लिए अधिक सघन जांच वांछित हो। इस अर्थ में यह भविष्य के अनुसंधान के लिए प्राक्कल्पना का स्रोत भी हो सकता है।

2. घटना की गहन जाँच करना और विस्तृत जनसंख्या के विषय में जिससे वह इकाई सम्बद्ध है, सामान्यीकरण स्थापित करने की दृष्टि से उसका गहनता से विश्लेषण करना।

3. उपाख्यानात्मक साक्ष्य प्राप्त करना जिससे अधिक सामान्य निष्कर्ष निकालने में मदद मिलती हो।

4. सार्वभौमिक सामान्यीकरण को नकारना। सिद्धान्त निर्माण में एक मामला महत्वपूर्ण प्रतिनिधित्व करने की जाँच की दिशा केन्द्रित करने में सहायक हो सकता है।

5. इसे स्वयं में एक आदर्श, अनोखा व रोचक मामले के रूप में प्रयोग करना।

4.5.3 वैयक्तिक अध्ययनों के प्रकार (Types of Case Studies) :

राबर्ट बर्न्स ने छह प्रकार के व्यक्तिगत अध्ययन बताए हैं, जो निम्न हैं :

1. ऐतिहासिक वैयक्तिक अध्ययन : यह अध्ययन किसी संगठन/व्यवस्था के दीर्घकालीन विकास का पता लगाता है। बचपन से लेकर जवानी तक एक वयस्क अपराधी का अध्ययन

इसका एक उदाहरण है। इस प्रकार का अध्ययन साक्षात्कारों, अभिलेखों तथा दस्तावेजों पर अधिक निर्भर करता है।

2. अवलोकन वैयक्तिक अध्ययन : यह अध्ययन एक शराबी, अध्यापक, छात्र, यूनियन नेता, कोई गतिविधि घटना या लोगों के विशेष समूह के अवलोकन पर केन्द्रित होता है। यद्यपि इस प्रकार के अध्ययन में अनुसंधानकर्त्ता शायद ही पूर्ण भागीदार या पूर्ण अवलोकनकर्ता होते हैं।

3. मौखिक इतिहास वैयक्तिक अध्ययन : यह आमतौर पर किसी व्यक्ति द्वारा किये गये कथन होते हैं जो कि अनुसंधानकर्त्ता किसी व्यक्ति से गहन साक्षात्कार के माध्यम से एकत्र करता है। उदाहरणार्थ, एक मादक पदार्थ सेवन करने वाला व्यक्ति या एक शराबी, या एक वेश्या, या रिटायर्ड व्यक्ति जो अपने बेटे के साथ परिवार में समायोजन करने में असफल रहता है। इस उपागम का प्रयोग उत्तरदाताओं के सहयोग और स्वभाव पर अधिक निर्भर करता है।

4. स्थितीय वैयक्तिक अध्ययन : इस प्रकार के अध्ययन में विशेष घटनाओं का अध्ययन होता है। घटना से संबंधित सभी व्यक्तियों के विचार लिये जाते हैं। उदाहरणार्थ, एक साम्प्रदायिक दंगा–यह दो भिन्न धर्मों के दो व्यक्तियों के बीच संघर्ष से कैसे शुरू हुआ, किस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति ने उस स्थान पर उपस्थित अपने–अपने धर्म के लोगों का समर्थन माँगा, पुलिस को कैसे सूचित किया गया, किस प्रकार पुलिस ने एक विशेष धार्मिक समूह के लोगों को गिरफ्तार किया, किस प्रकार अभिजात वर्ग ने दखलन्दाजी की और पुलिस पर दबाव डाला, जनता और मीडिया ने कैसे प्रतिक्रिया की आदि। इस सभी विचारों को एक साथ रखकर घटना का गहनता से अध्ययन किया जाता है जो कि उसे समझने में महत्वपूर्ण योगदान करता है।

5. चिकित्सकीय वैयक्तिक अध्ययन : इस उपागम का प्रयोग किसी विशेष व्यक्ति को गहराई से समझने के उद्देश्यों से किया जाता है जैसे कि अस्पताल में एक मरीज, जेल मे बन्दी, सुरक्षा गृह में एक महिला, स्कूल में एक समस्याग्रस्त बच्चा अदि। इन अध्ययनों में विस्तृत साक्षात्कार, अवलोकन, अभिलेखों और प्रतिवेदनों की जाँच आदि शामिल हैं।

6. बहु–वैयक्तिक अध्ययन : एक वैयक्तिक अध्ययनों का संग्रह होता है या एक प्रकार की पुनरावृत्ति, अर्थात् बहु–प्रयोग। उदाहरणार्थ, हम तीन वैयक्तिक अध्ययन लेकर पुनरावृत्ति के तर्क पर उनका विश्लेषण कर सकते हैं। तर्क यह है कि प्रत्येक मामला या तो विरोधी निष्कर्ष देगा या समान निष्कर्ष देगा। नतीजा या तो प्रारम्भिक प्रस्थापना का समर्थन करेगा या फिर अन्य मामलों से पुन : निरीक्षण और पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता को दर्शाएगा। बहु–प्रकरण अभिकल्प का लाभ यह है कि साक्ष्य अधिक सशक्त हो सकते हैं। फिर भी इस उपागम में अधिक प्रयत्न और समय की आवश्यकता होती है।

4.5.4 वैयक्तिक अध्ययन के लिए आधार सामग्री संग्रह करने के स्रोत (Sources of Data Collection for Case Studies) : प्रारम्भिक आधार सामग्री के दो मुख्य स्रोत हैं, साक्षात्कार और अवलोकन जबकि गौण आधार सामग्री विविध दस्तावेजों से एकत्र की जाती है जैसे, प्रतिवेदन, अभिलेख, समाचार पत्र, पत्रिकाएं, पुस्तकें, फाइलें, डायरी आदि। गौण स्रोत हो सकता है सटीक न हो और पक्षपात पूर्ण हों लेकिन वे साक्षात्कार की अपेक्षा घटनाओं और प्रकरणों को अधिक विस्तार से स्पष्ट कर सकते हैं। साक्षात्कार संरचित या असंरचित हो सकते हैं। अधिकतर असंरक्षित साक्षात्कार ही अन्वेषण में प्रयोग किये जाते हैं। प्रश्न आमतौर पर बातचीत के स्वर में मुक्त प्रश्न होते हैं। यद्यपि कभी–कभी संरचित साक्षात्कार का भी प्रयोग वैयक्तिक अध्ययन के भाग के रूप में किया जाता है। अवलोकन विधि या तो सहभागी या असहभागी विधि हो सकती है। कुछ विषयों के लिए असहभागी अवलोकन अधिक उपयुक्त होता है। दोनों ही विधियाँ अन्वेषक को एक बाहरी व्यक्ति के दृष्टिकोण से देखने का अवसर प्रदान करती हैं, जैसे परिवार में छात्र का व्यवहार मजदूर संघ की बैठकों में मजदूरों का व्यवहार, कार्यालय में लिपिक का व्यवहार आदि। ऐसे अवलोकन आकस्मिक से होकर औपचारिक तक हो सकते हैं।

विविध स्रोतों से आधार सामग्री एकत्र करने में अन्वेषक के पास निम्नलिखित कौशल होने चाहिएँ :

- उत्तरदाताओं से पूर्ण जानकारी निकलवाने के लिए सार्थक व सूक्ष्म प्रश्न बनाने हेतु उसमें क्षमता होनी चाहिए। कभी–कभी अप्रत्याशित उत्तर जाँच को गहन बनाने के लिए प्रेरित करते हैं।

- उसे एक अच्छा श्रोता होना चाहिए, अर्थात् उसको सभी प्रयुक्त संकेतों, भावों और शब्दों पर ध्यान देना चाहिए।
- उसे लचीला व अनुकूलनशील प्रकृति वाला होना चाहिए क्योंकि आधार सामग्री संग्रह हमेशा योजना के अनुसार नहीं चलता। यहाँ तक कि जाँच का केन्द्र भी बदल सकता है।
- उसे उत्तरदाताओं के दृष्टिकोण के संदर्भ में उत्तरों को समझने का प्रयत्न करना चाहिए। कभी–कभी उत्तर एक दूसरे से भिन्नता लिए हो सकते हैं और अधिक सदस्यों की आवश्यकता की ओर अग्रसर कर सकते हैं।
- जानकारी के अभिलेखन में या विश्लेषण में उसे कोई पक्षपात नहीं करना चाहिए।

4.5.5 वैयक्तिक अध्ययन का नियोजन (Planning the Case Study) :

वैयक्तिक अध्ययन के अनुंसधान अभिकल्प में चार तत्त्व होते हैं –

1. **प्रारम्भिक प्रश्नों का अभिकल्पन :** इसमें कौन, कहाँ, कब, क्या और कैसे शब्दों से पूछे जाने वाले प्रश्न शामिल होते हैं। उदाहरणार्थ किसी मादक पदार्थ सेवन करने वाले नशेड़ी के वैयक्तिक अध्ययन में इस प्रकार के प्रश्न जैसे, किस प्रकार के मादक पदार्थ सेवन किए जाते हैं, इन्हें कितनी बार लिया जाता है, मादक पदार्थ सेवन पहली बार कब किया गया था, मादक पदार्थ प्राप्त करने के स्रोत क्या हैं, मादक पदार्थों पर एक दिन/सप्ताह/माह में कितना धन खर्च होता है।

2. **अध्ययन की प्रस्थापना :** जहाँ प्रारम्भिक प्रश्न सामान्य प्रकार के होते हैं, वहीं विशेष साक्ष्य प्राप्त करने के लिए विशेष प्रश्नों के पूछे जाने की आवश्यकता होती है। उपरोक्त उदाहरण में, विशेष प्रश्न हो सकते हैं – गत सप्ताह नशेड़ी द्वारा किन मादक पदार्थों का सेवन किया गया, मादक पदार्थ उसे किससे प्राप्त हुए, उन्हें खरीदने के लिए उसको धन कहां मिला, इत्यादि।

3. **विश्लेषण की इकाई :** इसमें वास्तविक प्रकरण को परिभाषित किया जाता है, अर्थात् व्यक्ति, घटना और व्यवस्था जिसका अध्ययन किया जाता है। उदाहरणार्थ, उपरोक्त मामले में हम किसी कॉलेज/विश्वविद्यालय में मादक पदार्थ सेवन करने वालों की पहचान कर सकते हैं और इन्हीं छात्रों तक अपना अध्ययन सीमित कर सकते हैं। इस प्रकार

अनुसंधानकर्त्ता बँध जाता है और वह अनियमित रूप से चयनित लोगों से आधार सामग्री संग्रह करने के लिये लालायित नहीं होगा।

4.5.6 वयैक्तिक अध्ययन के लाभ (Advantages of Case Study) :

वैयक्तिक अध्ययन के लाभ निम्नलिखित हैं :

1. व्यावहारिक रूप से किसी भी प्रकार के सामाजिक परिवेश में यह अध्ययन किया जा सकता है।

2. विषय के किसी भी पहलू के अध्ययन के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है जैसे, यह एक विशेष पहलू का अध्ययन कर सकता है और दूसरे पहलुओं को शामिल नहीं भी कर सकता है।

3. यह एक गहन अध्ययन सम्भव बनाता है।

4. वैयक्तिक अध्ययन खर्चीले नहीं होते।

5. यह आधार सामग्री संग्रह की विधियों के प्रयोग में लचीला होता है, जैसे प्रश्नावली, साक्षात्कार, अवलोकन आदि।

6. यह अनोखे मामलों के अध्ययन में मदद करता है जो कि न केवल चिकित्सकीय मनोविज्ञान में बल्कि समाजशास्त्र में विचलित समूहों, समस्याग्रस्त व्यक्तियों के अध्ययन में भी लाभप्रद होता है।

एक वैयक्तिक अध्ययन के विपरीत बहु वैयक्तिक अध्ययन भी होते हैं, जहाँ भली भाँति विकसित सिद्धान्त का परीक्षण करने के लिए अनेक मामलों का अध्ययन किया जाता है। बहु वैयक्तिक अध्ययन के अभिकल्प में कितने मामले शामिल किये जायें, यह अध्ययन के अन्तर्गत समस्या के स्वरूप पर निर्भर करेगा तथा उन दशाओं पर भी जिनमें यह घटित होती हैं।

4.5.7 वैयक्तिक अध्ययनों की आलोचनाएँ (Criticisms of Sase Studies) : वैयक्तिक अध्ययन की आमतौर पर निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की जाती है–

1. व्यक्तिगत पूर्वाग्रह : वैयक्तिक अध्ययन को तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता है क्योंकि सामग्री संग्रह में अन्वेषक की आत्मपरकता दिखाई देती है जो उसने विशेष व्याख्या के

समर्थन या झुठलाने में दर्शाई हो। कई बार अपने विचारों से अपने निष्कर्षों की दिशा को प्रभावित करने देता है। अन्वेषक पर बाहरी नियंत्रण इतना कमजोर होता है कि वह अपने व्यक्तिगत विचारों को आगे बढ़ाने के अवसर को छोड़ना नहीं चाहता।

2. समय लेने वाले : यह अध्ययन समय अधिक लेता है क्योंकि यह ऐसी बहुत सी जानकारी एकत्रित करता है जिसका पर्याप्त विश्लेषण कठिन होता है। चयनात्मकता में पक्षपात की प्रवृति होती है। लेकिन यदि वैयक्तिक अध्ययन अध्ययनित व्यक्ति या घटना के सार्थक प्रकरणों पर ही केन्द्रित है तब इसमें अधिक समय लगाने की आवश्यकता नहीं होती।

3. संदिग्ध विश्वसनीयता : वैयक्तिक अध्ययन में विश्वसनीयता स्थापित करना कठिन होता है। अनुसंधानकर्ता आधार सामग्री प्राप्त करने में या उसके विश्लेषण में पक्षपात न करने में अपनी प्रमाणिकता सिद्ध नहीं कर सकता। चरणों व प्रक्रियाओं का निर्धारण उस सीमा तक करना सरल नहीं है जहाँ अन्य लोग अध्ययन की पुनरावृत्ति कर सकें।

4. प्रतिनिधिक स्वरूप का अभाव : वैयक्तिक अध्ययन के खिलाफ एक और तर्क है कि इसका प्रतिनिधिक स्वरूप नहीं होता, अर्थात् प्रत्येक अध्ययन किया जाने वाला प्रकरण अन्य समान प्रकरणों का प्रतिनिधित्व नहीं करता।

5. निष्कर्ष पक्षपात पूर्ण : वैयक्तिक अध्ययनों के निष्कर्ष पक्षपातपूर्ण होते हैं क्योंकि आमतौर पर अनुसन्धान अव्यवस्थित होता है। यह आलोचना सम्भवत : मात्रात्मक अनुसंधानकर्ता के गुणात्मक आधार सामग्री के प्रति पूर्वाग्रह पर आधारित है। वे सोचते हैं कि सामाजिक जीवन की वैधता और विश्वसनीयता का वर्णन और व्याख्या करने के लिए केवल संख्याओं का ही प्रयोग हो सकता है। उनका यह भी विश्वास है कि गुणात्मक अध्ययन की पुनरावृत्ति नहीं की जा सकती।

6. सामान्यीकरण का अभाव : वैयक्तिक अध्ययन सामान्यीकरण के लिए उपयोगी नहीं होते। एक तर्क तो यह है कि एकल मामले के आधार पर सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता। दूसरा तर्क यह है कि यदि इस उद्देश्य के लिए अधिक संख्या में मामलों का प्रयोग किया जाता है तब उनमें तुलना करना अत्यन्त कठिन होगा। प्रत्येक मामले में कई अनोखे पहलू होते हैं। लेकिन ऐसे ही तर्क प्रयोगात्मक अध्ययन के लिए भी दिये जा सकते हैं।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद भी यह कहा जा सकता है कि वैयक्तिक अध्ययन चुनौती, विस्तार व पुष्टि प्रदान करने हेतु एक विवेचनात्मक परीक्षण प्रदान करता है।

4.5.8 अपनी प्रगति जांचिए :

(थ) वैयक्तिक अध्ययन का अर्थ बताओ।

(द) वैयक्तिक अध्ययन विधि के सिद्धान्तों का वर्णन करो।

(ध) रॉबर्ट बर्न्स ने वैयक्तिक अध्यन के कितने प्रकार बताए हैं?

(न) सर्वेक्षण विधि से आपका क्या अभिप्राय है ?

(प) वैयक्तिक अध्ययन विधि के कोई दो लाभ बताओ।

(फ) वैयक्तिक अध्ययन के चार तत्त्वों के नाम बताओ।

4.5.9 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर :

(थ) वैयक्तिक अध्ययन में व्यक्तिगत मामलों का अध्ययन शामिल होता है। जो प्रायः अपने प्राकृतिक वातावरण में और एक लंबी समय अवधि के लिए किया जाता है।

(द) वैयक्तिक अध्ययन विधि के सिद्धान्त :

- बहु स्रोतों का प्रयोग
- साक्ष्यों की शृंखला बनाए रखना
- आधार सामग्री का अभिलेखन

(ध) रॉबर्ट बर्न्स ने छ : प्रकार के वैयक्तिक अध्ययन बताए हैं :

- ऐतिहासिक वैयक्तिक अध्ययन
- अवलोकन वैयक्तिक अध्ययन
- मौखिक इतिहास वैयक्तिक अध्ययन
- स्थितीय वैयक्तिक अध्ययन
- चिकित्सकीय वैयक्तिक अध्ययन
- बहु–वैयक्तिक अध्ययन

(द) सर्वेक्षण विधि : अनुसंधान की इस विधि द्वारा ज्ञात समुदाय से लिए गए प्रतिदर्श की विशेषताओं पर आधारित परिणाम प्राप्त होते हैं। इस विधि में स्वाभाविक रूप से होने वाले अपेक्षाकृत अधिक मामलों का अध्ययन के लिए चयन किया जाता है।

(प) वैयक्तिक अध्ययन विधि के लाभ :

- गहन अध्ययन संभव
- किसी भी सामाजिक परिवेश में अध्ययन संभव

(फ) वैयक्तिक अध्ययन के चार तत्त्व :

- प्रारंभिक प्रश्नों का अभिकल्प
- अध्ययन की प्रस्थापना
- विश्लेषण की इकाई
- निष्कर्षों की व्याख्या के लिए तैयार आधार

4.6. सारांश :

इस समस्त अध्ययन के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि शोध को क्रमबद्ध एवं प्रभावपूर्ण ढंग से समय, कार्य एवं लागत के न्यूनतम प्रयासों के साथ संचालित करने के लिए शोधकर्त्ता के लिए शोध प्रारूप का निर्माण करना परमावश्यक है जोकि अध्ययन के सभी महत्वपूर्ण तथ्यों का निर्देशन कर सके। यद्यपि प्रत्येक अनुसंधान प्रतिरूप में अलग होता है लेकिन सिद्धान्त रूप में यह अन्य प्रतिदर्शों में थोड़ा ही भिन्न होगा। प्रतिरूप का संदर्भ एक सा होगा केवल विषय–वस्तु अलग होगी। समस्या के निर्धारण के अंतर्गत समस्या का स्पष्टीकरण करते समय उसे स्पष्ट रूप में परिभाषित करना परमावश्यक है। शोध समस्या का चयन करते समय सामान्य तौर पर वैज्ञानिक तर्कों का सहारा लिया जाता है चूंकि शोध समस्या के रूप में विषय का निर्धारण वैज्ञानिक खोज का प्रथम चरण है। किसी भी शोध की प्रमाणिकता व सार्थकता का मापदंड यही होता है कि वह कितना बौद्धिक, सैद्धांतिक एवं क्रमबद्ध है। इसकी विश्वसनीयता इस बात पर निर्भर करती है कि वह उस शोध विषय के लिए कितना महत्व रखता है। इसलिए शोध कार्य की सफलता हेतु सही शोध समस्या का चयन व उसका निरूपण परमावश्यक है। वैयक्तिक अध्ययन का

अनुसंधान अभिकल्प अर्थात् शोध प्रारूप भी सामाजिक अनुसंधान की मुख्य धारा के अभिकल्प के समान ही होता है। पहले वैयक्तिक अध्ययन को सीमित प्रयोग वाला माना जाता था क्योंकि उसमें सामान्यीकरण की गुंजाइश नहीं होती। किंतु आजकल वैयक्तिक अध्ययन वर्णनात्मक व मूल्यांकनपरक दोनों अध्ययनों में शोध का वैध तरीका माना जाता है। वैयक्तिक अध्ययन का अभिकल्पन अधिक आधार सामग्री प्राप्त करने, प्राक्कल्पना निर्माण तथा मात्रात्मक अध्ययन की व्यावहारिकता का परीक्षण करने के लिए किया जाता है। मात्रात्मक अनुसंधान में वैयक्तिक अध्ययन तीन उद्देश्यों–वास्तविक अनुसंधान की भूमिका के रूप में, पूर्व परीक्षण के रूप में तथा मुख्य अध्ययन के अनुसंधान के पश्चात् व्याख्या के रूप के लिए किया जाता है। इस प्रकार वैयक्तिक अध्ययन को स्वायत्त अनुसंधान विधि की अपेक्षा अन्य अध्ययनों के पूरक के रूप में प्रयोग किया जाता है।

4.7. मुख्य शब्दावली :

- **शोध समस्या :** शोध प्रक्रिया में शोध समस्या के रूप में विषय का निर्धारण, समस्या का स्पष्टीकरण, शोध विषय को अच्छे से परिभाषित करना साथ ही शोधकर्त्ता के उद्देश्यों को स्पष्ट रूप प्रदान करने के अतिरिक्त इन उद्देश्यों को अवधारणात्मक रूप में परिभाषित करना है।
- **शोध प्रारूप :** एक ऐसी योजना व रूपरेखा जो शोध की समस्या के निर्माण से लेकर निष्कर्ष तक सभी पक्षों को इस प्रकार निर्देशित, नियंत्रित व संचालित करना कि न्यूनतम समय, धन व प्रयत्नों के माध्यम से अधिक से अधिक अनुसंधान उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके।
- **अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप :** अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप का संबंध नवीन तथ्यों की खोज से होता है। इस प्रारूप के माध्यम से अज्ञात तथ्यों की खोज या सीमित ज्ञान के बारे में व्यापक खोज की जाती है।
- **वर्णनात्मक शोध प्रारूप :** घटनाओं व तथ्यों के वास्तविक स्वरूप का विस्तारपूर्वक वर्णन जैसे कि वे वास्तव में हैं।
- **वैयक्तिक अध्ययन :** एक आनुभविक जाँच जो एक तत्कालीन घटना की स्वयं के जीवन संघर्ष की सीमा में अन्वेषण करती है, जब घटना और संदर्भ के बीच की सीमाएँ स्पष्ट न हों और जिसमें साक्ष्य के अनेक स्रोतों का प्रयोग किया जाता है।

- **सर्वेक्षण विधि :** ज्ञात जनसंख्या में से प्रतिदर्श का चुनाव करके अवलोकन या निरीक्षण के माध्यम से परिणामों का निरूपण।

4.8. अभ्यास हेतु प्रश्न :

(क) प्रस्तुत प्रश्नों के संक्षिप्त में उत्तर दीजिए :

1. शोध समस्या का चुनाव किस प्रकार किया जाता है?
2. शोध समस्या के निर्धारण में किन सावधानियों को ध्यान में रखना चाहिए?
3. अनुसंधान समस्या के स्रोतों का वर्णन करो।
4. अनुसंधान अभिकल्प की विशेषताओं का वर्णन करो।
5. अनुसंधान अभिकल्प के प्रकारों का संक्षिप्त वर्णन करो।
6. प्रयोगात्मक अनुसंधान अभिकल्प की उपादेयता का वर्णन करो।
7. वैयक्तिक अध्ययन विधि की विशेषताओं का वर्णन करो।
8. वैयक्तिक अध्ययन विधि व सर्वेक्षण विधि में अंतर बताओ।
9. वैयक्तिक अध्ययन के लिए आधार सामग्री संग्रह के स्रोतों का वर्णन करो।
10. वैयक्तिक अध्ययन विधि की किन्हीं चार आलोचनाओं का वर्णन करो।

(ख) इन प्रश्नों के विस्तारपूर्वक उत्तर दीजिए :

1. शोध समस्या के चयन के समय किन बातों को ध्यान में रखना चाहिए व शोध समस्याओं के स्रोतों का वर्णन कीजिए।

2. शोध समस्या के विभिन्न लक्षणों का वर्णन करते हुए इसके विभिन्न चरणों का वर्णन कीजिए।

3. अनुसंधान अभिकल्प को परिभाषित करते हुए एक अच्छे अनुसंधान अभिकल्प की विशेषताओं का वर्णन करो।

4. अनुसंधान अभिकल्प के महत्व व आवश्यकता का विस्तारपूर्वक वर्णन करो।

5. अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप क्या है? सामाजिक अनुसंधान में अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप के महत्व का वर्णन करो।

6. वर्णनात्मक शोध अभिकल्प को परिभाषित करते हुए इसके उद्देश्यों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

7. प्रयोगात्मक अनुसंधान अभिकल्प की विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए।

8. वैयक्तिक अध्ययन विधि का अर्थ बताते हुए इसकी विशेषताओं व सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।

9. वैयक्तिक अध्ययन विधि के उद्देश्यों का वर्णन करते हुए इसके प्रकारों का वर्णन कीजिए।

10. वैयक्तिक अध्ययन विधि को परिभाषित करते हुए इसके उपयोग व आलोचनाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

4.9. आप ये भी पढ़ सकते हैं :

- अर्ल बैबी, ''द प्रक्टिस ऑफ सोशल रिसर्च'', (थ्रटियथ एडिशन), वैड्सवर्थ पब्लिशिंग कम्पनी, न्यूयार्क, 2012
- डी.के. भट्टाचार्य, ''रिसर्च मैथ्डोलॉजी'', एक्सल बुक्स, न्यू दिल्ली, 2005
- सी.आर. कोठारी, ''रिसर्च मैथ्डोलॉजी : मैथड्स एण्ड टैक्निक्स'', (सैकिण्ड रिवाइज्ड एडिसन), न्यू एज इंटरनेशनल पब्लिशर्स (पी. लिमिटेड), न्यू दिल्ली, 2004
- राबर्ट बी.बर्नस, ''इंट्रोडूक्सन टू रिसर्च मैथड्स'', (फोर्थ एडिसन), सेज पब्लिकेशन्स, लंदन, 2000
- एस. सरनताकोस, ''सोशल रिसर्च'', (सैकिण्ड एडिसन), मैकमिलन प्रेस, लंदन, 1998
- एच.एल. मैनहिम, ''सोशलोजिकल रिसर्च'', दा डोरसे प्रेस, इलिनोइस, 1977
- रसेल एल. एकॉफ, ''डिजाइन ऑफ सोशल रिसर्च'', यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो, 1960
- राम आहूजा, ''सामाजिक अनुसंधान'', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2010

***